प्रकाशक-
दी इंटरनेशनल पब्लिशिंग कंपनी
K 31/1 चमरगली, बनारस

69

मुद्रक
बी० के० शास्त्री,
ज्योतिष प्रकाश प्रेस, बनारस

दो शब्द

उत्कृष्ट ग्रंथ रत्नोंसे विश्व-वाङ्मयका भण्डार भरना ही हमारा लक्ष्य है, जिसकी पूर्तिमें यह हमारा चौथा प्रयास है। इसके पूर्व 'मालविकाग्निमित्र नाटक', 'टनाटन' और 'लफ्टंट पिगसनकी डायरी' लेकर हम जनताकी सेवामें उपस्थित हो चुके हैं। इनका सभी श्रेणियोंके पाठकों और सहृदयोंने हार्दिक समादर किया है और हमारा उत्साह बढाया है। आज हिन्दीके यशस्वी लेखक और सुप्रसिद्ध पत्रकार पं० कमलापति त्रिपाठी शास्त्री एम० एल० ए० लिखित 'बन्दीकी चेतना' आपके सामने है।

त्रिपाठीजीने पिछले जेल-जीवनमें अपने पुत्रके नाम अत्यन्त गभीर, मार्मिक, हृदय स्पर्शी और उद्‌बोधक पत्र लिखे हैं। उन्हीं पत्रोंका संग्रह इस पुस्तकमें है। यह पुस्तक भाषा, भाव, विचार और अनुभूतिकी दृष्टिसे पडितजीकी कृतियोंमें सर्वश्रेष्ठ है। हिन्दी साहित्यकी अनुपम निधि है।

पूरी पुस्तक पत्रोंका संकलन है। पत्र-लेखन एक कला है। अत्यन्त उत्कृष्ट कला है। मानवताका शृंगार है। इस कलामें वही सिद्धि पा सकता है, जिसका अन्तस निर्मल हो, अन्तःकरण पावन हो।

पत्र-लेखनके लिए जिस फुर्सतकी आवश्यकता होती है, वह जेल-जीवनमें पंडितजीको प्राप्त थी। इसके अतिरिक्त लिखनेकी आदत, भाषापर असाधारण अधिकार, सहृदयता और जिन्दादिली, उत्कृष्ट संम्भाषण शक्ति और अद्भुत स्मरण शक्ति आदि सफल पत्रके आवश्यक गुण पंडितजीमें आश्चर्यजनक मात्रामें वर्तमान है, इसीलिए ये पत्र व्यक्तिगत जीवनसे संबंध रखते हुए भी स्थायी साहित्यकी अनुपम निधि बन गये हैं।

पत्र—निबंध, कहानी, उपन्यास काव्य आदिकी भाँति साहित्यका एक आवश्यक अंग हैं। सभी उन्नत साहित्यमें उत्कृष्ट पत्र और पत्र लेखक पाये जाते हैं। हिन्दीके सफल-पत्र लेखकोंमें स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा, स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी, पं० श्रीधर पाठक और पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी मुख्य हैं। पं० पद्मसिंह शर्मा तो इस कलाके आचार्य थे। हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रके बाहरके उत्कृष्ट पत्र-लेखकोंमें महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू, दीनबन्धु सी० एफ० एण्ड्रूज, स्वर्गीय श्रीनिवास शास्त्री तथा स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ टैगोर का नाम उल्लेखनीय है। रवी बाबूका लेटर टू हिज़ फ्रेण्ड (मित्रके नाम पत्र) अत्यन्त सुन्दर और लाजबाब है। उनके बँगलाके पत्र तो अत्यन्त मार्मिक और उत्कृष्ट हैं। पाश्चात्योंमें लार्ड चेस्टर फील्डका 'लेटर टु हिज़ सन' (पुत्रके नाम पत्र), गोल्डस्मिथका 'लेटर टु हिज़ मदर'

(माताके नाम पत्र) तथा टलस्टाय और रोम्यारोलाके पत्र अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

पंडित कमलापतिजीने बन्दीकी चेतनामें अपने पुत्रके नाम जो पत्र लिखे हैं उनकी सबसे बडी विशेषता है आध्यात्मिकता, नैतिकता, मानवता और आदर्शवादिताके आधारपर मानव-जीवनका व्यापक और गंभीर अध्ययन तथा विवेचन। इसमें अपनी बात भी कही गयी है और जगत तथा जीवनका विषद और व्यापक अध्ययन भी किया गया है। इन पत्रोंमें राजनीति, धर्म, अर्थ-नीति, समाजशास्त्र, काम-विज्ञान, विज्ञान, दर्शन आध्यात्म आदि जीवनके प्रत्येक पहलूपर गंभीर विचार किया गया है और सफल जीवनके उपाय बताये गये हैं। त्रिपाठीजी आस्तिक हैं, आदर्शवादी हैं, अतः व्यक्ति और समाजकी, जीवन और जगतकी विषमतामें समता, असामंजस्यमें सामंजस्य ढूंढनेका सफल प्रयास इन पत्रोंमें आपने किया है।

इस पुस्तकके एक एक पत्र सफल काव्यमय निबंध हैं। इसकी असम्बद्धतामें भी एक संबंध सूत्र चला करता है और पाठककी जिज्ञासा उत्तरोत्तर बढती जाती है। गद्य काव्यात्मक और अभिभाषणात्म भाषाकी जाह्नवीके बीच-बीच अलंकार, रूपक उपमा, और उत्प्रेक्षा लोल लहरियोंकी भाँति लहराती हुई मन मुग्ध कर देती है। विचार और काव्यका ऐसा सामंजस्य हमें अन्यत्र कहीं देखनेको नही मिला। प्रसंग और रसकी ढालपर उतरती हुई भाषा पाठकको मस्त कर देती है। इसमें बनाव सिंगार काफी है पर बनावट तनिक भी नहीं। इसमें जो कुछ भी वर्णित है वह अत्यन्त मनोहर है। वर्णनीयमें और वर्णनशैलीमें ऐसा चमत्कार है कि आँखोके

सामने चित्र खिच जाता है और पुस्तक बन्द कर रख देनेपर भी बहुत देर तक पंडितजीकी बातें कानोंमें गूँजती रहती हैं। प्रवीण लेखकने विचारात्मक, भावात्मक, और वर्णनात्मक तीनों शैलियोंका प्रसंगानुसार सुन्दर और सफल मेल किया है।

पूरी पुस्तकमें एक आदर्शवादी सच्चे भारतीय हृदयकी झांकी है। भारतीय संस्कृतिका अमृत पीकर कोई व्यक्ति जीवनको किस दृष्टिसे देखता है यह आपको इस पुस्तकके पढ़नेसे स्पष्ट हो जायगा। इसमें तत्त्व-चिंतनके साथ-साथ आत्मीयराग भी है, और यही आत्मीयता इसका आकर्षण है। पुस्तक पढ़ते समय ऐसा जान पड़ता है मानों हम पंडित कमलापति जीसे बातें कर रहे हैं। इसमें सस्मरणकी मिठास है। इसकी शैली इतनी सरस और काव्यमय है कि जहाँ कही उपदेश आया है उसमें एक मिठास है, आकर्षण है। संतबानी का रूखापन नहीं है क्योंकि उसमें साहित्यकी आत्मा है। इसमें पंडितजीने सुनी हुई, सीखी हुई अध्ययन और अनुभवकी हुई बातें लिखी हैं तथा देखी और बर्ती बातें बतायी हैं। इसीसे इसमें आत्मकथाकी निजी छाप है। यही आत्मीय-राग अच्छे साहित्यका लक्षण है। इसके एक एक वाक्यमें विचार और भावका समुद्र लहराता रहता है। पंडितजीके विचार सूखे और तर्क प्रसूत ही नहीं है बल्कि हरे और भावप्रसूत भी है। प्रज्ञा और भावुकता का ऐसा सहयोग कदाचित ही देखनेको मिलता है।

पूरी पुस्तकका लक्ष्य मनुष्यको मनुष्य बनाना है। लोकमंगल ही लेखकका अभिप्राय है। इसमें भारतीय युवकोंको, प्रत्येक भारतीयको और प्रत्येक मानवको मानवताके कल्याणार्थ सदेश दिये गये है। इसमें

जीवनकी आलोचना है तथा रचनाका सौंदर्य्य है। इधर दशकोंसे ऐसी उत्कृष्ट पुस्तक हिन्दी में नहीं निकली थी।

पण्डित कमलापतिजीने अपनी इस कृतिके प्रकाशनका अवसर देकर हमपर महती कृपा की है जिसके लिए हम उनके अनुगृहीत हैं।

इसका 'आर्डरी प्रूफ' 'संसार' संपादक आदरणीय मुकुन्दीलाल जीने पढा है, उनकी इस कृपाके लिए हम उनके आभारी हैं। मुखपृष्ठकी डिजाइन संसार-स्टाफके प्रसिद्ध चित्रकार और कार्टूनिस्ट श्री मनोरंजन काजीलालने बनाये हैं, उन्हें भी धन्यवाद।

प्रकाशनके कार्यमें जिन श्रद्धेय शुभ चिन्तकों, प्रेमी मित्रों और स्नेही स्नेहियोंका आशीर्वाद, प्रेम और स्नेह हमें प्राप्त है उनका हम विनम्र भावसे अभिवादन करते हैं।

—प्रकाशक

निवेदन

प्रस्तुत पंक्तियाँ यद्यपि पृष्ठोंमें आबद्ध होकर ग्रंथके रूपमें अवतीर्ण हुई हैं तथापि मैं उन्हें ग्रथकी संज्ञा प्रदान करना उचित नहीं समझता। सच मानिये ग्रंथ प्रणयनकी दृष्टिसे ये लिपिबद्ध नहीं की गयी थीं। बेशक विशेष परिस्थितिमें पड़े हुए हृदयकी प्रतिबिम्ब बन कर प्रादुर्भूत हुईं। उनमें भावुकताका तूफान है, स्मृतियोंकी शृङ्खलामें जकड़े हुए प्राणकी आकुलता है, अतृप्ति और अभावसे संभूत आवेश है, आवेशमें मोहका आक्लेश है, आदर्शानुजनित प्रेरणा है तथा नैसर्गिक प्रवृत्तियोंके घात-प्रतिघातसे उत्पन्न अन्तसंघर्षकी प्रतिध्वनि है। मनुष्य केवल मिट्टीका पुतला नहीं है। वह अनन्त चेतना और अनुभूतियोंकी पतिच्छाया भी है। वह इष्टका अनुरागी और अनिष्टके प्रति सहज विरागी भी होता है। घटनाओंके प्रवाहपर किसी अदृश्यका नियंत्रण होता है अथवा नहीं यह तो मैं नहीं जानता पर इतना अवश्य देखता हूँ कि जीवन हठात् ऐसी परिस्थितियोंमें पड़ जाता है जिनसे

निकलनेमें असमर्थ होकर उन्हें भूल जानेकी चेष्टा करता है। ये पंक्तियाँ उस चेष्टा और प्रयासका परिणाम भी है।

प्रयागके नैनी जेलकी एक कोठरीमें ये पंक्तियाँ लिखी गयीं। जिस समय ये लिखी जा रही थीं उस समय लेखककी मनःस्थिति विशेष प्रकार की हो चुकी थीं। परिस्थितियाँ मनोदशाका सांचा हुआ करती हैं। समय विशेष पर आपकी मनःस्थिति विशेष परिस्थितियोंके साँचेमें ढल कर विशेष रूप ग्रहण करके उपस्थित होती हैं। मै भी ऐसी ही मनःस्थितिके वशीभूत था। जिन परिस्थितियोंमें पड़ गया था और घटनाओंने जीवनको जो दिशा प्रदान कर दिया था उनके फलस्वरूप मनकी जो स्थिति हो गयी थी उसका चित्रण करना यहाँ आवश्यक नही है। पाठक आगामी पृष्ठोंमें स्वयम् ही उसकी झलक पावेंगे। पर यहाँ इतना अवश्य कह देना चाहता हूँ कि उस समय जीवनके सहज अन्तर्द्वन्द्वसे प्रसूत मनःस्थितिकी आधारपीठिका इन पंक्तियोंकी प्रेरणा रही। काराकी घृणित कोठरीमें आबद्ध बन्दीको अपनी परिस्थितिको भुला देनेवाले उपादान भी उपलब्ध न थे। न कोई सक्रियता थी न मनोरंजनके साधन न समय काटनेका कोई उपाय। निष्क्रिय, स्पन्दनहीन जीवन एकान्त घड़ियोंको पाकर स्मृतियों और अनुभूतियोंके उन्मुक्त आकाशमें उड चला। वही उड़ान शब्दोंमें अंकित हो गयी।

स्पष्ट है कि इन पंक्तियोंमें जो कुछ होगा वह अत्यन्त निजी होगा। फिर हमारी निजी चाह या अनचाह, दुःख, सुख, स्मृति, अनुभूति, राग विरागसे न किसी दूसरे को संबंध हो सकता है और न किसीको उसमें दिलचस्पी। यह मैं जानता था फलतः यह भी नही चाहता था कि इन पंक्तियाको प्रकाशित किया जाय। एक बात और है मुझे इन्हे

प्रकाशित करनेमें संकोच भी हो रहा था। क्योंकि जेलसे बेटे या बेटीके नामसे पत्र लिखनेकी प्रथा और बादमें उन्हे प्रकाशित कर देनेकी परंपरा बहुत बड़े लोगोंको शोभा देती है। कुछ बडे लोगोंने यह करके देश और साहित्यकी महती सेवा भी की है। मुझे यह संकोच होता था कि इन्हें प्रकाशित करना न केवल आत्मविज्ञापन समझा जायगा पर यह भी समझा जा सकता है कि किसी बड़ेकी नकल करने की चेष्टा की गयी है। इन विचारोंके कारण मैंने कभी यह सोचा भी न था कि इन्हें प्रकाशित करना है। पर समय आया जब प्रकाशनके लिए इन पंक्तियोंको प्रेसमें जाना पड़ा। मेरे कतिपय मित्रो और कृपालुओंने इन्हे देखा, पढा और आग्रह किया कि इसका प्रकाशन करा दिया जाय। संभवत: मेरे प्रति अपने स्नेहके वशीभूत होकर ही उन्होंने इसका आग्रह किया। क्योंकि मैं नहीं समझता कि इसके प्रकाशनसे किसीका कुछ लाभ हो सकता है अथवा उसके द्वारा साहित्य और समाजकी कोई सेवा हो सकती है।

जो भी हो अब पंक्तियाँ प्रकाशित हो रही हैं। मै केवल इतना ही चाहता हूँ कि इन्हें प्रकाशित करनेकी मेरी धृष्टताको क्षमा किया जाय, तो मुझे अत्यन्त संतोष प्राप्त होगा। क्योंकि मैं यह समझूँगा कि उससे किसीकी कुछ सेवा तो हो गयी। अधिक क्या लिखूँ।

कमलापति

१

नैनी सेण्ट्रल जेल
८ नवंबर ४२

प्रिय लालजी !

काराकी एक कोठरीमें बैठा हुआ हूँ। इसे यदि कोठरी न कह कर कंदराके नामसे सम्बोधित करूँ तो अधिक उपयुक्त होगा। इसकी लम्बाई चौड़ाई तो काफी है। ८ फुटके करीब लम्बी और उतनी ही फुट चौड़ी कोठरीको छोटी नहीं कह सकते। फर्शसे सटी एक छोटी-सी खिड़की है जिसमें मोटे लोहेके छड़ोंका जँगला फिट है। कोठरीका प्रवेश-द्वार भी लोहेके मोटे छड़ोंसे भरा है। जेलमें लोहेका ही साम्राज्य होता है। जंगले लोहेके, दरवाजे लोहेके, ताली-ताले लोहेके, हथकड़ी और बेड़ियाँ लोहेकी, पैरमें पड़े कड़े और गलेमें पड़ी हँसुलियाँ लोहेकी। कायदा-कानून लोहेका और अधिकारियों तथा कर्मचारियोंके

हृदय भी सम्भवतः लोहेके ही। जिधर देखो लोहा। अशुभ और अमंगल वेषधारी इस पदार्थके बीच घिरा हुआ मैं कुछ लिखने बैठ गया हूँ। प्रचण्ड क्रूर शनिका प्रतिनिधित्व करनेवाला यह लोहा ग्रहदशाकी भाँति मस्तकपर सवार है। लिखने बैठा हूँ पर जानता नहीं कि क्या लिखना चाहता हूँ और क्यों लिखना चाहता हूँ। साधारण दृष्टिसे कहा जा सकता है कि लिख रहा हूँ तुम्हें पत्र और पत्र लिखनेके जो कारण होते हैं उसी कारण मै भी लिख रहा हूँ। पर मेरी बात इतनी साधारण नहीं है। मै हूँ राजनितिक बन्दी जिसे पत्र लिखनेकी इजाजत नहीं है और न यही अनुमति है कि अपने कुशल-मंगलसे बाहर किसीको सूचित करें। पत्रकी बात छोड़ दो, कुछ भी लिखना-पढ़ना सरकारको पसंद नहीं है। न कागज मिल सकता है और न कलम-दावात रखने का अधिकार है। यदि कभी किसी अफसर वगैरहको दर्खास्त देना हो तो नियमानुकूल कागजकी माँग करनी होती है और अफसर लोग लिखनेके सामान प्रस्तुत कर देते हैं। इस स्थितिमें क्या लिखने बैठा हूँ, मैं स्वयं नही जानता।

पर मनुष्य तो बड़ा जटिल प्राणी है। न जाने कितने विरोधी द्वन्द्वात्मक तथा रहस्यमय पदार्थोंसे बना हुआ यह पुतला विचित्रतामें अपना सानी नहीं रखता। वह अपने थोड़ेसे जीवनमें विभिन्न प्रकारके कार्योंमें सतत संलग्न रहता है, पर अधिकतर काम ऐसे हैं जिन्हें वह करता है, किन्तु क्यों करता है, यह उसे स्वयं नहीं ज्ञात होता। भले ही काम कर जानेके बाद उसका

औचित्य और कारण ढूँढ़ निकाले, पर उसकी प्रेरणा आरम्भमें सहज आवेशके सिवा कुछ नहीं होती ? फलतः मै भी बाध्य हुआ लेखनी उठानेके लिए। न जाने कितने प्रयत्नके बाद लिखनेके साधन एकत्र कर सका हूँ । जब वैठा तो सोचने लगा कि क्यों लिखना चाहता हूँ और क्या लिखना चाहता हूँ। दोनों प्रश्नोंका कोई उत्तर नही मिल सका। अपनेको टटोला तो केवल इतना पाया कि लिखनेकी प्रबल चाह हो रही है, अतः लिखने लगा हूँ। कुछ तर्क करनेकी क्षमता तो प्रकृतिने प्रदान कर ही दी है। यही मानव-स्वभावकी एक विचित्रता है। सहज प्रवृत्तियाँ अकारण उसे विभिन्न दिशाओंमें प्रेरित करती रहती है और कठपुतलीकी भाँति नचाया करती है, पर मनुष्यको इसकी अनुभूति नही हो पाती। उसे न अपनी इस दयनीय स्थितिका अनुभव होता है और न किसीके हाथका खिलौना बननेमें लज्जाका आभास ! हो कैसे ? वह तो मोहाच्छन्न है, अपने अहंके दंभ और व्यक्तित्वके अभिमानसे, जिसे प्रकृतिने न जाने क्यों उसे सहज ही प्रदान कर रखा है। फलतः वह न अपनी वास्तविक स्थिति देख पाता है और न अवास्तविकतासे छुटकारा पाता है। वह तो अपने अहंकारमें तर्क करता है और मै भी इसी कारण तर्क करने लगा, तथा अपने लिखनेके अनेक उचित कारण ढूंढ़ निकाले। पर वस्तुतः कारण-अकारण कुछ नहीं है। लिखना चाहता हूँ ! प्रवृत्तियोंकी दुर्दान्त शक्तिके वशीभूत होकर अपने हृदयका भार हलका करनेके लिए। सम्भवतः तुम्हें रोग-शय्यापर

गहरे ज्वरमें विकल छोड़कर गया था और तबसे महीनों बीत गये अन्तस्तलमें अपने बच्चेके निकट होनेकी चाह क्यों होती है यह कौन बता सकता है ? कहीं रागका अतिरेक, कहीं घृणाकी बाढ़। और इस प्रकार द्वन्द्वोंका निरन्तर निवास तथा संघर्ष मानवजीवन-की रहस्यमयी ग्रंथि है जिसकी अनुभूति तो होती है पर जिसके कारणोंकी व्याख्यामें कदाचित् न विज्ञान अबतक सफल हुआ और न दर्शन। यह तो एक सत्य है, जिसके रहस्यके उद्‌घाटनकी चेष्टामें मानव-कल्पना और बुद्धि न जाने कबसे उड़ान ले रही है, पर अब तक किसी सर्वमान्य सिद्धान्तपर नहीं पहुँच सकी। मुझे गहरा सन्देह है कि कभी वह पहुँच भी सकेगी या नहीं। पर इस विवादको जाने दो। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि तुम्हें देखनेके लिए हृदयमें न जाने कैसी गहरी लालसा रहती है। इस लालसामें कोमल भावुकता है और उसकी तृप्ति न होनेपर विचित्र प्रकारकी कसक, टीस और पीड़ाका अनुभव होता है। उस पीड़ाका उपचार सात तालोंमें बंद मेरे जैसे बंदीके लिए असंभव है। कुछ ऐसा लगता है कि हृदयमें उद्‌भूत भावुकताके बहावमें बहते हुए जड़ लेखनीका सहारा लेकर भौतिक नहीं तो मानसिक संबंध तो तुमसे स्थापित कर ही सकता हूँ। मेरे लिए यह भी कम न होगा। कुछ सन्तोष, कुछ शान्ति सी मिले तो वह ग्राह्य ही है! आज तो तुम्हारे योगक्षेमसे भी अपरिचित हूँ।

स्वभावतः आशंका और भय तथा मोहसे आकुल हृदयमें अतीतकी स्मृतियाँ एकके बाद दूसरी उमड़ती चली आ रही हैं

और न जाने किस प्रकारका भावोद्रेक कर रहो है। आजसे आठ वर्ष पूर्वकी बात है। उस समय तुम केवल ८ सालके बच्चे थे। तुम्हारी माता सहसा बीमार हुई और केवल ७२ घंटोंमें ही इस क्लेशाकीर्ण भौतिक जगतसे विदा होनेके लिए सन्नद्ध हो गयी! उनकी इच्छानुसार उन्हें बिस्तरसे उठाकर भूमिशायी बना दिया था। वे आध घण्टे बाद ही इस नश्वर शरीरका परित्याग करके सदाके लिए मुक्त होना चाहती थी। मै उनके सरके पास बैठा हुआ था और निर्निमेष भावसे दीप-निर्वाणकी अद्भुत लीला देख रहा था। सोच रहा था कि जीवन अपने उदरमें मृत्युका बीज लेकर क्यो आता है? सृष्टि और प्रलय, जीवन और मृत्युका नियन्ता चाहे कोई क्यों न हो पर अन्ततः इस क्रूर लीलाका लक्ष्य क्या है? किसीका हरा-भरा उपवन उसकी दृष्टिके सम्मुख उजाड़ कर विनष्ट कर देनेमें किसीको क्या मिलता है? किसीकी समस्त कोमल भावनाओ, मधुर काम-नाओं तथा पवित्र साधमें आग लगाकर उसके हृदयको भयावना श्मशान बना देनेमें कौनसा रस मिलता है! साथ ही अनुभव कर रहा था कि इस रहस्यका उद्घाटन हो या न हो, जो होता है वह किसीको प्रिय हो अथवा न हो पर जिस प्रबल और भीषण धारामें विश्व प्रवाहित हो रहा है, उसका दृश्य और मूर्तरूप यही है। ऐसे विचारोंमें निमग्न बैठा हुआ मैने तुम्हारी माताको आँखें खोलते और अपनी ओर देखते हुए पाया। मुखपर उनके कुतूहल था, उत्सुकता थी और थी विकलताकी आभा। मुझे ऐसा प्रतीत

हुआ कि वे कुछ कहना चाहती हैं! आँखोंमें मोहका स्पष्ट आवेग झलक रहा था। मुझे ऐसा लगा कि मानो जीव अपने शरीर-रूपी पिंजरके प्रबल आकर्षण तथा उससे दूसरे जितने उपादानोंका संबंध है उनके बंधनको छोड़नेमें व्याकुलताका अनुभव कर रहा है। उनकी वह स्थिति देखकर मेरे हृदयमें धक्कासा लगा। अब तक तो मैं पत्थरकी भांति अविचल बैठा हुआ था। संकट और दुःखके प्रचंड आघातसे बहुधा मानव जड़ हो जाता है। वह जड़ता उसे उस समय शौर्य्य और धीरता प्रदान करती है, जब किसी क्रूर घटनाका असाधारण वेग उसे पीपलके पत्तेकी भांति दोलायमान करनेके लिए आगे बढ़ती है। प्रकृति इसी प्रकार अपनी तुलाको संतुलित करती है।

मेरे सम्मुख ऐसी ही स्थिति थी और ऐसी ही थी जड़ताकी मदिरा जिसे पीकर मैं गुमसुम हो गया था। बैठे-बैठे प्राणीके महाप्रलयकी लीला देख रहा था। उस समय उनका उपर्युक्त व्याकुल भाव एक बार मेरे बाँधको तोड़ देनेके लिए आगे बढ़ा पर न जाने क्यों उसका प्रभाव क्षणमात्रमें जाता रहा। मैंने स्थिरतापूर्वक कहा—कुछ कहा चाहती हो तो कहो'। एक बार उन्होंने पुनः मेरी ओर देखा और धीरे-धीरे उनके ओंठ हिले। थोड़ेसे शब्द मन्द स्वरमें निकले—बोलीं 'मेरे बच्चोंका क्या होगा'। उनके भावसे ज्ञात हुआ कि वे उत्सुक हृदयसे अपने प्रश्नके उत्तरकी प्रतीक्षा कर रही हैं। यह मेरे हाथमें था कि अपने आश्वासनसे उस मातृत्वकी पुनीत भावना और लोल

लिप्साका समादर करता जो उस समय उनके अन्तस्तलकी एकमात्र अधिकारिणी हो रही थी। मातृत्व इस दुःखपूर्ण और क्षतविक्षत धरातलका सर्वोत्कृष्ट वरदान है। पवित्रता, सौंदर्य, सत्य, स्नेह और कलाका उच्चतम विकास संभवतः माताके मातृ-हृदयमें ही हुआ है। जिसमें सीमाका बंधन नहीं है, स्वार्थकी दुर्गन्धि नहीं है, प्रतिफलाकांक्षाकी कालिमा नहीं है, माताका वह शुभ्र वात्सल्य इस अभिशापित मानवकी सबसे बहुमूल्य विभूति है। मेरे लिए उनके प्रश्नका उत्तर देनेमें कही किसी प्रकारका संकोच न था। उनकी जिज्ञासामें जो गूढ़ भाव था वह तत्क्षण विद्युच्छटाकी भाँति मेरे हृदयाकाशमें चमककर विलीन हो गया।

मैने कहा 'तुम चिंता न करो। जाना चाहती हो तो सुख और संतोषके साथ जाओ। जब तक मै जीवित हूँ तबतक तुम्हारे स्थानपर तुम्हारे बच्चोकी चौकसी करते रहना ही मेरी एकमात्र साधना होगी। आजसे यही क्षण मेरे लिए वैवाहिक जीवनकी अंतिम घड़ी होगी'। मेरा उत्तर क्या था मानो उनके विदग्ध हृदयको शीतल करनेके लिए स्निग्ध और अमोघ आलेपन था। स्पष्ट प्रतीत हुआ कि उनके मुखपर विश्राम और शान्तिकी छाया पड़ रही है। जो अन्तस्संघर्ष उन्हें उत्पीड़ित किये हुए था वह मानों सहसा छिन्न-भिन्न हुआ, और तत्काल भारी बोझ हटनेसे जो राहत मिलती है उसकी आभा दिखाई दी। आज जब वह घटना बैठे बैठे यहाँ मेरे स्मृति-मंदिरमें

एकके बाद दूसरी शृंखला-बद्ध चित्रपटकी भाँति आ और जा रही है तब मुझे एक प्रकारका संतोप-सा हो रहा है। सन्तोप इस बातसे कि मुझे तुम्हारी माताकी आंतरिक पीड़ा कुछ कम करनेका अवसर तो मिल गया। यही संतोष मेरी सबसे बहुमूल्य संपत्ति है।

जेलका यह एकांत जीवन जहाँ विचार-लहरियोंको तीव्र बना देनेमें समर्थ हुआ है वही एकाकीपनका भारी भार हृदय-पर लाद देनेका साधन बना है। मै तुम्हारी माताकी उस धरोहरकी पहरेदारी करना चाहता हूँ जो उन्होंने तुम लोगोके रूपमें मेरे पास रखी है। मेरा संघर्षात्मक राजनीतिक जीवन कभी कभी इसमें बाधक हो जाता है। मैं इस बाधाका निराकरण करनेमें समर्थ नहीं हूँ। यह अनिवार्य कर्तव्य है जिसकी पूर्ति भारतीय होनेके नाते मुझे करना ही है। सामूहिक धर्म उपेक्षाकी वस्तु नहीं है। यह तो मानव होनेके नाते मेरे सिर चढ़ा हुआ मानवताका ऋण है कि मै अपने देश, अपने समाज, अपनी संस्कृति और अपने इतिहासकी ऐतिहासिक आवश्यकता-की पूर्तिमें अपनी शक्ति भर सहायता प्रदान करूँ। इससे विमुख होना तो न केवल मनुष्यतासे गिरना है बल्कि मानवताके उस विकासके प्रति विश्वासघात करना हैं जिसका दायित्व इस युगके समाज और इस युगके प्राणियोंने प्राप्त किया है। फलतः मैं तो अपनेको एक ओर अनिवार्य कर्तव्योंके पाशमें बँधा पाता हूँ और दूसरी ओर नियतिकी चक्कीमें पिस रहा हूँ। तुम्हारे

प्रति कर्तव्य, देश और समाजके प्रति कर्तव्य, अपने प्रति कर्तव्य और दूसरी ओर अदृष्ट काल-चक्र जो घटनाओ और परिस्थितियोको ऐसे साँचेमें ढाल देता है जिसमें कर्तव्यकी कड़ियाँ परस्पर आबद्ध होनेके बजाय झटका खाकर टूटती और बिखरती नजर आती हैं। यही सघर्ष, यही विरोध बड़ा भारी बोझ लाद देता है। उस बोझसे लदा आर्त प्राणी कराहकर अपनी पीड़ा कुछ कम करता है। सम्भवतः मेरा लिखना और लिखनेकी चाह उसीका प्रतीक है, उसीका मूर्त रूप है।

फलतः लिखना है तो लिखूँ पर सोचा, तुम्हारे प्रति पत्रोंके रूपमें कुछ लिखना अधिक अच्छा होगा। पर तुम्हें सम्बोधन करके कुछ लिखना मेरे लिए तो सरल होगा पर तुम्हारे कामका भी होगा या नहीं, इसमें मुझे भी बड़ा सन्देह है। तुम आज जीवनकी उस मंजिलमें पहुँचे हो जिसे विकासका काल कहा जा सकता है। यह किशोरावस्था यौवनका प्रभात है। बचपन बीत रहा है और तुम वास्तविक जीवनमें प्रवेश करनेकी योग्यता प्राप्त कर रहे हो। जीवनका यह काल बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। इस समय यद्यपि स्वतंत्र और प्रौढ़ विचार करनेकी शक्ति नहीं होती और न स्थिरता तथा विवेकका विकास हुआ रहता है फिर भी यही समय है जो भावी जीवनका आधार बनता है। मनुष्यके समस्त आगामी जीवनके निर्माणका बीज इसी समय बोया जाता है। किशोरका मस्तिष्क और उसका हृदय स्वच्छ जलकी भाँति निर्मल होता है। इस कालमें उसके

हृदय और मस्तिष्कमें बाह्य परिस्थितियों तथा आंतरिक भावों और दूसरे उपकरणोंकी जो छाया पड़ती है वह सहज ही प्रतिबिंबित हो जाती है। ये प्रतिबिंब एक प्रकारसे साँचेका काम करते हैं जो उसके समस्त जीवनको एक रूपमें ढाल देते हैं। अपनी सरल, विमल तथा ग्रहणशील प्रवृत्तियोंके कारण आज अन्तस्तलमें पड़े हुए प्रतिबिंब उसके लिए संस्कार बन जाते है। आजके इन संस्कारोंकी छाप अमिट होती है। जो जीवनपर्यन्त मिटाये नहीं मिटती। ये संस्कार जन्मभर तुम्हारे साथी रहेंगे। ये ही तुम्हारी भावना, स्वभाव, चरित्र, प्रवृत्ति, आदतोंको प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपमें प्रभावित करते रहेंगे। अतएव सोचा कि दो काम एक साथ ही करूँ। अपना भार हलका करूँ और साथ ही साथ जीवनके अपने अनुभवोंके द्वारा कुछ ऐसी छाप डालनेकी चेष्टा करूँ जो आगे चलकर तुम्हारे लिए कुछ सहायक हो सकें। संभव है वे तुम्हारे चरित्र-निर्माणमें और भावी जीवन-संघर्ष-में भी कुछ मदद दे सकें। मै नहीं जानता कि इसमें मुझे कुछ सफलता मिलेगी या नहीं। पर मेरा भार कुछ हल्का अवश्य होगा। यहाँ पढ़नेको कुछ नही है, पर सबसे बड़ा ग्रंथ तो जीवन ही है जिसका अध्ययन करनेकी ओर कभी कोई ध्यान नहीं देता। कैसे आश्चर्यकी बात है कि मनुष्य अति गुह्य रहस्योंका उद्घाटन करनेका दावा करता है, पर जो उसके लिए सबसे अधिक स्पष्ट और उसके सबसे अधिक निकट है उसके बारेमें कुछ नहीं जानता। करोड़ों मील दूरके सितारों, सूर्य, चन्द्र तथा ग्रहों और

उपग्रहोंके बारेमें आज मनुष्यको काफी ज्ञान है। पृथ्वीके उदरमें, महा समुद्रके अतल तलमें, और गगनचुंबी हिमालय पर्वतकी चोटियोंका पता उसे लग जाता है। अदृश्य भौतिक तथा अभौतिक वस्तुओंकी कल्पना और आभास प्राप्त करनेमें वह समर्थ होता है पर यह जीवन जो उसके इतने निकट और उसके सम्मुख इतना स्पष्ट है उसकी गुत्थियोंके बारेमें उसे या तो अधिक मालूम नही है या अधिक जाननेकी चेष्टा करता है तो अपेक्षाकृत सबसे कम जान पाता है। मै जानता हूँ कि इस प्रकारकी बहुत सी बातें तुम्हारे लिए व्यर्थ होगी क्योंकि तुम आज उन्हें समझ नहीं सकोगे। पर आज भले ही वे व्यर्थ हो पर कल संभव है तुम्हारे विचार-क्षेत्रके लिए एक विषय बन सकें। आज जो बात तुम्हारी समझमें आये और कामकी मालूम हो उससे लाभ उठाना और जो न समझमें आये उसे छोड़कर आगे बढ़ जाना।

लिखनेका तो मेरा पेशा ही रहा है! संभव है कि रोजकी वह आदत ही लिखनेके लिए बाध्य कर रही हो। पर बाहर लिखता था रोजरोजकी घटनाओं पर। घटनाये आजकी दुनियाँमें जिस तेजीसे घटती थीं उसी तेजीसे लिखना पड़ता था। बीसवी शताब्दीमें दैनिक अखबारके सम्पादकको इतना अवकाश कहाँ रहता है कि वह आरामसे बैठकर एक-एक बातको तौलकर, शांति और धैर्यके साथ लिखे। वह तो लिखता है मशीनकी तरह और लिखी हुई पंक्तियोंकी स्याही सूख भी नही पाती कि दूसरी परिस्थिति, बिलकुल उससे भिन्न और कभी कभी उसके विपरीत

आ खड़ी होती हैं। पर जहाँ बाहर लिखनेका इतना मसाला था वहाँ यहाँ जीवित ही समाधिकी प्राप्ति हो गयी है। यहाँ तो जीवित रहते हुए भी शव हो गया हूँ, यद्यपि जीवनकी चेतना चैतन्य है। वह चेतना अपनी लहरमें जैसे जैसे लहरायेगी वैसे वैसे लहराता रहूँगा। तुम यौवनके प्रथम सोपानपर पहुँच गये हो। शास्त्र कहते हैं कि इस उमरके किशोरको मित्र समझना चाहिये और तद्वत् उसके साथ व्यवहार करना चाहिये। फलतः जो लिख रहा हूँ अथवा लिखूँगा वह एक मित्रके नाते उसी रूपमें लिखूँगा। तुम भी उसे वैसा ही समझना। पत्रोंमें न कोई क्रम होगा और न व्यवस्था। जब जो मनमें रहेगा अथवा उठेगा—असंबद्ध, अनर्गल, अथवा अव्यवस्थित—जो आवेगा, उसे ही यदि लिखनेकी इच्छा होगी तो लिख डालूँगा। क्या लिखूँगा और भावोंकी कौन सी श्रृङ्खला होगी यह कुछ नहीं जानता।

आज तो एक कड़ी यहीं समाप्त हो रही है, अतः उसके साथ-साथ यह पत्र भी।

तुम्हारा

कमलापति।

३

नैनी सेंट्रल जेल,
१० जनवरी

प्रिय लालजी !

मेरे जेल जीवनके आज पूरे छ महीने बीत रहे है। अब तक तुम्हारा कोई समाचार नहीं मिला। इस बार राजनीतिक नजरबन्दोंपर सरकारने विशेष कृपा दिखाई है। इसके पहले और अनेक आन्दोलनोंमें जेल आ चुका हूँ पर इस बारका अनुभव कुछ और ही है। राजबंदियोको घरवालोंसे महीनेमें एक बार या दो बार मिलनेकी सुविधा रहा करती थी। हमारे जो साथी 'सी' क्लासमें रहते थे उन्हें भी अधिक नहीं तो कमसे कम तीन महीनेमें एक बार घरवालोंसे मिलनेका अधिकार रहता था। इसके सिवा पत्र लिखनेकी भी सुविधा मिला करती थी। 'ए' और 'बी' क्लासके राजबंदी महीनेमें दो

बार तथा एक बार अपने घरवालोंको चिट्ठी भेज सकते थे। 'सी' क्लासमें रहनेवाले भी तीन महीनेमें एक पत्र तो लिख ही पाते थे। ये सुविधायें तो उन बंदियोंको होती थीं जो कैदी होते थे। कैदीसे मेरा तात्पर्य उन लोगोंसे है जिनका अपराध अदालतमें सिद्ध करके दण्ड मिलता था। इसके सिवा इस पराधीन देशमें नजरबंद राजबंदी भी हुआ करते हैं। नजरबंदोंपर न मुकदमा चलाया जाता है, न उनका अपराध सिद्ध किया जाता है न उन्हें अपनी सफाई देनेका अवसर प्रदान किया जाता है। सरकार किसीको संदेहमें गिरफ्तार करके जेलमें झोंक देती है और उसका अपराध सिद्ध किये बिना उसे महीनों, वर्षो तक कारामें सड़ाती रहती है। सरकारकी निरंकुश सनकके शिकार बहुतसे नवयुकोंकी स्वतंत्रता और उनके नैसर्गिक अधिकारोंका गला घोंट दिया जाता है। यह जंगली और बर्बरतापूर्ण काररवाई वह सरकार करती है जो अपनेको सभ्य कहती है। अंग्रेज अपने-को दुनियाँकी स्वतंत्रता, न्याय और सभ्यताका ठेकेदार घोषित करते फिरते हैं। उनका दावा है, और जिसकी डफली पीटते वे नहीं अघाते कि मानवताकी रक्षाके पवित्र काममें ही वे अपने सर्वस्वकी बाजी लगाते रहते हैं। स्वतंत्रताके इन ठेकेदारों और सभ्यताके पुजारियोंकी करनी जिसे देखनी हो वह इस देशकी ओर देखें। अपराध सिद्ध किये बिना किसीकी स्वतंत्रता छीन लेना और उसे दंडित कर रखना किस धर्म-सिद्धान्त और आदर्शको परिपुष्ट करता है इसे वे ही जान सकते हैं जो पशुता करते हुए भी

अपनी महत्ता और उच्चताकी डींग हाका करते है। ऐसे नजरबंदोंसे आज इस देशके जेल भर उठे हैं। पर इस बार केवल नजर-बन्दी ही नहीं है, बल्कि और भी प्रगतिशीलता दिखाई गयी है। पहले भी नजरबंद हुआ करते थे। वे जेलमें तो अवश्य रखे जाते थे पर उनके साथ साधारण कैदियों सा व्यवहार नहीं किया जाता था। जिसका अपराध सिद्ध नहीं हुआ है उसे कैदी बनाकर भी कैदीके समान व्यवहार न करनेकी चेष्टा करके सरकार अपनी निर्लज्जता और अन्यायके बोझको घटानेकी कुछ चेष्टा करती थी। उन्हें अपने घरवालोंसे मिलने-जुलने, चिट्ठी-पत्री लिखने, पठन-पाठन, अध्ययन-लेखन आदिकी सुविधाये अपेक्षाकृत अधिक रहा करती थीं।

आजके समाजकी न्याय-भावना तब तक किसी अपराधी-को भी अपराधी स्वीकार नहीं करना चाहती जब तक उस पर अदालतमें अभियोग साबित न कर दिया गया हो और अभि-युक्तको अपनेको निर्दोष सिद्ध करनेका अवसर प्रदान न कर दिया गया हो। यही कारण है कि स्पष्ट खून करनेवाले खूनीको भी बिना मुकदमा चलाये फाँसीपर नहीं लटकाया जाता। यदि कोई अदालतके जजके सामने भी खून कर बैठे तो भी उसे फाँसी तब तक नही होगी जब तक उसे सफाई देनेका मौका न दिया जाय। पर आज इन सर्वसम्मत आरंभिक सिद्धांतोंकी ओर भी ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं समझी जाती। हजारों व्यक्ति नजरबंदकी हैसियतसे जेलोंमें ठूस दिये गये हैं पर

उनके साथ वह व्यवहार भी नहीं किया जा रहा है जो पहले नजरबंदोंके साथ किया जाता रहा है। आज हम लोगोंको घर-वालोंसे मिलना तो दूर रहा उनके कुशलमंगलकी जानकारीके लिए पत्र लिखने अथवा पत्र पानेका भी अधिकार नहीं है।

इस स्थितिमें मुझे यहाँ छः महीने बीत गये। आज प्रातः-कालसे ही तुम लोगोंकी याद आ रही है। इस अवधिके बीच तुम्हारा कोई समाचार न मिलनेसे मुझे जो परेशानी रही है, उसका वर्णन करना नहीं चाहता। मैं समझता हूँ कि यों परे-शानी न होती पर इस बार मैं विशेष परिस्थितिमें तुम्हें छोड़कर आया था। जिस समय ६ अगस्तको मैं बंबईके लिए रवाना हुआ उस समय तुम ज्वरमें पड़े हुए थे। ज्वराग्रस्त हुए तुम्हें दस रोज बीत चुके थे। मुझे वह समय भूलता नहीं जब प्रातः-काल चार बजे मैं तुम्हारे पास बैठा हुआ था और तुम १०४° बुखारमें पड़े-पड़े छटपटा रहे थे। डाक्टरोंने यह संदेह प्रकट कर दिया था कि तुम्हें संभवतः टाइफाइड हो गया है। एक ओर तुम्हारी वह स्थिति थी और दूसरी ओर मुझे बंबई जाना था। बंबई जानेके लिए मुझे गाड़ी एक घंटेमें ही पकड़नी थी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका अधिवेशन ७ अगस्तसे ही आरंभ होनेवाला था। वही आखिरी ट्रेन थी जिससे मैं बंबई पहुँच सकता था। एक ओर तुम्हारी दशा देखता और दूसरी ओर घड़ी। हृदयमें जो अंतर्द्वन्द्व प्रचंड झंझावातकी तरह उठ खड़ा हुआ उसका आभास भला यह जड़ लेखनी क्या दे सकती

है। क्या करूँ, क्या न करूँ? कर्त्तव्याकर्त्तव्यका ऐसा प्रश्न जीवनमें कभी कभी ही पैदा होता है। मुझे तो कमसे कम यह स्मरण नहीं है कि ऐसे दुश्चक्रमें पहले कभी पड़ा हूँ। मोहाकुल होना तो मानव-स्वभाव है। तुम्हारे प्रति अपने सहज मोह और आदर्शके प्रति अपने कर्त्तव्यका द्वंद्व तो था ही पर यदि इतना ही रहा होता तो शायद मै कुछ अधिक बल प्रदर्शित कर सकता पर मोहके साथ साथ मेरे सामने प्रश्न कर्त्तव्य—अकर्त्तव्यका भी उत्पन्न हो गया।

मै नही समझ पाता था कि इस समय उचित क्या है? तुम्हें इस दशामें छोड़कर बंबईकी ओर प्रस्थान करना अथवा बंबई जानेका इरादा छोड़कर तुम्हारी सेवा-सुश्रूषामें लगे रहना। प्रश्न मुख्यत: इस कारण अधिक प्रबल हो उठा कि तुम्हारी माता जीवित नही है। मुझे उनका अभाव जैसा उस समय खटका वैसा शायद ही कभी पहले हुआ हो। यदि वह जीवित होतीं तो मै तुम्हें उनके भरोसे छोड़कर, संभवत: बिना किसी संकोचके बंबई जानेमें ही अपने कर्त्तव्यकी पूर्ति देखता। पर उस क्षण तो वह थी नही। मैं क्या करता? यह सच है कि देशकी पुकार थी कि वे सब लोग जो सर्वभारतीय कांग्रेस कमेटीके सदस्य हैं बंबईकी ओर प्रस्थान करे। वहाँ ऐसा निर्णय होनेवाला था जिसका प्रभाव करोड़ों प्राणियोके जीवनपर पड़ सकता था। स्वयं राष्ट्रीय कांग्रेसके जीवन-मरणका प्रश्न सामने उपस्थित था। मुझे यह भी आशंका थी कि जो लोग बंबई जायेंगे

वे कदाचित घर वापस न आने पायेंगे। राष्ट्र आगमें कूदनेका संकल्प करने जा रहा था। ऐसे समयमें जो उसके सदस्य थे उनका वहाँ पहुँचना ही कर्त्तव्य था। जिन लोगोंने मुझे अपना प्रतिनिधि चुना था उनके प्रति देशके प्रति और कांग्रेसके प्रति मेरा यह कर्त्तव्य था कि इस महत्त्वपूर्ण मुहूर्त पर मै बंबईमें उपस्थित रहूँ। साथ ही जब इस बातकी आशंका थी कि भारतीय कमेटीके सदस्य वापस न आ पावेंगे तब तो यह और भी आवश्यक हो गया था कि मैं वहाँ पहुँचूं। मुझे कुछ ऐसा लगता था कि यह चुनौती है सरकारकी, और इस समय बंबई न जाना संभवतः अपनी मनुष्यताके प्रति अपराध करना होगा। पर जहाँ प्रश्न यह था वहीं दूसरा प्रश्न भी था। क्या इस दशामें तुम्हें छोड़ जाना उचित है ? मातृविहीन रोग-ग्रस्त बालकके प्रति उसके पिताका भी तो कोई कर्त्तव्य होता है ? बंबईके निर्णयपर मेरे जैसे छोटे आदमीका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता था। मेरे वहाँ रहने या न रहनेसे कोई अंतर नहीं हो सकता था। मै बंबईके लिए अनिवार्य नहीं था। मैं तो वहाँ हजारों उत्सुक दर्शकों और सैकड़ों साधारण सदस्योंकी भीड़में लय हो जानेके सिवा रत्ती भर भी कोई महत्त्व नहीं रखता था। वहाँ तो जो निर्णय होनेवाला था वह होता ही। पर यहाँ मैं अनिवार्य था। तुम्हारे लिये मेरा महत्त्व था। तुम्हारी देखरेखके लिए तुम्हारी माताके अभावमें माता और पिता दोनोंका बोध मुझे ही उठाना चाहिये था। फलतः दोनों ओरसे कर्त्तव्यका प्रश्न उपस्थित

था। अवश्य ही मेरे ऐसे तुच्छ व्यक्तिके निजी जीवनकी इस छोटी सी घटनाका कोई महत्त्व किसी दूसरेके लिए नहीं हो सकता पर मेरे लिये तो कर्त्तव्य-पथका निश्चय करनेका प्रश्न उत्तुंग और अलंघ्य किसी शृंगकी भाँति सामने उपस्थित था।

अधिक सोचने-विचारनेका समय भी तो नहीं थी। इधर या उधरका निर्णय करना ही था। अपनी निश्चित गति और 'टिक, टिक' शब्दकी रटके कारण घड़ी निस्तब्ध कमरेकी उदासी और मेरे अंतःकरणके अंधकारको और गहरा करती जा रही थी। साथ ही मुझे यह सूचना भी देती जा रही थी कि तुम्हारे लिये आज इस अनन्त काल-प्रवाहकी भी सीमा है, तथा दस, पाँच मिनट यदि और अधिक इसी प्रकार बीत गये तो ट्रेन भी अँगूठा दिखाकर चल देगी। हृदयमें उस समय जो 'रस्सा-कशी' हो रही थी उसकी स्मृतिसे आज भी त्रस्त हो उठता हूँ। हृदयमें तूफान था और मस्तिष्क सनसन कर रहा था। आज सोचता हूँ तो आश्चर्य होता है। दस पांच मिनटका महत्त्व था और उसीका था सारा खेल। यदि उतने समय और उसी प्रकार बैठा रह जाता तो बंबई न जा पाता और अपने आप ही एक मार्ग निर्धारित हो गया होता; पर उतने ही समयमें चल पड़नेका निश्चय हो जानेसे दूसरा मार्ग सम्मुख प्रशस्त हो गया और आज यहाँ बैठे-बैठे अतीतका स्मरण कर रहा हूँ। किस प्रकार न जाने कौन सा क्षण मनुष्यके जीवनकी धाराको किस दिशामें उलट पलट देता है? मामलू नहीं असहाय और दुर्बल मानवके

जीवनके साथ कौन इस प्रकार आँख-मिचौनी खेला करता है? इस हाड़-माँसके पिंजरमें कहाँ चेतनाकी चिनगारी है, कहाँ भाव-लहरियाँ लहराती हैं, और कहाँ कर्त्तव्याकर्त्तव्य, प्रकाशा-न्धकार तथा सुख-दुख और साधना तथा अनुभूतिका चक्र चला करता है? मुझे ऐसा स्मरण होता है कि एक क्षण वह आया जब मै बिल्कुल विमूढ़ सा हो गया। तब तक जो कुछ सोच विचारकर सकता था, थोड़ा बहुत तर्क-वितर्क कर रहा था वह भी सहसा समाप्त हो गया। ऐसा भान हुआ मानो चेतनाकी वह टिमटिमाती, पतली सी लव, जो मुझे विचार-सागरमें झकझोर जानेकी अनुभूति करा रही थी यकायक बुझ गयी। वह घड़ी थी जब संभवतः मेरे 'अहं' का भाव कहीं अनन्तमें विलीन हो गया। मैंने देखा कि तुमने कराह कर करवट ली और आँखे खोलकर, सिर उठाकर मेरी ओर देखा। मै कुर्सीपर बैठा हुआ था। तुम्हें उठते हुए देख तुम्हारी ओर झुका। इससे पहले कि मै कुछ पूछ सकूँ तुमने कहा 'बाबू! आप बंबई नहीं गये?'

तुमने प्रश्न यकायक किया और मैंने भी सहज भावसे उत्तर देते हुए कहा—'कैसे जाऊँ? तुम्हें इस हालतमें कैसे छोड़ूँ' न जाने किस प्रेरणासे तुम बोल उठे, आप जरूर जाइये, मेरी तबीयत अच्छी हो जायगी। आप न जायँगे तो बुखार जल्दी न छोड़ेगा'। मैं तो सन्न हो गया। आज भी उसे लिखते और सोचते हुए जैसे रोमांच हो रहा है। हत-बुद्धि मैं खड़ा रह गया। ऐसा ज्ञात हुआ जैसे कोई बलपूर्वक मुझे पकड़कर बाहर ले चला।

यात्राके लिए थोड़ा सा जरूरी सामान जल्दीसे बाँधा-बधाया और घरके ताँगेको तुरत जोत लानेकी हाँक लगाई। तुम्हारे चाचाजीसे तुम्हें देखते-सुनते रहनेके लिए कहा और तत्काल सामान लेकर बाहर खड़े तांगेपर लाद दिया। मुँहसे मेरे शब्द नहीं निकल रहा था। विचार-शक्तिका लवलेश भी मानो बाकी नहीं बचा था। विश्व यंत्रकी भाँति काम कर रहा था। नशेमें मस्त प्राणी अथवा मंत्र-मुग्ध जीव जिस प्रकार किसीके इंगितपर अपने व्यक्तित्वको खोकर काम करने लगता है 'उसी प्रकारकी गति मेरी हुई। मै तांगेपर वैठा और स्टेशनकी ओर तेजीसे रवाना हो गया। मुझे अच्छी तरह याद है कि स्टेशन जाते हुए रास्तेमें जैसे मेरी चेतना लौटी। मैं मोहाकुल हुआ और पुनः कर्तव्यकी ओर सोचने लगा। मनमें आया कि लौट चलूँ पर मन की करनेकी सामर्थ्य कहाँ थी। उधेड़-बुनमें पड़ा ही रह गया और ताँगा स्टेशनपर आ गया। बिना कहे ही सामान लेकर कुली यह कहता हुआ दौड़ा कि 'बाबूजी! दौड़िये! गाड़ी छूटने ही वाली है'। मै भी तेजीसे लपका। यदि दो मिनटका और विलंब हो गया होता तो गाड़ी न मिली होती। आज सोचता हूँ, पहले भी सोचा है और उस दिन रेलमें बैठनेके बाद ही सोचने लगा था कि यह हुआ क्या? कहाँ तो ताँगेपर बैठे-बैठे भी सोच रहा था कि लौट चलूँ और कहाँ यह सुनते ही कि गाड़ी छूट रही है सारी शक्तिसे उसे पकड़ पानेके लिए क्यो और कैसे दौड़ पड़ा? यह दृढ़ निश्चय कहाँसे आ गया?

यदि एक दो मिनट और उसी प्रकार अनिश्चित और घपलेमें पड़ा रह गया होता जिस प्रकार अब तक बिता चुका था अथवा सनककर दौड़ न पड़ा होता तो ट्रेन अपने ही आप मुझे छोड़कर चली गयी होती। सोचता हूँ उस स्थितिमें दोनों बातें रह गयी होतीं। एक ओर तुम्हारे पास पड़ा रह गया होता और दूसरी ओर हृदयको यह संतोष मिल गया होता कि बंबई तो जा ही रहा था पर जब गाड़ी ही छूट गयी तो क्या करूँ? मनुष्यकी यह विशेषता है कि अपनी दुर्बलताको आवरित करने तथा अपनी वासनाकी तृप्ति करनेका तरीका ढूँढ़ निकालता है। वह अपने सारे ज्ञान और समस्त बुद्धि तथा पूरी तार्किकताका आश्रय लेकर अपने कर्मका औचित्य ढूँढ़ निकालता है। बहुधा इस प्रकार जगतको धोखा देता है, अपने आपको धोखा देता है, ज्ञाना· भासकी शरण लेकर विचित्र बहाने ढूँढ़ निकलता है और ऊँचे आदर्शों तथा अन्य सिद्धान्तोंके पर्देमें अपनी कमजोरी छिपा लेनेका पाखण्ड रचता है पर अपनेको संतोप प्रदान कर ही देता है।

गाड़ी छूट गयी होती, या उसे छूट जानेका मैंने मौका दिया होता तो शायद स्वयं भी यही सब करता पर न जाने यह क्यों नहीं हुआ? होता कैसे? यह तो तब होता जब मैं अपने आपेमें होता! इतना कतर ब्यौत तो तब कर पाता जब बुद्धि अधीन रही होती। पर मै तो उस समय यंत्रकी भाँति न जाने किन प्रेरणाओं तथा संयोगोंसे नियंत्रित था! नियतिका सुदृढ़ और कठोर कर-पाश मुझे बरबस गरदनियाँ देते हुए भावीकी

ओर खीचे लिये जा रहा था। बलात् उसने ट्रेनके एक डिब्बेमें धमसे ला पटका। ट्रेन पकड़नेकी उत्तेजना और दौड़के कारण हृदय स्वयं इंजन हो रहा था और पेट जोरसे आँधीकी तरह पलही मार रहा था। बैठ भी न पाया था कि ट्रेन भोपा बजाती हुई चल पड़ी मानो नियतिने मुझ असहायको अपनी प्रबल चपेटसे मनमाना नाच नचानेमें सफलता प्राप्त करनेका उत्कट दंभ अनुभव किया हो और अपनी विजय पर शंख-ध्वनि करके मानव-जीवनकी निर्बलताकी सूचना दे दी हो! ट्रेन मुझे लिये हुए चली। तूफानकी भाँति प्रबल वेगसे यह गाड़ी मेरे निश्चय-अनिश्चय और कर्त्तव्याकर्त्तव्यके हृदयगत संघर्षको क्रूरता-पूर्वक पीसती हुई आगे बढ़ी। जब मेरी चेतना लौटी तब मैंने देखा कि हुँकारके आकारमें प्रवाहित धारा, वाराणसी चरणका प्रक्षालन करती हुई अनन्तकी ओर वेगसे बहती चली जा रही है। गंगामें गति देखी, ट्रेनमें गति देखी, डफरिनब्रिजके लौह और जड़ खंभोंमें स्पन्दन देखा और प्रकाशवती काशीको भी अपनेसे दूर पीछेकी ओर भागते हुए देखा। जीवन और जगत-का कैसा रहस्य है? अनन्त तथा तीव्रगति-चक्रके सिवा और है ही क्या? जीवनगति है और मृत्यु भी गतिकी ही एक मंजिल है। सृष्टि गति है और प्रलय भी गतिका ही एक स्वरूप है। गति, निरन्तर और अविश्रान्त गति, केवल गति और गतिके अतिरिक्त कदाचित् कुछ नहीं! महान अग्नि-पुञ्ज भास्कर तथा असंख्य तारकावलियोंसे लेकर लघुसे लघु अणु-परमाणु तक

तक सब गतिके अधीन है। न जाने किस लक्ष्यकी पूर्तिके लिए, न जाने किसके संकेत और किसकी प्रेरणाके वशीभूत होकर सब चक्रकी भाँति परिचालित है। किसीकी समस्या, किसीका रोना-हँसना, किसीका दुःख-सुख और किसीका 'अहं' अथवा किसीका व्यक्तित्व तिलमात्र भी महत्त्व नहीं रखता। जीवन और जगत अपने पथ पर चलता रहा है और शायद निरंतर चलता जायगा। 'इस अनन्तकी अनन्त गतिशीलताके अनन्त संमोहक रूपकी छाया निमिष मात्रके लिए मेरे सामने भी झलक उठी पर तब तक मै मुगलसराय पहुँच गया। बम्बई मेल सामने खड़ा था। सोचने-विचारनेकी अब आवश्यकता न थी। मनुष्यमें परिस्थितियोके अनुकूल अपनेको बना लेनेकी असाधारण क्षमता होती है। अभी आध घंटे या एक घंटे पूर्व किस संकटमें पड़ा हुआ था। अन्तस्तलमें जो प्रचंड संघर्ष आया उसके आघात और उसकी प्रतिक्रियासे अब भी कलेजा जैसे दबा हुआ था। परन्तु यह सब होते हुए भी जीवन-नैया जिस धारामें लहराने लगी थी उसीके अनुकूल मै भी बहने लगा था। किसीने ठीक कहा है कि काल-प्रवाह सब रोगोकी अमोघ औषधि है। थोड़ी देर पहले तुम्हें छोड़नेकी बात सोचकर हृदयमें विचित्र प्रकारकी ऐठन हो रही थी। अब वही करके काशीसे मीलों दूर आ चुका था। गंगाकी उज्ज्वल धारा और उसके तटपर स्थित द्वितीयाके चन्द्रमाकी भाँति अर्धवर्तुलाकार काशीकी रेखाको नेत्रोसे ओझल होते हुए देख चुका था। बम्बई मेलमें आसीन था जो हाहाकार

करते हुए कुछही मिनटोंमें विन्ध्याके उन्नत मस्तककी उपेक्षा करके दक्षिण पथमें प्रवेश करनेके लिए कमर कसे खड़ा था। अपनी नियति और प्रस्तुत परिस्थितियोंके चरणोमें झुकनेके सिवा मेरे सामने मार्ग ही क्या था ? एक बार तुम्हारी बीमारीकी आशंका-से हृदय जैसे डरा पर उसी क्षण मनने कहा कि अब भगवान विश्वाथ पर भरोसा करो। परवश मानव अदृश्यका सहारा लेकर ऐसेही समय तो संतोष लाभ करता है। फलतः इस सतत गतिशील जगतका अनुसरण करके गाड़ी भी आगे बढ़ी !

अब आज और अधिक लिखना नही चाहता। भावुकताका उद्वेग, स्मृतियोंकी श्रंखलाको इस प्रकार झनझनाये देता है कि मनकी एकाग्रता विचलित हो उठी है। इस स्थितिमें आज विश्राम करना ही उचित है !

तुम्हारा

कमलापति

३

नैनी सेण्ट्रल जेल
१५ मार्च, ४३

प्रिय लालजी,

बंबई ! बंबईने आज इतिहासकी रचना कर दी। आज जब यहाँ बैठे-बैठे बंबईका स्मरण करता हूँ तब घटनाओंकी विचित्र और सजीव तरंगे क्रमशः सामने उठती हैं और लुप्त हो जाती हैं। कब मैंने यह सोचा था कि उनके आघात प्रतिघातसे राष्ट्रका सारा काया-पलट हो जायगा। काशीसे जब चला तो इतना तो समझ रहा था कि इस देशमें भीतर ही भीतर भूके गर्भमें ज्वालामुखी धधक रहा है जिसका फूटना एक दिन आवश्यक है। पर बंबई इस विस्फोटका निमित्त बनने जा रहा है यह मैं नहीं समझ रहा था। मैं यह भी अनुभव नहीं कर रहा था कि उसका विस्फोट इतना भीषण, इतना व्यापक और इतना प्रचंड होगा कि भारत-

वसुंधरा एक बार आसमुद्र हिमाचल तक कंपित हो उठेगी'

मानव-समाजके इतिहासका अध्ययन बहुतसे तथ्योंपर प्रकाश डालता हुआ जिस बड़ी स्थूल बातकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है वह है उसके विकासकी क्रिया। समाजके अति आरंभिक कालसे अब तककी उसकी गति-विधिपर दृष्टि डाले तो ऐसा प्रतीत होता है कि समय समय पर किसी धाराने तत्कालीन संघटनको आमूल अलोड़ित कर दिया है। वर्तमानकी व्यवस्था और उसके बंधन जब समाजकी आवश्यकता और उसकी आकांक्षाको पूर्ण नहीं कर पाते तब उन शृंखलाओंको अपने हाथों तोड़ मरोड़ कर चूर कर देनेके लिए विचित्र उतावली भी प्रकट होती है। एक छोटे से पौधेको छोटे से पात्रमें रोप दिया जाता है। पौधा बढ़ने लगता है और वह पात्र जो एक दिन उसके विकास और उन्नतिका कारण होता है दूसरे दिन उसकी आवश्यकता पूर्ण नहीं कर पाता। एक समय आता है जब वही पात्र जो उसका धारक और उसके जीवनका साधक रहता है उसके लिए अवरोधक पाशके रूपमें प्रकट होता है। पौधेके लिए आवश्यक हो जाता है कि उस गमलेको चूर करके वह अपने जीवनके लिए अधिक व्यापक अधिक अनुकूल और अधिक उपयोगी स्थिति ढूढ़ निकाले।

समाजकी भी कुछ यही दशा होती है। एक दिन जिस बंधन और व्यवस्थाको वह स्वयं अपने हितके लिए स्वेच्छासे निर्मित करता है उन्हें ही समय आनेपर क्रूरतापूर्वक विच्छिन्न करनेके

लिए आगे बढ़ता है क्योंकि आजका विद्रोही कल पथका आव-रोधक और प्रतिगामी हो जाता है। अपने जीवनकी रक्षाके लिए उसे यह निठुर कर्त्तव्य पूरा करना अनिवार्य होता है। यही धारा है जो विकासकी क्रियाकी ओर संकेत करती है। इस तोड़ फोड़में जो बाधक होते हैं उनसे उन तत्वोंका संघर्ष अनिवार्य होता है जो वर्तमानको उन्मूलित करके नवीनकी स्थापनाके लिए अग्रसर होते हैं। यह संघर्ष ही क्रांति है। क्रांति संभवतः प्रकृतिका अटल और आटूट नियम है। उसका धर्म और सहज स्वभाव है। इसीके द्वारा वह जगतका संचालन, नियमन और विकास करती जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि विकासकी इस प्रक्रियाकी व्याख्या करो तो उसका जो वास्तविक रूप सामने आता है वह भीषण होता है। वह वास्तविक रूप एक ओर विनास और दूसरी ओर निर्माणके रूपमें भासमान होता है। एकको नष्ट करके ही दूसरेका सृजन किया जाता है। छोटेसे बीजका नाश होनेके बाद ही अंकुर अपना मस्तक बाहर कर पाता है जो कालान्तरमें चलकर फलच्छाया समन्वित महावृक्षका रूप धारण करता है। विनाश और निर्माणकी यह लीला निरंतर रूपसे, एक क्षण भी रुके बिना, अनादिकालसे चरितार्थ होती आ रही है और संभवतः तब तक होती जायगी जब तक जगत है। इसका रुकना संभव नहीं है। यदि कभी रुकेगी तो उसका अर्थ होगा इस समस्त विधि-प्रपंच-का लोप! यही क्रिया सृष्टिकी सजीवताका चिह्न है। सारे चराचर जगतका जीवन इस नियामक नियमके अधीन मालूम होता है।

बंबई ने यह सिद्ध कर दिया कि यह बूढ़ा भारत, इसकी पुरानी संस्कृति और इसके शोषित तथा दलित राष्ट्र-देहमें वही अविरल धारा नव-रस और नव-जीवनका संचार कर रही है। उसके लिए यह समय नहीं रह गया कि वर्तमान दासता, बंधन तथा उत्पीड़नके गलाघोटू शिकंजेमें अब एक क्षण भी पड़ा रहनेके लिए सहमत हो जाय। जो है उसे पैरोंके नीचे रगड़कर धूलमें मिला देने तथा उसी पर अपने भविष्यके भव्य भवनको खड़ा करनेके दृढ़ संकल्पकी आग भीतर ही भीतर धधकने लगी थी। बंबईने मुझे उसी भयावनी ज्वालाका दर्शन करा दिया।

मै काशीसे हृदयपर बोझ लिये हुए बबई पहुँचा। पर वहाँ पहुँचते ही मनमें विचित्र परिवर्तनकी अनुभूति हुई। मुझे ऐसा आभास हुआ मानो सारा वायु-मंडल किसी प्रकारके विद्युदा-वेगसे आच्छन्न है। जिस ट्रेनसे मै बंबई गया था उसमें युक्त-प्रांत तथा बिहारके कतिपय प्रतिनिधि भी जा रहे थे। प्रयागमें समितिके कई सदस्य भी साथ ही डिब्बेमें आसीन हुए। किसीमें मैंने रंचमात्र भी उस वातावरणकी छाया नही देखी जिसका अनुभव वहाँ पहुँचते ही हुआ। कालका प्रवाह आगे बहता जाता है और जो सावधानीसे उसके साथ स्वयं प्रवाहित होनेके लिए सतर्क नही रहते वे पीछे छूट जाते हैं। आज मै अनुभव कर रहा हूँ कि हममें से अधिकतर लोग सचमुच परिस्थितिकी वास्तविक गतिसे परिचित न थे। ट्रेनमें हम यह कल्पना भी नही करते थे कि आजसे ७२ घंटेके बीतते-बीतते देशके वक्षस्थल-

पर दुर्धर्ष वेगवान झंझावात घहरा उठेगा जिसके मध्यमें भया-वनी विभीषिका उल्लंगिनी नृत्य करती दिखाई देगी। हममेंसे कितनोंने सोचा था कि देशके अंधकाराच्छन्न आकाशमें अपनी लाल जिह्वासे रक्त-पान करती हुई महाकाली विद्युच्छटाकी भाँति चपल तांडव करेगी और उसके एक एक चरण-विक्षेपसे लय और स्वरोंकी वह लहरी निकल पड़ेगी जो भारत-भूके भविष्यका सृजन करनेके लिए वर्तमानके विनाशका मंत्र फूँक देगी। इस आगत महा विस्फोटकी पूर्व सूचना विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशनके प्लेटफार्म पर पैर रखते ही जैसे मिलने लगी। यह न समझना कि हममेंसे किसीने किसीसे कुछ कहा। कहने सुननेकी कोई आवश्यकता ही क्या थी? एक आभास, एक स्पंदन, एक संकेत, एक सनसनाहट वायुमंडलमें व्याप्त थी जिसकी अनुभूति हृदय करने लगा। आज मैं उसका वर्णन लेखनीके द्वारा करनेमें समर्थ नहीं हूँ। अनुभूतिका वर्णन कदाचित किया ही नहीं जा सकता। वह तो भाषाकी सीमासे परे है अतएव वर्णनातीत है। अनुभूतिका अनुभव ही होता है उसका स्वाद ही लिया जा सकता है और उसीमें वास्तविक रस मिलता है। जन्मांधको चन्द्र ज्योत्स्नाके शुभ्र और धवल रूपका ज्ञान भला शब्दोंके द्वारा क्या कभी कराया जा सकता है?

३० घंटेकी यात्रा समाप्त करके हम पहुँचे थे। मध्याह्न हो चला था। दो घंटे बाद ही सर्व भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक होनेवाली थी। प्रश्न था इस थोड़े समयमें ही निवास स्थानपर

पहुँचकर नित्य-नैमित्तिक कार्योंसे फुर्सत पा लेना और ठीक वक्तसे समितिके अधिवेशनमें पहुँच जाना। मनुष्यका बहिर्मुख स्वभाव हृदयके तारोंसे निर्गत सांकेतिक शब्दोंकी ओर प्राय: ध्यान ही नहीं देता। जीवनके गूढ़ और तात्विक मुहूर्तों पर मानव-हृदयका चैतन्य उसी प्रकार भुकभुक करके जलता और बुझता है जैसे बटन दबाकर और पुन: उसे छोड़कर कोई बैटरीवाला टार्च जलाता और बुझाता हो। पर छनछन जल उठनेवाले इस सिगनलकी ओर हम ध्यान ही कब देते हैं? मै भी साधारण मन और भावसे सब कामसे फुरसत पा अधिवेशनके लिए निर्मित उस विशाल मंडपकी ओर चल पड़ा। बंबईमें गमनागमनके लिए ट्रामकी बढ़ी भारी सुविधा है। न एक्के तॉगेवालोंसे मोल-भाव करनेकी आवश्यकता पड़ती है, न खिचखिच और न यही सुनना पड़ता है कि "बाबूजी, दूसरी सवारी खोज लीजिये'। ट्रामके स्टेशन पर चले जाइये। सड़कों पर उसके खंभे सूचना बोर्डके सहित गड़े खड़े हैं। ट्राम वहॉ आकर खड़ी होती है। आप चुपकेसे बैठ जाइये और गाड़ी चल देगी। धीरेसे टिकटवाला आपके निकट आवेगा। जहॉ जाना हो वहॉंका नाम बता दीजिये। टिकट मिल जायगा और निर्धारित पैसे ले लेगा। झगड़े झंझटसे पाक साफ अपने गन्तव्य स्थानपर पहुँच जाइये। हम लोगोने भी ट्रामकी शरण ली और ग्वालिया टैंककी ओर चल पड़े।

बंबई यों ही जनाकीर्ण नगर है। भारतके नगरोंमें कदाचित यह

सबसे अधिक विशाल और लक्ष्मीकी लीलासे लोल है। धरातलसे अति ऊँची गर्वसे मस्तक उठाकर पृथ्वीकी ओर उपेक्षाके साथ देखती हुई विशाल अट्टालिकाओंकी शोभा अपनी महिमासे हृदयको प्रभावित करती रहती है। लाखो और करोड़ों नर-नारियोंके अविश्रान्त श्रमसे उपार्जित सम्पत्तिका अधिकारी बनकर एक वर्गविशेष किस प्रकार भूमिको भोगपूर्ण बना लेता है इसका अच्छा उदाहरण बंबई है। क्रमबद्ध आती-जाती मोटरोंकी कतारमें बैठे नर-नारियोंके मुखपर स्वपूजा और तृप्ति तथा विलासकी विचित्र आभा देखना कठिन नहीं होता। वर्तमान पूंजीवादी सभ्यता और संस्कृतिके इन दुलारे सपूतोंके हाथमें ऐश्वर्य, वासना और भोगकी उस आगकी लव पारदर्शी दृष्टिके सामने झलक उठती है जो बाह्यके आडंबरका भेदन कर भीतर प्रवेश करनेकी क्षमता रखती है। स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि इन प्राणियोंको अपने समाजके उन अभावोंका कोई परिज्ञान नहीं है, जो दिनरात मेहनत-मजदूरी करके भी अपने बच्चोंकी भूख मिटानेमें समर्थ नहीं होते। अपनी माँके सूखे स्तनके निर्जीव चमड़ेको मुँहमें डालकर चूसनेवाले और अपनी लारको पीकर उसे ही माँके हृदयका नीर माननेवाले ये दुध-मुँहे, कोमल बालक अपनी अँतड़ियोंको गलाकर किस प्रकार इहलीला समाप्त करते हैं इसका पता श्रीकी गोदमें उन्मत्त विहार करनेवाले इन धन-पशुओंको भला कैसे हो सकता है। मानवताके ऊँचे आदर्श, न्यायकी भावना, धर्मके पुनीत सिद्धान्त, विज्ञानके आश्चर्यजनक

आविष्कार सब मानो इन दलित अभागोंके लिए कोरी बकवादके सिवा और कुछ नहीं है। मंदिरोंमें स्थापित पत्थरकी देव-प्रतिमाएँ इनकी उपेक्षा करती हैं, मसजिदोंके कंगूरे इनपर हँसते हैं और गिरजेके गुम्बज आकाशमें नीहारिकाओंसे होड़ लगाते हुए इनकी स्थितिपर निष्ठुरतापूर्वक नाक सिकोड़ लेते हैं। पादरियों, मौलवियों और पंडितों तथा धर्माध्यक्षोंका एक रोआँ भी चिन्मयके इन पुनीत मंदिरोंके पददलन पर विकल नहीं होता। जड़-विज्ञान तो इन्हें अपनी चक्कीका घेवन समझता है और पीसकर अपनेको सार्थक समझता है। रह गया मानव-हृदय, उसकी कोमल भावनाएँ और ऊँचा आदर्शवाद! ये तो कदाचित् तभी मर गये और लुप्त हो गये जब विलासकी पूजा और भोगोंकी तृप्ति जीवनका एकमात्र लक्ष्य बन गया। अपने सुखके लिए मानव मानवका कलेजा फाड़ खाये और चुल्लू भर खून उदरमेंसे निकालकर पीले और फिर तृप्त होकर करे विकराल अट्टहास! जाने दो इस घृणित लीलाको, और इसे यहीं छोड़ दो।

मैं जनाकीर्ण बंबईमें ट्रामपर बैठा ग्वालिया टैंककी ओर जा रहा था। धूम मची हुई थी सर्वभारतीय कांग्रेस कमेटीके अधिवेशनकी। अधिकतर जानेवालोंका मुँख उसी ओर था। कोई तमाशबीन था, कोई दर्शक था, कोई नेताओंका दर्शनाभिलाषी था, कोई दूकानदार था जो कुछ बेचकर स्थितिसे लाभ उठाना चाहता था। जिसे देखिये ग्वालिया टैंककी ओर।

किसीको भी यह नहीं मालूम था कि जिसे आज वह तमाशा समझ रहा है, वही कल हो जायगी प्रज्वलित अग्निकी भयावनी रक्त जिह्वा जिसे देखकर कलेजा कांप उठेगा। थोड़ी देरमें मैं भी मंडपके विशाल मुखद्वारपर पहुँच गया। भीड़ अपार थी। भीतर प्रवेश करना पूरी कुश्ती लड़ना था। स्वयंसेवकोंका दल मार्गका निर्धारण कर रहा था पर उनकी विनती कौन सुने ! गुलामीसे पतित हुए भारतीय विनती और अनुनयके सामने झुकना अपमानकारक समझते है। हम पृथ्वीके उन गिरते हुए लोगोंमें है जो ठोकरोंका महत्त्व समझते हैं। मैने देखा है कि भीड़में, मेले-तमाशोंमें, पर्वपर और मंदिरोंमें सम्मानपूर्वक सेवा करनेवाले स्वयंसेवककी विनती और उसके निर्धारित नियम हमें क्षुब्ध कर देते है। उससे भिड़ जानेमें और यदि संभव हो तो अर्धचन्द्रका आरोपण कर देनेमें ही हमें अपने अहंभावकी तृप्ति प्राप्त होती है। पर वहीं हम पुलिसके कोड़ों और गालियों तथा कभी कभी ठोकरोंको मस्तकपर धारण करके अपनेको कृतकृत्य समझते हैं। फिर न जाने कहाँसे नियमपालन और सौजन्य टपक पड़ता है। यह है उस दासताका परिणाम जिसने हमें मनुष्यताके स्तरसे नीचे गिरा दिया है।

इस परिणामको भोगता हुआ, दम घुटवाता, पीठ और पसलीकी हड्डीको कुचवाता हुआ किसी प्रकार भीतर पहुँच ही गया। आगे बढ़कर मंडपमें घुसा। बरसातका दिन था इस लिये फूसकी मोटी टट्टरोंसे सभा-मंडपका निर्माण किया गया था।

पृथ्वी आर्द्र थी, अतः बैठनेके लिए कुर्सियोंका प्रबन्ध था। ऊँचे मंचपर नेतृवृन्द आसीन था। मंडपमें ज्यों ही कदम रखा वैसे ही वहाँके गंभीर भारयुक्त और महिमार्चित वातावरणके बोझसे दब सा गया। पचीसों हजार नर-नारी वितानके नीचे बैठे हुए थे। सबके मुखमंडलपर वैसा ही भाव था जैसा किसी देव-प्रतिमाके सामने नतमस्तक पुजारीके मुखपर दिखाई देता है। इस गंभीरताका कारण सहसा स्पष्ट हो गया। मंचकी ओर दृष्टि गयी और देखा कि मध्यमें गांधीजी आसीन हैं और उनके चतुर्दिक् कार्यसमितिके सदस्यगण बैठे हुए हैं। मौलानाकी धीर किंतु समर्थ मूर्ति, जवाहरलालजीकी तेजस्विनी किन्तु कोमल कल्पनाके समान कमनीय, कान्तिमयी, आलौकिक शुभ्र शोभा, सरदारकी शान्त परन्तु जगत्को तृणवत् समझती हुई भृकुटिकी छटाने अजब समा बाँध दिया था। इन प्रकाशमान उज्वल नक्षत्रोंकी आभाके मध्य प्रकांड प्रभा-पुंज भास्करकी भाँति वह तपःपूत काया स्थित थी जिसके हाथोंमें भारतीय राष्ट्रवादकी नैयाकी पतवार है। गांधीजीके ओठोंकी मुस्कराहट उनके अंत-स्तलके आनन्दोदधिकी तरंगोंका प्रतीक थी। उनके तेजस्वी नेत्रोंमें करुणाकी लाली उत्पीड़ित और निर्दलित मानवताकी वेदना प्रति-बिंबित कर रही थी। भृकुटियोंमें पड़े बल उस लोकोत्तर महामानवकी अंतर्ज्योतिकी ओर संकेत कर रहे थे जो उसे इस भौतिक जगत्की सीमासे कहीं दूर, उस पार देखनेमें सहायता प्रदान करते हैं और विशाल ललाटकी स्पष्ट रेखायें गंभीर चिन्तन-

और सत्यानुभूतिकी सूचना दे रही थीं। समस्त प्रस्तुत दृश्य तथा अदृश्य उपकरणोंका घात-प्रतिघात वातावरणको विचित्र निस्तब्धता, गंभीरता और भयोत्पादकता प्रदान किये हुए था।

अच्छी तरह याद है कि वातावरणमें कुछ ऐसा रोब, ऐसा दबदबा छाया हुआ था कि मंचके सामनेसे उस पार जाकर अपने लिये एक आसन ढूँढ़नेमें मुझे संकोच हो रहा था। किसी प्रकार झुककर उधर निकल गया और जल्दीसे एक कुरसीकी शरण ले ली। एक बार पुनः ध्यानसे अपने चारो ओर देखा। देखा कि पत्रकारोंकी महती मंडली डटी हुई है। अनेक श्वेतांग पत्रकारोंको देखकर उनके संबंधमें पास खड़े बंबईके एक प्रसिद्ध कार्यकर्तासे जिज्ञासा की। उन्होंने बताया कि अमेरिका और इंगलैण्डके अनेक विदेशी पत्रकार डटे हुए हैं। बहुतोंके गलेमें कैमरा लटक रहा था, हाथमें टाइपराइटर था। अनेक महिला पत्रकारोंके भी दर्शन हुए। चीनके भी दो चार अखबारनवीस और संवाददाता दिखाई दिये। इस देशके मेरे हमपेशा तो थे ही। सभामंचके बिल्कुल सामने बने हुए प्रांगणमें हम सदस्यगण स्थित थे। देखा कि सदस्योंकी असाधारण उपस्थिति है। इसके पूर्वके कतिपय अधिवेशनोंमें इतनी अधिक संख्यामें उपस्थित सदस्योंको देखनेका सौभाग्य कदाचित बहुत दिनोंसे नहीं मिला था। प्रांगणके दाहिने बाँये और पीछे बंबईके दर्शनार्थी नागरिकोंकी अपार भीड़ बैठी हुई थी। युवक-युवतियाँ, वृद्ध नर-नारी सभी थे। पत्रकारोंमें जिज्ञासा और उत्सुकता देखी, सभासदोंमें गंभीरता और आगत

समयके संबंधमें संशय, किंतु संकल्प देखा और दर्शनार्थियोंमेंसे अधिकतरका मुंह उनके सहज कौतूहल भाव और आश्चर्यका दिग्दर्शन करा रहा था।

मैं बंबईके संबन्धमें बहुत कुछ लिख गया। महीनों बीत चुके हैं पर आज जब स्मृति जाग उठी है तब उस अध्यायके पृष्ठके बाद पृष्ठ मेरे नेत्रोंके सम्मुख मानो अनावृत होते जा रहे हैं। एक एक घटना स्पष्ट झलक रही है। उस समयकी बातें आज क्यों लिख रहा हूँ नहीं जानता। मालूम नहीं इस वर्णनसे तुम्हारा कुछ मनोरंजन भी होगा या नहीं। पता नहीं यह लम्बा व्याख्यान तुम्हारे जी ऊब जानेका कारण तो न होगा? पर जो हो मैं तो प्रवाहमें लिखता ही गया। अब चेष्टा करूँगा कि बंबई-का अध्याय शीघ्र ही समाप्त करूँ। मुझे आज ऐसा लगता है कि मैं बंबई जा सका यह अच्छा ही हुआ। मैंने वहाँ जो अनुभव किया वह मेरे जीवनकी असाधारण घटनाके रूपमें जीवन-पर्यन्त वर्तमान रहेगी। मैंने देखा कि जन-महा-समुद्र जब कभी विक्षुब्ध होता है तब कैसा विकराल रूप धारण करता है। राष्ट्र जब जीवनकी रक्षाके लिए आगमें कूदनेका संकल्प करते हैं तब वे किन अदमनीय भावनाओं और स्फूर्तिकी उत्ताल तरंगोंमें हिलोर लेने लगते हैं इसका साक्षात्कार करनेका अवसर जीवनमें एकाधिक बार ही मिला करता है। ऐसे ही मुहूर्त होते हैं जब विशाल जन-समूह इतिहासका निर्माण करते है, जो आनेवाली संततिके जीवनको प्रभावित कर देता है। भारतमें आनेवाले

प्रलयंकर राजनीतिक भूकंपका पूर्वरूप कितना विराट पर कितना उल्लासप्रद था। संभव है आज उसका महत्त्व न मालूम हो पर मुझे तनिक भी संदेह नहीं है कि उसने सारे राष्ट्रदेहको जिस प्रकार आपादमस्तक आलोड़ित किया है वह इस देशके सहस्राब्दियोंके इतिहासमें एक नया किन्तु गौरवपूर्ण अध्याय जोड़ देनेमें समर्थ हुआ है।

मैं समझता हूँ कि तुम श्रान्त हो जाओगे। कहानी ही क्यों न हो धीरे धीरे सुनाना अच्छा होता है। उससे और सुननेकी उत्सुकता बनी रहती है। आज यहीं बस !

तुम्हारा

कमलापति

४

नैनी सेंट्रल जेल
१५ अप्रैल, ४३

प्रिय लालजी,

पिछले पत्रमें बंबईकी कहानी कह रहा था और कहते कहते बीचमें ही उसका सूत्र टूट गया। गाथा एकबारगी लंबी होकर तुम्हें थका न दे इस कारण उसे एक सीमामें ही रोक रखना उचित जान पड़ा; पर कहानीको अधूरी छोड़ना नहीं चाहिये और मैं स्मृतियोकी शृंखला भी छिन्न करना नहीं चाहता। साथ ही मेरा यह भी विश्वास है कि यह कहानी तुम्हें रोचक लग रही होगी। मैं तुम्हारी रुचि और स्वभावसे परिचित हूँ। किस्से—कहानी और उपन्यास पढ़नेमें तुम्हें बड़ा रस मिलता है। सिनेमा देखनेके तो भक्त ही हो। रेडियो सुनने और अखबार पढ़ने तथा आजकी दुनियाँका हाल जाननेमें भी

तुम्हारी दिलचस्पी है। ये बातें मुझे विश्वास दिला रही हैं कि यह छोटी सी कहानी तुम्हारा मनोरंजन करेगी और तुम इसे चावसे पढ़ोगे। फलतः मै लिख चलता हूँ और तुम पढ़ चलना।

मैं तुम्हें बंबईके सभा-मंडपमें, नेताओं और सदस्यों, दर्शनार्थियों और पत्रकारोंके साथ छोड़ आया था। वह मंडप, जो रंग-बिरंगी पुष्पमालाओंसे सुसज्जित था, जिसमें तिरंगी झंडिया लहलहाती हुई उसकी शोभा बढ़ा रही थीं, व्याख्याताओं-का स्वर दूर तक श्रुतिगोचर हो सके इसलिये लाउडस्पीकरके दर्जनो भोंपे मुह बाये टॅगे हुए थे। सैकड़ों बिजलीके पंखे लटकते हुए जोरका चक्कर काट रहे थे मानों अपने कर्मपाशसे अधरमें झूलता हुआ त्रिशंकु योगचक्रमें सिर धुनता हुआ घूम रहा हो। रंग-बिरंगे विद्युत बल्ब जलकर व्यापक शून्यमें अपनी झिलमिल छटा दिखानेवाले नक्षत्रोंके गुच्छेकी शोभा मात करनेके लिए उत्सुक दिखाई दे रहे थे। विविध प्रकारके रंगीन परिधानोंसे आवृत फैशनेबल महिला—समाज उसी प्रकार सुशोभित था जिस प्रकार सुन्दर वाटिकाकी सुघड़ क्यारियोंमें विकसित कुसुम—कलिकाएं अपने सौरभ और मधुरिमासे मोहकता तथा सौन्दर्यकी सृष्टि करती दिखाई देती हैं। पर यह सब था बाह्याडंबर जिसके अदृश्य अंतस्तलमें एक आग सुलग रही थी, जिसका दर्शन अभी नहीं हुआ था। शस्य-श्यामला, रस-प्रसविनी और धीर-गंभीरा पृथ्वीके गर्भमें धधकनेवाली ज्वालाकी कल्पना भी भला कौन, कब और कहाँ कर पाता है?

पर समय आता है जब रसा भी जलते अंगारोंको उगलनेके लिए बाध्य होती है। ज्वालामुखी फूट पड़ते है, धधकते शोले आकाश तक उड़ते दिखाई देते हैं और पृथ्वीका कलेजा जलकर अपने परितापसे अपने निकटवर्ती सगे-संबंधियोको भस्मीभूत करता दिखाई देता है। अपने ही आवेगसे धरातल समस्त अचल गिरिश्रृंगों और अगाध महासमुद्रोको लिये दिये कांप उठता है। चारो ओर विक्षोभ, हाहाकार चीत्कार और त्रास परिव्याप्त हो जाता है। यही क्षण है जो सृष्टिके हृदयमें निहित हलचल, उथलपुथल और क्रान्तिके तत्त्वकी ओर संकेत करता है। यह विस्फोट होता है अपने ही रूपमें उलट फेर कर देनेके लिए। इसे ही क्रान्ति कह सकते हैं। अन्ततः यह उलट फेर ही तो विकास-का मूर्तरूप है। जो था वह गया और उसके स्थान पर दूसरा आया। यह न समझना कि क्रान्ति कोई आकस्मिक घटना है जो दैवात् घट जाती है। वह संयोग नहीं बल्कि वह तो प्रक्रिया है जो निरंतर कार्यशील अनेक कारणोंके परिणामके रूपमें प्रकट होती है और पुनः स्वयं किसी कार्य अथवा किसी परिणामका कारण बन जाती है।

बंबई भारतके इतिहासमें घटित होनेवाले उसी महा विस्फोटका निमित्त बनने जा रहा था। गांधीजी उस प्रचंड और अन्तःप्रज्वलित भयावने ज्वालामुखीके रूपमें वर्तमान थे जो भारत भूमिके हृदय-दाहको बाहर निकाल कर समस्त वायु-मंडलको विक्षुब्ध करनेवाला था। शताब्दियोंसे यह देश अप-

मान, दलन, शोषण और उत्पीड़नसे ग्रस्त है, पर उसे अपनी इस दयनीय स्थितिका जैसा बोध आज हुआ वैसा कदाचित पहले कभी नहीं हुआ था। व्यापक और सामूहिक भावसे हुआ यह साक्षात्कार गहरे अन्तरदाहका कारण था। महायुद्ध भयानक तूफानकी तरह पृथ्वीके एक कोनेसे उभड़ा और सारे विश्वपर छा गया। युद्धोंका फूट पड़ना भी कोई आकस्मिक घटना नहीं है। यह भी बहुतसे कारणोंका परिणाम है। उसे किसी मूल रोगका उपसर्ग समझना चाहिये और इसी रूपमें जब देखोगे तब उसका वास्तविक रूप समझमें आवेगा। वर्तमान महायुद्ध जगद्व्यापी महा उत्क्रान्तिका ही प्रतीक है, जो समस्त आधुनिक स्थापित व्यवस्थाको समाप्त करनेके लिए प्रकट हुआ है। इसे समझनेके लिए तुम्हें थोड़ा पीछे जाना पड़ेगा। पत्रकी धाराको थोड़ी देरके लिए दूसरी ओर मोड़ता हूँ।

आजसे दो सौ वर्ष पूर्व योरपमें ज्ञानकी एक नई धारा प्रवाहित हुई। तब तक मानव समाजने अपनी विकासकी यात्रामें जिन सत्योंका पता पाया था, उससे बिल्कुल अभिनव और भिन्न मौलिक तत्त्वोंको ढूंढ निकालनेमें पश्चिमके लोग सफल हुए। उसी नवीन ज्ञानज्योतिको हम विज्ञान कहते हैं। वैज्ञानिक ज्ञानने मानव समाजको नया दृष्टिकोण और नया जीवन प्रदान किया। उसने उनमें नयी जागरूकता और असाधारण सक्रियता तथा अलौकिक बल संचरित कर दिया। इस वैज्ञानिक-ज्ञानने मनुष्यके सामने प्रकृतिके अनन्त पट एकके बाद दूसरे,

खोल दिये। मनुष्यने तब तक महा प्रकृतिकी अदृश्य लोकोत्तर शक्तिकी लीलाको देखकर अचंभा ही प्रगट करना सीखा था। बादलोंकी प्रचंड गड़गड़ाहटके बीच चमक कर लुप्त हो जानेवाली बिजलीकी कौंधसे मनुष्य चकित होता था। कभी उसके भयसे त्रस्त होता था, कभी उसे उसमें अनुपम सौन्दर्यका आभास मिलता था।

घुमड़ घुमड़ कर एकत्र होनेवाली मेघमाला, सूर्यका उज्वल प्रकाश, प्राणदायक पवन, महा समुद्रोंकी अत्यन्त जलराशि, पर्वतोंके हृदयसे हाहाकार करते हुए हहर कर गिरनेवाले झरनों और पृथ्वीकी उर्वरता तथा उसके रत्न—गर्भित स्वरूपका ज्ञान मनुष्यको पहले भी था। ये समस्त उपकरण उसके जीवनके लिए सहायक थे। इनकी विचित्रता उसके मानस क्षेत्रमें प्रतिबिंबित होकर उसे भावुक बनानेमें सफल होती थी। तब तक वह इस रंग-बिरंगी दुनियाँके पीछे किसी अदृश्य विभुकी लीला और उस चितेरेकी कलामात्रकी अनुभूति करता था और आदरसे नतमस्तक हो जाता था। अपनी ससीमता देखकर आँख मूँद लेता था। ऊषाकी लाली और चपलाकी चमक तथा जल-निधिकी गंभीरता तथा कादंबिनीकी मोहकता कविहृदयकी कलाका विषय तो बना पर उनका उपयोग इससे अधिक भी किया जा सकता है इसका ज्ञान मनुष्यको इस वैज्ञानिक युगमें ही हुआ। उसके सामने महिमामयी, महाशक्तिशालिनी प्रकृतिका एक और पहलू भी प्रकट हुआ। उसने देखा कि मानव अपनी बुद्धि तथा मौलिकताके

बल पर इस अनन्त शक्तिस्रोतसे बहनेवाली धाराका उपयोग करके महान ऐश्वर्यका अधिकारी भी हो सकता है। उसके जीवनका विस्तार अकल्पित रूपसे बढ़ जा सकता है और जिन संपदाओंकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी वे सहज ही उसके चरणोंमें लोटने लग सकती हैं।

कोयला, लोहा, आग, पानी, भाप, धुँवा, सूरज, बिजली आदि पदार्थ, जो अवतक प्राकृतिक शक्तिके प्रतीक मात्र थे, मनुष्यके सामने अब नये रूपमें आये। उसने इनका कुछ और उपयोग करनेकी कला जान ली और देखा कि यह नयी तरकीब उसे असाधारण शक्ति और क्षमता प्रदान करनेमें समर्थ है। इस वैज्ञानिक ज्ञानके फलस्वरूप योरोपमें अठारहवीं शताब्दीमें औद्योगिक क्रांति हुई। मनुष्यके जीवन, उसके रहन-सहन, उसके दृणिकोणमें परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक था। जिस ज्ञानने उसे प्रकृतिकी शक्तियोंपर अधिकार स्थापित करने और उसका उपयोग तथा नियंत्रण करनेका ढंग सुझा दिया वह सारे सामाजिक जीवनके अंग-प्रत्यंगको प्रभावित करे तो आश्चर्य क्या है? तुमने रामायणमें रावणकी लंकाके संबन्धमें पढ़ा होगा। कहते हैं कि उसका ऐसा प्रभाव था कि उसके डरसे पवन-देवता लंकामें झाड़ दिया करते थे, अग्निदेव उसे गरमी प्रदान करते थे, चन्द्र उसकी सभामें प्रकाश पहुँचाते थे। रावणकी लंकामें यह सब होता था या नहीं यह तो भगवान ही जाने पर आज तो समस्त मानवसमाज समान रूपसे प्रकृत-देवोंसे अपनी सेवा करानेमें समर्थ है। जब

चाहो तब पवन-देव मंद समीर प्रदान करें, अग्निदेव गरमी पहुँचावें, विद्युल्लता प्रकाश प्रदान करे। प्रकृति चेरीकी भाँति मनुष्यकी सेवामें तल्लीन है। उत्पादन और गमनागमनके साधनोंमें हुए असाधारण परिवर्तनने पृथ्वीका स्वरूप ही बदल दिया है। सारा जगत एक सूत्रमें आबद्ध हो गया। मानो प्रकृतिने मनुष्यकी गोदमें महती विभूति उड़ेल दी है।

पश्चिममें नये नये कल-कारखाने उठ खड़े हुए। कोयला, लोहा, आग, पानी, और भापका उपयोग करके उत्पादनकी सारी क्रिया ही बदल दी गयी। पदार्थोंका निर्माण मनुष्य महीनों मेहनत करनेके बाद कर पात था। अपने हाथ और दिमागकी कारीगरीसे वह सामान तैयार करता था, पर जो चीजे अब तक थोड़े परिमाणमें महीनोंका समय लगानेके बाद बन पाती थीं वे अब मिनटोमें ढेर की ढेर बनने लगीं। धीरे-धीरे इतना माल बनने लगा कि मनुष्य उसे खपानेमें भी समर्थ न होता। ज्ञानका यह नया प्रकाश पहले योरोपके ही अन्तरिक्ष पर उदीयमान हुआ। फलतः योरोपके प्रदेश कल-कारखानोंसे भरने लगे और उनके द्वारा उत्पादित पदार्थोंसे पटने लगे। एक समय ऐसा आया जब वैज्ञानिक जीवन इतना विस्तृत हुआ कि योरोपकी भूमि उसके लिए काफी न रह गयी। आवश्यकता हुई कि उस परिधिसे बाहर निकल कर पृथ्वीके दूसरे अधिक विस्तृत स्थानोंमें सांस ले। इस स्थितिका आना आवश्यक था। जिन देशोमें कल-कारखाने बने, उन्होने पहले अपने देशकी सीमामें रहनेवालोको

अपने कारखानोंसे बने मालसे परितृप्त किया। पर मालकी उत्पत्ति इतनी होने लगी कि देशवासियोंकी जरूरतको पूरा करनेके बाद भी मिल-मालिकों और कारखानेदारोंका गुदाम रीता न होता। तब योरोपसे भी बाहर जानेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। गमनागमनके नये तरीके विज्ञानने ही सुझा दिये, नये-नये तरहके अस्त्र-शस्त्र भी उसकी कृपासे बनने लगे थे। नये ज्ञानका जोश, नयी दीप्ति और नया बल लेकर योरोपियन पूंजीवादी देशोंके विधाता निकल पड़े। अब उन प्रदेशोंकी पारी आयी जहाँ योरोपके विज्ञानकी आभा भी अभी पहुँची न थी। पहले वहाँका व्यापार किया जाने लगा। पर बादमें देखा गया कि सफलतापूर्वक व्यापार करनेके लिए आवश्यकता है उन प्रदेशोंको अपने आधीन करनेकी। योरोपके एक नही अनेकों देश क्रमशः व्यापार क्षेत्र ढूँढ़ने लगे। परस्परकी प्रतिस्पर्धा तो अनिवार्य थी ही। दुनियाँकी वे मंडियाँ जहाँ एक अपना माल खपाता, अपने ही लिये सुरक्षित रखना चाहता। किसी दूसरे प्रतिद्वन्दी का प्रवेश उसे वांछनीय नहीं था। फलतः आवश्यकता प्रतीत हुई कि उन मंडियों अथवा प्रदेशोंको आधीन करके अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया जाय।

ऐसा करनेमें अधिक कठिनाई भी न थी। जो प्रदेश अब तक विज्ञानकी नयी लहरसे सिंचित नहीं हुए थे, वे नव-शक्ति-सम्पन्न, जागृत तथा नवोत्थित राष्ट्रोंके सामने टिक कैसे पाते? एक ही दो धक्केमें वे चरणोंमें लोटने लगते। इसी प्रकार उप-

निवेशोंकी स्थापना हुई। भारत भी इसी लिप्साका शिकार हुआ। अठारहवीं शताब्दीके भारतके इतिहासकी ओर देखो और उसी समयकी दुनियाँ पर नजर डालो तो स्पष्ट हो जायगा कि यह क्रिया किस प्रकार चरितार्थ हुई। भारतमें कतिपय विदेशी शक्तियाँ मैदानमें उतर पड़ी थीं। पोर्चुगीज, औलन्देज, फरासीसी-अंग्रेज आदि हजारों मीलकी यात्रा करके और अगम्य महासागरोंका संतरण करते हुए यहाँ आये थे और वर्षों तक परस्पर चढ़ा-ऊपरी करते रहे। पर इस कशमकशमें और सब टिक न सके। अठारहवीं शतीमें धीरे-धीरे अंग्रेजोका पैर जमने लगा। उनमें उत्साह था, नया जीवन था, नयी विचारधाराकी उत्प्रेरणा थी, नये ज्ञान प्रकाशसे पथ आलोकित था, नयी सभ्यता और संस्कृतिका बल था। जागरूकता थी, अपना काम कर डालनेका दृढ़ सङ्कल्प था, बुद्धि थी और खतरे उठाने तथा विघ्न-बाधाओ और कष्टोंका सामना करनेका अदमनीय साहस था। नये साधन उपलब्ध थे, नये तरीके और नये अस्त्र-शस्त्रसे संपन्न और सुसज्जित थे। उनके देशमें बहनेवाली नयी ज्ञान—गंगा उन्हें नयी नयी सिद्धियाँ प्रदान करती जा रही थीं। और यहाँ! यहाँ पतनका वह प्रवाह जो हर्षवर्धनके बाद आरंभ हुआ था अपनी चरमताको पहुँच रहा था। यह सच है कि हमारी सभ्यता हजारों वर्ष पुरानी थी। भारतने दुनिया देखी थी, अपने ज्ञान-विज्ञानसे जगतमें पुनीत सांस्कृतिक धारा बहाकर मानवताके विकासका मार्ग प्रशस्त किया था। एक समय उसने जगतके सामने जीवनके

आदर्शों और उसके गुह्य तत्त्वोंको आँकनेके लिए मूल्योंका मापदंड स्थापित किया था। गंगा और सिंधुके तट पुनीत ज्ञान-गरिमासे सजीव थे। आर्यावर्त विश्वके श्रेष्ठीकरणकी महत्त्वाकांक्षासे प्लावित था। उस समयके भारतमें आँख खोलकर और सिर उठाकर अपने चारो ओर देखनेकी शक्ति थी। उसमें सचेष्टता थी, ज्ञानकी पिपासा थी और जीवनका समुचित उपयोग करनेकी क्षमता थी। वह जगतसे आदान-प्रदान करनेके लिए तैयार रहता था। सत्यकी खोजके लिए उसकी उत्कंठा असीम थी। वह जानता था कि किसी एक कालमें, किसी एक स्थानमें रहनेवाला चाहे कोई कितना ही बड़ा क्यो न हो, यह दावा नही कर सकता कि उसने जो कुछ कह दिया वही सत्यका अतिम और अशेष स्तर है। वे सत्यके इस तत्वका अनुभव करते थे कि सत्यका स्वरूप निःसीम है और मानवता जब तक रहेगी तब तक पदे-पदे आगे बढ़ती जायगी और नये नये रहस्य उदघटित होते रहेंगे। यह क्रिया कभी समाप्त न होगी और न वह समय कभी आ सकेगा जब मनुष्य-समाज यह कहे कि अब उसे कुछ और जानना तथा देखना बाकी नहीं रह गया। आगेकी ओर उसकी इस प्रगति और महायात्रामें ही उन्हें मानव जीवनकी चरम सार्थकता अभिज्ञात थी। उनमें सदा जागते रहने और जिज्ञासाकी प्रबल चाह थी जो उन्हें महान बनाये हुए थी। फलतः उन्हें जहाँ कहींसे ज्ञान मिलता था उसे लेनेमें संकोच नहीं करते थे और न इसमें अपनी हेठी समझते थे।

पर अतीतके उस वैभवकी भी आयु थी। गुप्त युगमें ही हम भारतके पतनका बीज पाते हैं। हर्षवर्द्धनके समय तथा उसके बादसे तो उसमें स्पष्ट अंकुर उगते दिखाई देते हैं। मै समझता हूँ कि इस देशके पतनके अनेक कारणोमेंसे सबसे बड़ा और मुख्य कारण यह रहा है कि जब उसके निवासियोंके अहंकारने उसकी जिज्ञासा और ज्ञान-पिपासा तथा आँखें खोलकर चलनेकी शक्ति नष्ट कर दी तब उसमें वह जड़ता उत्पन्न हुई जो एक दिन उसे ले डूबी। यदि भारतके इतिहासको आलोचनात्मक ढंगसे देखो तो स्पष्ट रूपसे यही दिखाई देता है कि प्रथम मध्ययुगमें ही इस देशमें विचारोंकी प्रगति रुकने लगी थी। पहले उसमें जो मौलिकता थी, जो प्रवाह था, परिवर्तनके साथ-साथ प्रकट हुए नवीन तत्त्वो और सत्योंको ग्रहण करने और उसे हजम करनेकी जो शक्ति थी, ज्ञान जहाँ भी मिले उसे ले लेनेकी जो आकांक्षा थी, वह धीरे-धीरे लुप्त होने लगी थी। उसका स्थान अपने बड़प्पनका दंभ और अहंकार लेने लगा था। हृदयमें यह बात घर करने लगी थी कि हम सबसे श्रेष्ठ हैं, हमें कुछ नहीं सीखना है और न जाननेके लिए कोई बात रह गयी है। जो कह दिया गया है उसके बाद अब और कुछ कहनेके लिए बाकी नही रहा। आठवी शतीके बाद तो फिर शताब्दियाँ गुजर गयीं पर हम जहाँ थे वहाँ से आगे नहीं बढ़ सके। स्पष्ट है कि ऐसी स्थितिका प्रभाव विघातक ही हो सकता है। जीवनमें, जीवनके प्रति दृष्टिकोणमें और समाजमें संकीर्णता तथा अगतिका प्रादुर्भाव होना अव-

श्यंभावी हो जाता है। पुरानी बातें और आचार-अनुष्ठानोंने रूढ़ि तथा अंधविश्वास और कठोर परम्पराओंका रूप ग्रहण किया। प्राचीन भारतने कालस्थितिके अनुसार नये विचारोंको जन्म देकर और नये तथ्योंको प्रकट करके ही विकास की अनेक ऊँची मंजिलें पार की थीं। जगत गतिशील है, अतः उसके साथ चलते रहना ही जीवनका एकमात्र लक्ष्य है। संभव है आगे बढ़नेमें पुरानी बातोंको बदलना पड़े, उनको नया जामा पहिनाना पड़े और उनपर नव प्रकाश डालना पड़े पर ऐसा करनेका अर्थ यह कदापि नहीं है कि उनके प्रति असम्मान प्रकट किया जा रहा है। पुरातनका सम्मान भी उसे सजीव बनाये रखनेमें है और जीवन तभी रहेगा जब उसमें चेतना हो, संचलन हो, गति हो और कालप्रवाहके अनुकूल बहनेकी शक्ति हो।

हममें इसी भावका, इसी तत्त्वका ह्रास हो रहा था। योरोपकी जातियोंने यूनान और पूर्वसे ही ज्ञान प्राप्त किया था। जिस समय हम गिर रहे थे उस समय उसी हमारे ज्ञान की उत्प्रेरणासे प्रेरित हो वे नव जीवनकी ओर अग्रसर हो रही थीं। दश गुणोत्तर गणना, कागजपर छापनेकी कला, बारूद-का ज्ञान योरोपने भारत और चीनसे ही पाया। पर जहाँ भारतीय स्वयं सोते रहे वहाँ योरोपकी जातियाँ जाग उठीं और जो नयी जाग्रति उत्पन्न हुई उसमें आगे बढ़ चलीं। हमारी यह स्थिति अबतक बनी हुई है। १८वीं शताब्दीमें जब अंग्रेज

इस देशमें अपना पैर जमा रहे थे उस समय तो हम पतन-के निकृष्टतम स्तर पर पहुँच चुके थे। घोर मोहनिद्राने घेर लिया था। ज्ञाननेत्र बंद हो गये थे। अपने पुराने मार्गपर चलनेमें ही हमें कल्याण दिखाई दे रहा था। अपने चारों ओर-की दुनियाकी ओर आँख उठा कर हमने नहीं देखा। उस समय या तो हमने अपनी दुर्बलताका अनुभव नहीं किया और यदि किया तो उसे दूर करनेकी ओर ध्यान नहीं दिया। देशमें अज्ञानके साथ-साथ राष्ट्रीय सतर्कता भी ढीली हो चली थी। इस कारण हम बाहरसे आयी नयी शक्तिकी चोट न सहन कर सके। राष्ट्रीय संघटनकी इस कमजोरीके कारण ही हम मुगल साम्राज्यके पतनसे भी कोई लाभ न उठा सके। १५ वीं, १६ वी शताब्दिके संत, सूफी सुधारकोंने देशमें एक नयी लहर लहरा दी थी जिसके फलस्वरूप मुगल सल्तनतके विरुद्ध विद्रोही शक्तियाँ उठ खड़ी हुई। मराठे, बुँदेले, सिख उसी नव चेतनाके प्रतीक थे। शिवाजी, छत्रशाल, गुरु गोविन्दसिंह आदिने स्थापित साम्राज्यकी जड़ तो हिला दी पर उसके घहरा कर गिरनेके बाद हम उसका स्थान ग्रहण करने लायक व्यवस्थाको जन्म न दे सके। यह फल था इस देशके राष्ट्रीय संघटनकी दुर्वलता-का। फलतः जिस समय अंग्रेज जमने लगे उस समय यहाँ केवल अव्यवस्था ही अव्यवस्था थी। अनेक छोटी मोटी रियासतें देश भरमें स्थापित थीं जो परस्पर टकरा कर शक्ति क्षीण किया करती थीं। इस स्थितिमें पश्चिमसे आयी हुई व्यवस्थित शक्ति-

ने धीरे-धीरे गिरी हुई इमारतके मलबेको हटा कर अपना नया भवन निर्मित करना आरंभ कर दिया।

यदि हम सचेत और जागरुक रहे होते, पश्चिमकी नयी चेतना, नव ज्ञानसे परिचित होनेकी आवश्यकता समझते, अतीतके अभिमानमें पड़कर हमने वर्त्तमान और भविष्यकी उपेक्षा और निरादर न किया होता तो शायद गत कई शताब्दियोंका हमारा इतिहास दूसरा ही हुआ होता। पड़ोसी जापानकी ओर देखो। उन्नीसवी शतीके द्वितीय चरणतक वह अबोध था। अज्ञान तथा अहंकारके मोहमें पड़ा हुआ सोता रहा। योरोपियन शक्तियाँ एक दिन उसके तटपर आ धमकी और उसे गहरी ठोकर मारी। एक ही धक्केमें जापानी जग पड़े। उन्होंने समझ लिया कि पृथ्वीके पश्चिमी भागमें नव ज्योति उदय हो रही है, जिसका प्रकाश ग्रहण किये बिना वह जीवन और वह शक्ति उपलब्ध नहीं हो सकती जो जापानको जीवित रखनेके लिए आवश्यक है। इस सत्यकी प्रतीति हुई और जापानने अपना मार्ग निर्धारित कर लिया। आज वह क्या हैं सो स्पष्ट है। हमारी उदासीनता हमें ले डूबी। अतीत भी अपमानित हुआ और वर्तमान तथा भविष्य भी विदेशी बूटोंसे रगड़ा गया। इस प्रकार भारत साम्राज्यवादी ब्रिटेनका दास बना। अपने समस्त अतीतकी विशालता और पवित्रता लिये हुए हिन्दू और सल्तनतकी सारी विभूति, ऐश्वर्य और महत्ता लिये हुए मुसलमान नयी शक्तिके सामने दण्डवत् करनेके लिए वाध्य हुए।

पर पश्चिमके नव ज्ञान और नव चेतनाने जहाँ भारतका इतिहास बदल दिया वहीं उसने समस्त पृथ्वीका नकशा भी परिवर्तित कर दिया। नकशा नहीं बल्कि धरातलके समस्त मानव-समाजका कायापलट कर दिया! दुनियाँमें बड़े-बड़े साम्राज्योंका उदय हुआ। साम्राज्यलिप्सा और साम्राज्योंका निर्माण राजनीतिक नीति और क्रियाका अंग बन गया। जगत-की न जाने कितनी जातियाँ वैज्ञानिक साधनोंसे संपन्न देशोंके नीचे आयीं। कल-कारखानेवाले देशोंकी अर्थ-नीति और व्यवसाय-नीति उनकी राजनीतिका आधार बनी। जो देश पिछड़े हुए थे वे ही इनके बाजार बने और इन नवोत्थित पूँजी पतियोंकी शासन सत्ता उनकी आर्थिक लोलुपताकी पूर्तिका साधन हुई। नये उपनिवेशोंका शोषण आरम्भ हुआ। पश्चिम मालामाल होने लगा पर जो दुर्भाग्यसे पराधीन हुए थे वे भूख और शोषण तथा दलनसे उत्पीड़ित होने लगे। गत दो शता-ब्दियोंका भारत वही उत्पीड़ित, शोषित और दलित भारत है। उसके जीवनकी एकमात्र सार्थकता इसीमें रह गयी कि वह ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंकी भोगाग्निमें अपनी समस्त कमाई, आत्मसम्मान तथा स्वतंत्रताकी आहुति डाला करे। इस स्थिति-का परिणाम जो हो सकता था वही हुआ। निकम्मे भारतीयोंको भी धीरे धीरे आत्मबोध हुआ। गत चालीस पचास वर्षोंसे इसने भी अनुभव करना आरम्भ किया कि यदि इस विभीषिका से छुट्टी न मिली तो एक दिन हमारे देहके अवशिष्ट अस्थिचर्म

को भी खानेवाले आ जायेंगे। यह असंतोष धीरे धीरे भीतर ही भीतर सुलगता रहा है।

पर जहाँ हमारी असंतोषाग्नि जलती रही है वहाँ योरोप के साम्राज्यवादी भी परस्परकी प्रतिस्पर्धामें भस्म होते रहे हैं। स्वार्थी सभी हैं और सभी दूसरेका शोषण करना चाहते हैं। पर इस पाप कर्ममें भी चढ़ा-ऊपरी आरंभ हुई। कुछके पास विशाल साम्राज्य है, अतुल ऐश्वर्य है, और कुछ इसमें अपेक्षाकृत कम ही सफल हुए। इस स्थितिमें परस्परकी ईर्ष्या तो स्वाभाविक थी ही। इसी ईर्ष्या, स्पर्धा और डाहके गर्भसे युद्धोंका जन्म हुआ है। छोटे मोटे न जाने कितने युद्ध हो चुके पर गत महायुद्ध और वर्तमान महासंग्राम उसके दो ज्वलंत प्रतीक हैं जिन्होने धरणीको मानव रक्तसे लाल कर दिया है। आज जब यह युद्ध सामने आया तो हमने देखा और उसके स्वरूपको पहिचाना। स्पष्ट है कि साम्राज्यवादी परस्पर भिड़े हुए हैं दुर्बलोंके शोषण और जगतका बटवारा करने के लिए। यह युद्ध हमारी शृङ्खलाओं को और जकड़नेके लिए ही हो रहा है। तमाशा यह है कि हमारी सहायता, हमारे धन और हमारे सहयोगसे हमें ही बाँधकर चरणोंके नीचे रगड़नेके इस कुचक्रमें हमें भी सम्मिलित किया जा रहा है। आज यह देश दाने दानेको मुहताज है। करोड़ों बच्चे प्रति वर्ष भूखसे छटपटाकर मरते हैं। मानवताका गला घोट कर भारतीय उन सब अधिकारोंसे वंचित किया गया है जो मानवीय

जीवनके आधार है। मानुषी भावना और न्याय तथा सांस्कृतिक विकासकी यह कैसी निष्ठुर हत्या ! जिस देशमें जीनेके लिए समस्त जीवित प्राणी तरसते हों, उसकी उठती हुई आवाज बल-पूर्वक दब जाती हो, जो पशुबल और स्वार्थ तथा निरंकुशतासे पीसा जाता हो, जिसके मस्तकपर विदेशी पदाघात करते हो, और जहाँ नरकंकालोकी अपार भीड़ पेट खलाये तथा मुंह बाये जूठे पत्तलोंके लिए तरसती हो, वहॉ यदि जगतकी प्रगतिका एकमात्र सहारा और साधन क्रान्ति-तत्त्व फूट पड़ने के लिए विकल न हो उठे तो इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या हो सकता है ? युद्ध आया पर उसने एकत्र बारूदमें फलीता दागनेका ही काम किया। भारतने साश्चर्य बेहयाईकी लीला देखी। उसने देखा कि ब्रिटिश सत्ता इस संकटमें अपने पापोंका प्रायश्चित्त करके कलुषहीन होना नहीं चाहती बल्कि हमें बलपूर्वक अपने हाथोंसे अपने गलेमें फॉसीकी रस्सी और जोरसे कसनेके लिए वाध्य कर रही है। विडवना यह कि हमारी बुद्धि और अनुभव तथा भावनाका अपमान करके अब भी वह उद्दंडतापूर्वक यह घोषणा करती है कि इसीमें भारतका कल्याण है !

यह स्थिति असह्य हो उठी। वह अपनी सीमा पार कर गयी। विक्षोभ और असंतोषकी आग उस विंदुपर पहुँच गयी जिसके बाद उसका विस्फोट होना स्वाभाविक था। बंबईका अधिवेशन उसी क्षणका निर्देश कर रहा था। गांधीजीके मुखसे युग-भावना बोल रही थी। वे कालात्माके स्वरको ही

प्रकट कर रहे थे जो भारतके हृदयके तारोंको झंकृत कर रहा था।

बंबई अधिवेशनकी पृष्ठ-भूमिकी हलकीसी रूपरेखामें मै इतना बहक गया। अब पुनः अपने मुख्य विषयपर आ गया हूँ पर यहाँ पहुँचते पहुँचते काफी विस्तृत घेरा घेर लिया है। अच्छा यह होगा कि इस पत्रको यहीं समाप्त करूँ। मै भी थक सा गया हूँ। आगेकी डोर फिर कभी सँभालूँगा। तुम भी विश्राम करो।

तुम्हारा—
कमलापति

५

नैनी सेंट्रल जेल,
१५ मार्च ४३

प्रिय लालजी,

सर्वभारतीय कांग्रेस कमेटीका एक अध्याय बराबर मेरे स्मृति-पथमें झलक उठता है। उस दृश्यकी छाया मेरे मस्तिष्कमें इस प्रकार अंकित हो गयी है कि सहजमें ही बार बार आँखों के सामने नाच उठती है। लेखनी द्वारा उसका चित्र बना देना सरल काम नहीं है। फिर भी मेरी यह इच्छा हो रही है कि तुमको उसका कुछ परिचय करा दूँ। अधिवेशनके सामने विचारार्थ कांग्रेस कार्यसमितिका प्रस्ताव उपस्थित था। प्रस्ताव बड़ा विस्तृत था जिसमें भारतकी राष्ट्रीय आत्मा स्पष्ट रूपसे बोल रही थी। वे वाक्यावलियाँ देशकी मनः स्थिति और अभिलाषा

की प्रतीक थीं। वर्तमान महासंग्रामके प्रकृत रूपकी अति संक्षिप्त विवेचना कर दी है। हमने यह समझ लिया है कि यह युद्ध साम्राज्यके लिए साम्राज्यवादियोंके बीच हो रहा है। इसमें हमारा स्थान क्या है, इसका उत्तर खोजनेके लिए दूर जानेकी आवश्यकता क्या है? उत्तर स्पष्ट है कि हम साथी हैं उन लोगोंके जो साम्राज्यवादका विनाश अभीष्ट समझते हैं। मानव समाजका संहार यदि बचाना है, यदि जगतमें घटित होने-वाली इस क्रूर, जघन्य और लाल घटनाके मार्गको सदाके लिए बंद कर देना है तथा मनुष्यने अपनी बुद्धि, विवेक और तपस्यासे जो कुछ अर्जन किया है उसकी रक्षा यदि करनी है तो उसका एक मात्र उपाय है ऐसी व्यवस्थाको जन्म देना जिससे भविष्यमें युद्धोंकी नौबत कभी आवे ही नहीं। यह तभी हो सकता है जब उन तमाम भौतिक कारणोंका लोप कर दिया जाय जिनके फलस्वरूप युद्ध होते हैं। योरोपके कतिपय राष्ट्रोंकी भूमि-बुभुक्षा और उग्र स्वार्थपरता ही उसके मौलिक कारण हैं। जब रोगका निदान हो गया तो उसका उपचार करना कठिन नहीं हुआ करता। भारतीयोंके लिए दर्पण की भाँति यह मामला स्पष्ट हो गया। जगतीतलसे साम्राज्यवाद का सर्वांश में खातमा कर देना, जिससे पृथ्वीकी कोई जाति किसीकी पराधीनतामें न रह पाये एक मात्र रास्ता है मानवताकी रक्षाका। हमने इस सत्यको सूर्यके प्रकाशकी भाँति देखा और अपना मार्ग चुन लिया। चुन लिया अपना

स्थान और निर्धारित कर लिया अपने कार्यक्रमको। भारतको उन शक्तियोंका साथ देना है जो जगतसे शोषण, दासता और साम्राज्यवादिताका नामोनिशान मिटा देनेके लिए आगे बढ़ी हुई हों। हमने यह मार्ग केवल अपने लाभके लिए, अपने स्वार्थके लिए ही नहीं चुना, यद्यपि ऐसा करना भी प्रत्येक दृष्टिसे उचित ही हुआ होता। हमने इसे चुना सारी विकल और उत्पीड़ित मानवताके कल्याणके लिए। उन असंख्य नर-नारियोंके निर्दोष और उष्ण रक्तके नाम पर जिसे पानीकी तरह बहाकर भूमंडलको नरक बना देनेका कुत्सित कांड रचा जा रहा है, हमने इस रास्तेको चुना और अपना लक्ष्य स्थिर किया।

बम्बईके अधिवेशनमें भारतकी जाग्रत आत्माने इसी पुनीत लक्ष्यकी घोषणा अपने प्रस्तावमें की। उसने ब्रिटेनसे अपील की कि वह साम्राज्यवादका विसर्जन करनेका महत्पुण्य संचय करे। लोकतंत्र, स्वतन्त्रता, मानवता, सभ्यता और न्यायकी झूठी दुहाई देना कोरे बकवादके सिवा कुछ न होगा। यदि ब्रिटेन स्वयं पृथ्वीके मानवकी पंचमांश जन-संख्याको अपने स्वार्थ और अपनी विलासिताकी पूर्तिका साधन बनाये रखेगा। अपने विकृत और भ्रष्ट स्वरूपको छिपाकर पवित्र सिद्धान्तों और आदर्शोंका स्तूप खड़ा करनेकी चेष्टा जगत्को और अपने आपको ठगनेके सिवा और कुछ नहीं है। कार्य-समितिने ब्रिटेनकी नीतिके इस वैपरीत्य और असंगतिकी ओर ही ध्यान

आकर्षित किया। उसने कहा कि भारतको बंधन-मुक्त करो। न्याय और मानवताके प्रति तुम्हारी सच्ची आस्था और निर्दोष निष्ठाका एकमात्र प्रमाण यही हो सकता है। इस कार्यसे सिद्ध हो जायगा कि ब्रिटेन स्वयं मानव मात्रकी स्वतंत्रताका समर्थक है और अपने हाथसे साम्राज्यवादके विघटनकी चेष्टा कर रहा है। उस स्थितिमें भारत अपने समस्त साधनो, शक्तियों तथा उपकरणोंके साथ ब्रिटिश नेतृत्वमें आगे बढ़ेगा और विश्वके कल्याणके महान उद्योगमें अपना सब कुछ होम कर अपनेको धन्य समझेगा। पर यदि ब्रिटेन ऐसा नहीं करता तो हमारा उसका कोई संबंध नही रह सकता। हम एकाकी अपने मार्ग पर चलेंगे, अपनी स्वतंत्रताके लिए गांधीजीके नेतृत्वमें अहिंसात्मक संग्राम करेंगे और इस प्रकार विनाशकारी साम्राज्यवादके पतनका मार्ग प्रशस्त करेंगे। यह प्रस्ताव धमकीके रूपमें नहीं था और न था युद्धकी ललकार। अवश्य ही उसका आशय था अपनी स्थितिका स्पष्टीकरण, अपने पथपर अग्रसर होनेके लिए हमारे दृढ़ संकल्पकी घोषणा। ब्रिटेनका आवाहन किया था हमने इसलिये कि वह हमारा न केवल सहपथिक बने वरन् नेताका पद भी ग्रहण करे। यह सहयोग था, मैत्रीका प्रस्ताव था। पर, हाँ यदि उसे ठुकराया जाय तो उसके पीछे अपने समस्त प्रचंड विरोधियोंसे संघर्ष तक करनेकी अटल प्रतिज्ञा थी।

प्रस्ताव दो दिनके विवादके बाद प्रायः सर्व सम्मतिसे स्वीकृत हो गया। उसके विरोधी दस बारहकी संख्यामें वे

कम्यूनिष्ट थे जो अपने दिल और दिमाग रूसके यहाँ रेहन रख चुके हैं। ये कम्यूनिष्ट भी अजब जन्तु हैं। इनकी राष्ट्रीयता, राजनीति, देशभक्ति, इनका जीवन, इनके विचार, इनकी बुद्धि और इनका हृदय सब कुछ परिचालित होता है उस संस्थाकी आज्ञाके अनुसार जो 'तृतीय इंटर नेशनल' कहलाती है और जिसका दफ्तर है मास्कोमें। यह संस्था तो दावा करती है सारे संसारकी स्वतंत्रताके लिए विश्व-विद्रोहका आयोजन करनेका पर गत दस वर्षोंसे इसका काम हो गया है रूसकी परराष्ट्र नीतिके इशारे पर नाचते रहना और उसीकी सफलताके लिए अपनी नीति निर्धारित करते रहना। संसार भरकी कम्यूनिस्ट पार्टियाँ एक प्रकारसे विभिन्न देशोंमें स्थापित रूसकी राजनीतिक एजन्सियाँ है जो अपने देशकी राजनीतिको मास्कोकी आज्ञाके अनुसार प्रभावित करती रहती है। कम्यूनिज्मकी विचारधारा तो साम्राज्यवाद शोषण और दासताका अन्त करनेके लिए ही वह निकली थी पर उसके साथ साथ रूसको उसका अगुवा और स्टालिनको एकमात्र विधाता मान लेनेसे जो दोष आ गया है वह उसके विशुद्ध रूपको विकृत कर रहा है। परिणाम यह हो रहा है कि कम्यूनिज्मके आदर्शोंकी पूर्ति रूसके वैयक्तिक लाभमें देखी जा रही है। समझा यह जाता है कि सभी देश अपने हिताहितको भूलकर केवल रूसके लाभालाभको देखें और उसीके अनुसार अपनी नीति निर्धारित करे। इसीमें वे विभिन्न देशोका सच्चा हित देखते है।

कुछ दिन पहले वे इस युद्धको साम्राज्यवादी कहते थे और उसका विरोध करनेके लिए हल्ला मचानेमें सबसे आगे थे। गांधीजीपर उनका क्रोध सबसे अधिक था, संभवतः साम्राज्य-वादियोंसे भी अधिक, क्योंकि उनके मतसे महात्माजी युद्धका विरोध करनेमें वह तेजी और उग्रता नहीं प्रदर्शित कर रहे थे जो होना चाहिये थी। रामगढ़की कांग्रेस हमें भूली नहीं है। यहाँके कम्यूनिस्टोंमें डाक्टर आशफ साहब प्रसिद्ध हैं जो प्रायः सदा जब कभी सर्वभारतीय कांग्रेस कमेटीका अधिवेशन होता है तो अपने दलके प्रमुख वक्ताका अभिनय सफलतापूर्वक प्रदर्शित करते हैं। आप व्याख्याता अच्छे है। वाणीमें ओज है, बोलने का ढंग मनोरंजक है यद्यपि बोलते समय हाथ पैर इस प्रकार चलाते है, मुखकी मुद्रा ऐसी बनाते हैं कि कभी कभी आलफ्रेड थियेट्रिकल कंपनीके अभिनेताओंकी याद आने लगती है। यही सज्जन रामगढ़की कांग्रेसमें बोले थे और अपने मुख-मंदिरसे वह क्रान्ति-पूर्ण वाग-धारा बहायी कि बहुतसे उसमें प्लावित हो गये। गांधीजीपर गहरा आक्षेप था। 'देशकी जनता तैयार है, लेकिन लीडरशिप आगे नहीं बढ़ रही है। यही मौका है जब इनकलाबी तूफानसे साम्राज्यशाहियतकी एक एक ईंट हिला देनी चाहिये। कांग्रेस डरती है क्योंकि उसकी लीडर, शिप बुर्जवा लीडरशिप है जो यकीनन इनकलाबसे घबराती है। पर यह याद रखना चाहिये कि ये तमाम बहती हुई बातें उस समयकी हैं जब रूस-जर्मनीसे दोस्ती थी और जर्मनी सिर्फ फ्रान्स और ब्रिटेनसे लड़ रहा था।

सन् १९४१ का जमाना मुझे याद है। नैनी सेन्ट्रल जेलमें मैं व्यक्तिगत सत्याग्रहके सिलसिलेमें अपनी सजा भुगत रहा था। यहाँ अच्छा जाठा कम्यूनिस्टोंका भी था जो नजरबंद थे। उनका एक एक क्षण इसी प्रचारमें बीतता था कि यह सत्याग्रह गांधीजीकी चालके सिवा कुछ नहीं है जिसके द्वारा उन्होंने देशकी उभड़ती हुई क्रान्तिकारिणी प्रवृत्तिको दूसरी दिशामें मोड़कर उसके प्रवाह और दबावको नष्ट कर देनेकी कोशिश की है। पर वे उल्टा सीधा प्रलाप कर ही रहे थे कि एक दिन यह समाचार मिला कि रूसपर जर्मन सेना चढ़ दौड़ी। यह समाचार क्या था सिद्ध मंत्र था जिसने जादूका काम किया। जो कम्यूनिस्ट प्रातःकाल तक युद्धका विरोध करनेकी बात कह रहे थे सायंकाल वे बदले दिखाई देने लगे। वे मौन थे। युद्धके संबंधकी टीका करनेको तैयार न थे। महीनों तक उनकी चुप्पी चली। वे राह देख रहे थे मास्कोंसे आनेवाले दिव्यदेश-की। परिवर्तित परिस्थितिमें क्या करना चाहिये और कौनसी नीति ग्रहण करनी चाहिये। कदाचित कुछ दिन बाद आदेश मिला कि अब इस युद्धमें आँख मूद कर ब्रिटेनकी सहायता करनी चाहिये। घटनाओंकी चपेटसे रूस और ब्रिटेनका स्वार्थ एक हो गया था। दोनों एक पंक्तिमें आ गये थे। रूसका हित इसीमें था कि उसके मित्र ब्रिटेनकी शक्ति बढ़े और उसके मार्गमें कोई बाधा न खड़ी की जाय। बस अब क्या था। हर बातमें चाँव चाँव करनेवाले कम्मूनिस्ट ऐसे बदले कि उनको

पहिचानना कठिन हो गया। उनकी नीतिने पलटा खाया। अब यह युद्ध साम्राज्यवादी नहीं रह गया बल्कि जनताका संग्राम हो गया।

फासिज्मको नष्ट करने और मानवताकी रक्षा करनेकी बात भी अब सूझी। रूसकी रक्षा करनी है अतः बिना किसी शर्तके इंग्लैण्डकी सहायता करना ही मुख्य धर्म हो गया—उस इंग्लैण्ड की जो साम्राज्यवादी है, जिसने भारतकी चालीस करोड़ जनताको आज भी पीसते रहनेका निश्चय कर लिया है। इसीमें विश्व—विद्रोहकी सफलता और मार्क्सवादकी पूरी सार्थकता दृष्टिगोचर हुई। लेनिनकी वह आज्ञा भूल गयी जिसमें उन्होंने गत महायुद्धके समय मार्क्सवादी कम्यूनिस्टोंसे अनुरोध किया था कि वे अपने अपने युद्धलिप्त साम्राज्यवादी और पूँजीवादी शासकोंको नष्ट करनेके लिए विद्रोहकी तैयारी करें और युद्धमें अपने ही देशकी पराजयका कारण तक बननेके लिये तैयार रहें। आज यह सब विस्मृत हुआ, लुप्त हुआ क्योंकि रूसका हित और कल्याण इसमें था कि पराधीन भारत अपने दीन, हीन और मलिन वेशमेंभी ब्रिटेनकी सहायता करे। फासिज्मका खतरा उस समय न जाने कहाँ विलीन हो गया था जब योरोपके देश एकके बाद दूसरे हिटलरके प्रचंड पदाघातसे भूमिसात होते जा रहे थे। पोलैण्ड, डेनमार्क, नार्वे, हालैण्ड, बेलजिम, फ्रान्स, रूमानियाँ, बलगेरिया, युगोस्लाविया, ग्रीस, सब क्रमशः हिटलरी हुँकारसे भस्म हुए।

उस समय रूसने जर्मनीके साथ संधि कर रखी थी। उसके खतरेसे निर्भय होकर निस्संकोच हिटलरने यूरोपको विचूर्ण करनेका प्रशस्त मार्ग पाया। मानता हूँ कि जर्मनीके साथ अनाक्रमण संधि करके अपनी तैयारी करनेका अवसर ढूँढ़ निकालना रूसके नेताओंकी बुद्धिमानीका द्योतक था। यह भी हो सकता है कि उस समय इसीमें रूसका हित था। पर इसके साथ ही इसमें भी संदेह नहीं है कि हिटलरको यदि रूसके खतरेका भय रहा होता तो यूरोपके इतने देशोंकी स्वतंत्रताका अपहरण इतनी शीघ्रतासे वह न कर पाता।

एक सीमा तक रूसकी नीति इन देशोंके सर्वनाशके लिए जिम्मेदार थी। फासिज्म यूरोपमें पैर जमा रहा था, छोटे राष्ट्र उसके पेटमें समा रहे थे पर उस समय फासिज्यका हौआ न था और ब्रिटेनका विरोध करने और देशमें क्रान्तिकी आग लगा देनेका प्रचार यहाँके कम्यूनिस्ट कर रहे थे। पर जहाँ रूसका हित ब्रिटेनकी सहायता करनेमें दिखाई देने लगा वहाँ यह युद्ध जन-युद्ध हो गया, फासिज्यका विकराल रूप भी नजर आया। देवलीके कम्यूनिस्ट नजरबंद ब्रिटेनके सहायक हुए। वहाँसे मुक्ति मिली। वर्षोंसे गैरकानूनी हुई कम्यूनिस्ट पार्टी कानूनी संस्था बनी और कम्यूनिस्ट सर्वभारतीय कांग्रेस कमेटीके अधिवेशनमें दूसरे प्रकारकी बांग देते सुनाई पड़े। जो देश रामगढ़ कांग्रेसके समय तैयार था वही अब 'किसी इनकलाबी तहरीकके लिए तैयार नहीं रह गया था।' अब तक हिन्दू मुसल-

मानोंकी समस्याके संबन्धमें जो लोग यह कहा करते थे कि 'वह तो सरमायादारों' का झगड़ा है, जिसकी कोई बुनियाद नहीं है और आपसे आप उस समय हल हो जायगा जब हिन्दू और मुसलमान मजदूर तथा किसान अपने 'क्लास-इंटरेस्ट' (वर्गहित) से चैतन्य होंगे, आर्थिक सवाल जैसे जैसे उग्र होंगे वैसे वैसे यह साम्प्रदायिकता आपसे आप नष्ट हो जायगी', वे ही बंबईमें हिन्दू-मुसलिम एकाके ऐसे हिमायती बने कि मुसलिम लीगसे समझौता करनेका काम सर्वोपरि स्थापित कर दिया। वे ही बे-पेंदेके लोटे, जिन्होंने अवसरवादको अपनाया है, जिन्होंने अपने देशके हितको विदेशके कल्याणमें लय कर दिया है और जो आँखें खोलकर देखनेसे इनकार करके कठोर राजनीतिक कठमुल्लापन ग्रहण किये हुए हैं, कांग्रेस कार्यसमितिके प्रस्तावके विरोधी थे। सौभाग्यसे उनकी संख्या पूरे एक दर्जनसे अधिक न थी।

राष्ट्रके हृदयमें धधकती हुई ज्वालाके सामने बेचारे कम्युनिष्ट कहाँ टिकते। अपने विद्रोह विरोधी वितंड और कूड़े कर्कटको लिये हुए ऐसे उड़े जैसे तिनके तूफानके आवेगमें उड़ जाते है। नभ मंडल तकको गुंजायमान करती हुई गंभीर करतलध्वनि और प्रचंड जय जयकारके बीच राष्ट्रपतिने घोपणा की कि प्रस्ताव अत्यधिक वहुमतसे स्वीकृत हो गया। ८ अगस्त सन् १९४२ के सायंकाल ८ वजे थे जव शताब्दियोके अपमान और निर्दलन तथा पतनका बोझ लिए हुए भारतकी क्षुब्ध आत्माने समस्त दानवी शक्तिसे

संपन्न ब्रिटिश सिंहका प्रतिरोध करनेका दृढ़ निश्चय किया। वातावरण गंभीर था। भविष्य भयानक दृष्टिगोचर हो रहा था और आनेवाले प्रचंड भूकंपकी गड़गड़ाहट सुनाई देने लगी थी। पर इन तमाम बातोंसे परिचित होते हुए भी निहत्थे भारतीयोंने अपने सिरमें कफन बाँधकर निकलनेका दृढ निश्चय कर लिया था। क्या मस्ती थी, क्या ओज था। उसका तेज दर्शनीय था क्योंकि जीवनका मोह छोड़ कर वह आज महा-कालका रोमांचक आवाहन करनेके लिए अपनी मुट्ठीमें जल और अक्षत ले चुका था। यहाँ बैठे बैठे सोचता हूँ कि यह मेरा सौभाग्य था जो मैं उस मुहूर्तमें वह ऐतिहासिक दृश्य देखनेके लिए वहाँ उपस्थित था। मनुष्यके जीवनमें ऐसे क्षण आते हैं जब उसे महान् निर्णय करना पड़ता है। ये क्षण अनन्तमें लीन हो जाते हैं, घटनाओंके प्रवाह इतिहासकी सामग्री बनते हैं पर सदाके लिए परिलुप्त हुए वे क्षण क्षणभंगुरताका प्रदर्शन करते हुए भी मानो अविनश्वर हो जाते हैं जो युग-युग तक समाजके जीवनको प्रभावित करते रहते हैं।

प्रस्तावकी स्वीकृतिकी घोषणा करनेके बाद राष्ट्रपतिने महात्माजीसे अपील की। उन्हें पुकारा कि आप आवें और हमें अपने सन्देशसे परिचित करावें। गत दो दिनोंसे होनेवाले विवादको गांधीजी अचल भावसे बराबर सुनते रहे। १५-१६ घंटो तक सभामंच पर वह तेजस्वी मूर्ति बराबर विराजती रही। उनका ध्यान-मग्न स्वरूप, समाधिस्थ मुद्रा, चिंतनशील मुखमंडल तथा

अटल आसन ऐसा लगता था मानो दृढ़ता स्वयं सजीव प्रतिमा बनकर कहीं अदृश्यसे सहसा आविर्भूत हो पड़ी है। गिरिशिखर पर अंबरसे होनेवाला जलवर्षण जिस प्रकार गिर कर अधोन्मुख बह जाता है, उसी प्रकार सारा विवाद मानो उनके अन्तस्तलको स्पर्श किये बिना ऊपर ही ऊपर बह गया था। मौलानाके आवाहन पर उनके स्थिर नेत्र एक बार सचल हुए। पुतलियाँ चमक उठीं, भवोंपर बल पड़ी और अधरोष्ठ पर स्मित रेखा दौड़ गयी। मुझे तो ऐसा मालूम हुआ कि चिन्मयतामें अभिभूत यह अनासक्त महाव्यक्ति कहीं दूरसे अति दूरसे वापस लौटा है—यद्यपि उसकी भौतिक देह सभा मंडपमें ही वर्तमान थी। वे शान्त भावसे अपने आसनसे उठे और व्याख्यान मंचपर आये। प्रचंड जनरव सहस्रों कल कंठोंसे निकल कर दिग-दिगंतमें व्याप्त हो उठा। सारा एकत्र जनसमूह महोदधिमें उठी तरंगकी भाँति लहरा उठा। पत्रकारवर्ग उत्सुक भावसे अपनी पेंसिल और कापी लिये हुए मंचके निकट यथासाध्य पहुँच जानेके लिए आगेकी ओर खिसका। वह गांधीजीकी जिह्वासे निकले एक एक शब्दको पकड़ पानेके लिए उत्कंठित था। व्याख्यान मंचपर आते ही ऐसा प्रतीत हुआ कि आलोककी एक उज्ज्वल आभा उनके चारों ओर व्याप्त हो गयी। बच्चेकी भाँति निर्दोष हँसीके साथ गांधीजीने अपनी परिचित प्रणामांजलि वक्षस्थलपर स्थापित की।

उनके आसीन होते ही चारों ओर सन्नाटा छा गया। ऐसा सन्नाटा कि लोगोंके श्वास प्रश्वासकी मंद सुरसुराहट तक सुनाई

देने लगी। एक ही दृष्टि सबके विचार और सबके ध्यानका केन्द्रविन्दु थी। एकाग्रता और निश्चलताने वायुमंडलमें गंभीरताका अद्भुत रंग उड़ेल दिया। वह जनाकीर्ण स्थान ऐसा निस्तब्ध था कि परम शून्यताका परिचय दे रहा था। उन्होंने पहले हिन्दीमें और बादमें अंग्रेजीमें भाषण किया। बहुत दिनोंके बाद गांधीजीको इतनी देर तक बोलते सुना। प्रायः दो घंटे तक उनका भाषण होता रहा। जिन्होंने उन्हें बोलते हुए सुना है वे जानते है कि उनके भाषणका ढंग कैसा होता है। आजकल जिसे व्याख्यानकी कला कहते है वह गांधीजीको छू भी नहीं गयी है। न वे हाथ हिलाते हैं, न मुँह बनाते है, न आवेश और भावुकताकी पुट देते है और न किसी प्रकारके अभिनयको स्थान देते है। पर यह सब न होते हुए भी उनका एक एक शब्द मानो सीधे हृदयमें घुसता चला जाता है। मुझे गांधीजीके भाषणोंको सुननेका सौभाग्य अनेक बार मिल चुका है। नपे तुले और चुने हुए, शब्द भावका अनुकरण करती हुई भाषाकी धारा, आडंबरविहीन उनके बोलनेका अति संयत ढंग, स्वरकी स्वच्छन्द और सुस्पष्ट; सरल गति, दृष्टिमें अलौकिक उदासीनताका रंग, मुखपर दार्शनिकता, अनुभूति तथा अदृष्टपूर्ण भावोंकी छाया, ध्वनिमें एक प्रकारकी वेदनाका राग, सुननेवालेके हृदयके एक एक तारको झनझना देता है। मालूम होता है कि कोई मथनी लेकर अंतःकरणको हिलोरे दे रहा है। बोलते हुए उनके आजानुबाहु कभी कभी हिलते है जिनका संचलन उनके दृढ़ संकल्पको मूर्त कर देता

है। यह सारा दृश्य एक साथ देखनेपर मालूम होता है कि उत्सर्ग और निर्भयताकी यह सजीव प्रतिमा कहीं दिव्यलोकसे अवतीर्ण होकर संतप्त अवनिकी सारी विषवेदनाको स्वयं कंठस्थ करके मृत्युञ्जय हो जानेके लिए बद्ध-परिकर है।

"मौलाना साहबके हुकमसे मैं यहाँ आ गया हूँ। मैं नहीं जानता कि मुझे क्या कहना चाहिये। कुछ कहनेके बारेमें मैंने सोचा भी नहीं था। पर अब तो यहाँ आ गया हूँ और भीतरसे भी मुझे जैसे प्रेरणा हो गयी है कि कुछ कहूँ। मैंने कुछ कहनेको तो सोचा नहीं है, फिर भी कह चलता हूँ। विचार पीछे पीछे आते रहेंगे।" इन वाक्योंके साथ उन्होंने भाषण आरंभ किया। उनके लंबे व्याख्यानके उद्धरण यहां उपस्थित करनेकी आवश्यकता नहीं है। उसके मुख्य अंश उस समयके समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित हो गये थे। मुझे विश्वास है कि तुमने भी उन्हें पढ़ा या सुना होगा। पर इतना कहना आवश्यक है कि भाषण करते हुए गांधीजीकी धीर शान्त मूर्तिकी हृदयस्थ ज्वाला स्पष्टतः अपनी तेजस्विता प्रकट कर रही थी। मालूम हो रहा था कि हिमांचलकी भांति अटलता लिये हुए यह व्यक्ति जगतकी समस्त पशु—शक्तिको ललकार रहा है और यदि एक बार क्रोध हिंसा तथा काल भी रूप धारण करके आ जाय तो भी उसे अपने पथसे डिगानेमें समर्थ न होगा। गांधी सरको हथेलीपर लेकर बढ़ा हुआ था। यदि समस्त जगत रक्ताभ नेत्रोंसे उसका विरोध करेगा तो भी वह उनका सामना करनेके लिए तैयार दिखाई

देता था। उनका भाषण क्या था, जीवनके समस्त मोह बंधनको छिन्न-भिन्न करके भावी महाविक्षोभके समुद्रमें हँसते-हँसते कूद पड़नेके लिए आवाहन था। पुकार थी उन लोगोंकी जो किसी महान लक्ष्यकी पूर्तिके लिए अपने हाथों अपनी सारी आशा, ऐश्वर्य, विलास और विश्रामके भवनको आग लगाकर उसका जलना देखनेका साहस रखते थे। कर्तव्यके कठोर पथमें 'कुछ कर जाओ या फिर मर जाओ' उनका महामंत्र था जिसके द्वारा यह ममता-निर्मुक्त अवधूत भारतको दीक्षित कर रहा था।

पर यह न समझना कि उनके भाषणमें कहीं क्रोध, आवेश, प्रतिशोध या प्रतिहिंसाका स्पर्श दूरसे भी होता दिखाई दिया हो। दृढ़ता थी, न्याय और मानवताके लिए मर मिटनेका संकल्प था, ज्वाला थी, ओज और तेजस्विता थी पर जो था सब सात्विकतासे ओतप्रोत था। गांधीजीकी यह विशेषता उन्हें लोकोत्तर महामानवकी श्रेणीमें पहुँचा देती है। वे क्रान्तिके मूर्तमान रूप हैं, न्यायके पुजारी हैं, प्रबल योद्धा हैं जो निर्भय अपनेसे अधिक शक्तिशालीके साथ भिड़नेको तैयार रहते हैं, जिनका सारा जीवन केवल संघर्ष ही संघर्षसे ओतप्रोत रहा है फिर भी उनमें न प्रतिहिंसाकी भावना है, न किसीका आहित करनेकी चाह और न किसीके प्रति द्वेष या घृणाका रूखा भाव, क्योंकि इनके लिए उनके हृदयमें स्थान ही नहीं है, उनका सारा दृष्टिकोण, उनकी सारी विचारधारा ही नैतिकता

मूलक है। इसी कारण वे विश्वास करते हैं कि जीवनका मूल स्रोत सत्य है, शुभ है, पुनीत और कल्याणमय है। वे उन आदर्शवादियोंके अग्रणी हैं जो मानवहृदयको निसर्गतः सन्मय, शिवमय और पवित्र मानते हैं। जिसका ऐसा विश्वास हो और जिसका यह दृष्टिकोण हो वह किसीके प्रति घृणा, द्वेष या हिंसा का भाव रखेगा ही कैसे? वह मानते हैं कि सभी मनुष्य भले हैं और सबमें भलाई करनेकी, सत्पथपर चलनेकी असीम क्षमता वर्तमान है। गांधीवादकी भित्ति, उसका मूल यही विश्वास है। जगतके समस्त 'वादों'से गांधीवाद इसी कारण सिद्धान्ततः भिन्न है। इसका यह अर्थ नहीं है कि गांधीवाद यह स्वीकार नहीं करता कि मनुष्य बुराई कर ही नहीं सकता। बात ऐसी नहीं है। बुराई होती है, अन्याय होता है यह तो वह भी स्वीकार करता है, पर वह यह नहीं मानता कि बुराई और अन्याय मानव हृदयका, उसके स्वभावका अविच्छेद्य अंग है। उसका कहना है कि अज्ञान, आवेश और मोहमें पड़कर मनुष्य पथभ्रष्ट अवश्य हो जाता है पर यह होता है इसलिये कि वह अपनी वास्तविक सन्मयी वृत्तिके स्वरूपको भूल जाता है। सतत उत्प्रेरणाओंके द्वारा उसे उसके स्वरूपका ज्ञान करा दो, उसके स्वभावके शुभ्रांशको जाग्रत कर दो, उसकी पुनीत सद्भावनाओंकी तंत्रीको झकृत कर दो, वह स्वयमेव अपने स्वाभाविक उचित पथपर आ जायगा। जीवनके प्रति यह दृष्टिकोण ही इनकी अभिनव विचारधाराका स्रोत है।

फलतः उनका कोई शत्रु तो हो ही नहीं सकता क्योंकि किसीके प्रति शत्रुभाव रखनेमें वे समर्थ ही नहीं है। फिर प्रति-हिंसा या घृणाके लिए स्थान ही कहाँ रहा। हाँ समाजमें या वैयक्तिक जीवनमें भी समष्टि या व्यष्टिके रूपमें यदि कोई पथ भ्रष्ट होकर अन्यायका पथावलंबन करता है, अशुभकी ओर जाता है तो वे उसका विरोध करते है। विरोध-विरोधीके भावसे नहीं बल्कि इस इच्छासे कि उस पथभ्रष्ट समूह अथवा व्यक्ति की अन्तर्चेतना जाग्रत कर दी जाय जिसमें वह जिस पथसे विचलित हो गया है उसीपर फिर आ जाय। यही लक्ष्य होता है उनके संघर्षका। इसी आदर्शको लेकर उन्होने सारे जीवन घोर संघर्ष किया है। अपने युद्धमें उन्होंने अहिंसा, कष्ट-सहन, त्याग, और तपस्याको मुख्य अस्त्र माना है। चोट खा कर चोट तो स्वयं न करो पर आततायीके सामने सिर भी न झुकाओ। अपने आदर्श और मत तथा लक्ष्यपर उस समय भी दृढ़तापूर्वक डॅटे रहो। युद्धकी इस कलाके मूलमें क्या है? विचारपूर्वक देखोगे तो स्पष्ट हो जायगा कि उनका सारा संव्यूहन और आयो-जन उनके उपर्युक्त दृष्टिकोण और विचारोंसे कितना संगत है। भगवान तथागत बुद्धका यह वाक्य 'अक्रोधेन जिने क्रोधं, असाधुं साधुना जिने' गांधीजीकी युद्ध-प्रणालीकी विशेषता है। हम हॅसते है, सारा संसार हॅसता है, अकाट्य तर्क पेश किये जाते है कि हिंसाका दमन भला अहिंसासे कैसे होगा? लोग गांधीजीको अव्यावहारिक आदर्शवादी कहते है जो वास्तविक

जगतकी उपेक्षा करके अपने काल्पनिक जगतमें विचरण किया करता है। मैं इन तर्कोंको निरर्थक नहीं कहता और न इसका उत्तर देकर व्यर्थका विवाद बढ़ाना चाहता हूँ पर इतना अवश्य कहूँगा कि गांधीजीकी युद्धकला न सारहीन है, न कोरी काल्पनिक और न अव्यावहारिक। उसे उस मौलिक दृष्टिकोणके प्रकाशमें देखो जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। वे विमूढ़ और मोहाच्छन्न मानवके अन्तस्तलको उसके प्रकृत रूपमें जगा देना चाहते है। उस अन्तस्तलको जिसे वे स्वभावतः शुभ और पुनीत मानते हैं। उसे जगानेका मार्ग है, मानवके हृदयमें प्रविष्ट होकर उसे उत्प्रेरित कर देना। यह काम डंडेसे डंडेका जवाब देनेसे नहीं हो सकता। घृणाके बदले घृणा, द्वेषके बदले द्वेष और हिंसाके बदले हिंसासे इस लक्ष्यकी सिद्धि नहीं हो सकती।

पथभ्रष्टकी रक्षा पथावलंबी ही कर सकता है। उसके सामने आदर्श स्थापित करो, उसे हृदयकी पवित्रता और अन्तस्तलके सन्मयरूपका दर्शन कराओ। तभी उसकी अन्तश्चेतना जग उठेगी और वह अपने स्वरूपसे साक्षात्कार करेगी। स्वयं डंडा खा कर, कष्ट सहन कर, त्याग और तपका आश्रय लेकर ही उसका हृदय पुनीत भावोंसे अभिभूत किया जा सकेगा। जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ यही गांधीवादका वास्तविक रूप है। हम उनके प्रत्येक कार्यमें इसी दृष्टिकोणकी आभा पाते हैं। गांधीजी वार-वार कहते हैं कि वे विरोधीके हृदय परिवर्तनमें विश्वास करते हैं। उन्हें तो इस चमत्कारमें यहाँ तक विश्वास है कि वे

समझते हैं कि एक दिन ब्रिटेनका भी हृदय परिवर्तन होगा। अब तक नहीं हुआ यह सच है पर इससे भी वे निराश नहीं होते। इसके लिए वे अपने विश्वास और सिद्धान्तमें दोष नहीं देखते पर समझते है कि इसकी भी जिम्मेदारी उन लोगोंपर है जो उस सिद्धान्तको व्यावहारिक रूप दे रहे है। यदि साम्राज्यवादी ब्रिटेनका हृदय परिवर्तन नहीं हुआ तो इसका कारण वे हमारी और अपनी कमजोरी मानते हैं न कि उन सिद्धान्तोंमें त्रुटि। वे बार-बार कहते है कि मेरे आन्दोलनमें समझौतेकी गुंजाइश सदा रहती है। बड़े-बड़े उग्र मतवाले उनकी इस बातसे भड़क जाते है पर गांधीजी जो कहते हैं वह सर्वथा उनके भरोसे संगत है। वे तो मानते ही है कि मनुष्यका हृदय परिवर्तित होगा और जिस क्षण यह घटना घटी उसी मिनट उससे समझौते और मित्रताका द्वार खुल गया।

और एक बात देखो जो उनके विचारोंपर प्रकाश डालती है। वे कभी विरोधीपर उसकी असावधानीमें अहिंसात्मक प्रहार भी नहीं करते। जब किसी आन्दोलनका सूत्रपात करना चाहते है उसके पूर्व सरकारके प्रतिनिधि वायसरायसे मिलते हैं अथवा उन्हें पत्रसे सूचित कर देते है। बहुतोंको उनके इस तरीकेपर आपत्ति होती है पर वे कभी इसमें भूल नहीं करते। फिर जब मिलते हैं या आन्दोलनसे पूर्व पत्रसे सूचना देते है तो उसमें कुछ मांग पेश कर देते है। ये मॉगें शर्तके रूपमें होती है जिनकी पूर्तिका अर्थ होगा आन्दोलनका आरंभ न होना। मांगोंमें भी

इस पत्रको यहाँ खतम किया जाय । मैं लिखता तो जाता हूँ पर मुझे डर लगा रहता है कि कहीं तुम पढ़ते पढ़ते ऊब न जाओ। बहुत सी बातें तुम्हें रोचक लग सकती है पर बहुत सी ऐसी हैं जिनमें कोई रस न मिलता होगा। मैं फिर कहता हूँ कि जितना अच्छा लगे पढ़ना जो न रुचे छोड़ देना। मैं तो पड़े पड़े स्मृति और चेतनामें हिलोरें लेता रहता हूँ। एकान्तका भार तो दबाये रहता ही है उसमें तुम्हारी स्मृति और मेरा सहज मोह और भी उत्पीड़ित कर देता है। मनसे तुम्हारे पास पहुँचकर और विचार द्वारा तुमसे संबन्ध जोड़कर जिस शान्तिका अनुभव करता हूँ वह मुझे अक्सर लिखते रहनेकी प्रेरणा किया करती है। प्रयास नहीं करता। अपनी ओर देखता हूँ और यथासंभव समझनेकी कोशिश करता हूँ। विचार जिधर बहते हैं बहने देता हूँ। करता हूँ सिर्फ इतना कि उन्हें लिखता जाता हूँ। बस—आज यहीं।

तुम्हारा—
कमलापति

६

नैनीसेंट्रल जेल
१८ मार्च ; ४३

प्रिय लालजी,

आओ ! आज कई दिनों बाद पुनः तुमसे कुछ बातचीत करनेकी इच्छा हो रही है। यह सच है कि इस बातचीतमें न ध्वनि होगी और न होगा स्वर पर कदाचित तुम्हें अभी इसका अनुभव नही है कि इस मूक संभाषणमें भी कभी कभी कितना संतोष प्राप्त होता है। मनुष्यका हृदय न जाने कितने प्रकारकी वृत्तियोंका रगमंच होता है। वे वृत्तियाँ अभिनय करती हैं, तरह तरहके रूप और रंग लेकर आती हैं, आकर्षण और अनाकर्षण (विकर्षण), अनुराग तथा विरागकी सृष्टि करती हैं। उनकी इस लीलाको कोई देखता है। द्रष्टा न जाने कौन है पर है कोई जरूर क्योंकि देखनेवाला उन भावतरंगोंमें बहने लगता है जो उनकी

लीला द्वारा लहरा उठती हैं। अपने हृदयको, उसकी वृत्तियोंको, उसकी लीलाको, तज्जन्य भावके प्रवाहको इस जड़ शरीरमें बैठा हुआ मैं देखता हूँ। मोहकता और मादकता तथा असंतोष और अभावका जो वायुमंडल बँध जाता है उसीमें न केवल सांस लेता हूँ और न जीता हूँ बल्कि वास्तवमें तद्रूप हो जाता हूँ। भूल जाता हूँ कि यह हृदयका खेल है और द्रष्टाके लिए उचित नहीं है कि अभिनय देखते हुए अपने व्यक्तित्वको बिसार दे। पर कौन जाने कि द्रष्टा कौन है, क्या है उसके व्यक्तित्वका स्वरूप ? हृदय ही हृदयका द्रष्टा है अथवा कोई और ? कहीं वृत्ति ही तो वृत्तिकी लीला नहीं देखती ? लीला करनेवाला और उसे देखनेवाला, भावोंका उद्रेक करनेवाला और उसकी अनुभूतिका आधार सब एक ही हैं या अनेक ? इनका समाधान मैं नहीं कर पाता पर सोचता हूँ कि व्यर्थ ही इन प्रश्नोंका उत्तर ढूँढ़नेके पचड़ेमें कौन पड़े ? मैं इतनेसे ही अपना काम निकाल लेता हूँ कि मनुष्य रहस्यमय प्राणी है। आज मानवसे अधिक रहस्यमय पदार्थ कदाचित विधिप्रपंचमें दूसरा नहीं है।

वृत्ति ही तो है जो तुमसे बातचीत करनेके लिए और तुम्हारे पास पहुँचने के लिए मुझे विकल कर देती है। सोचने लगता हूँ, 'महीनों बीत गये पर तुम्हारा योगक्षेम भी अभिज्ञात नहीं।' फिर तो विचारका प्रवाह मोड़े नहीं मुड़ता। तुम्हारी उमरके बच्चे माता-पिताके मधुर वात्सल्यमें ही पलते हैं। सहज ही उन्हें उनके स्नेह, संरक्षण और सहायताकी आवश्यकता प्रतीत होती

है। विकासोन्मुख जीवन कलिका यदि रसधारसे सिंचित न हुई तो भला कैसे परिस्फुरणका सुख प्राप्त करेगी ? सहसा ध्यान आ जाता है कि तुम मातृसुखसे भी वंचित हो। अनायास मनमें आता है कि यह स्थिति तुम्हें कहीं अप्रत्यक्ष रूपसे, अनजानमें ही सही, नैराश्य और अभावकी अनुभूति न करा रही हो। इसी प्रकारकी न जाने कितनी कल्पनाएँ उठती है, भावावेशका सृजन करती है और चित्तको आर्द्र कर जाती हैं। कही एक कोनेसे मनकी इस गति पर कोई हँसता भी रहता है। ऐसा लगता है मानो कोई कह रहा हो कि यह तुम्हारी अपनी कल्पना है, अपना मोह है। जगतमें न जाने कितने बच्चे इसी प्रकार माता-पिता-की सहायता अथवा संरक्षण और स्नेहके बिना जीते है, बढ़ते है और जीवनका निर्माण करते है। वही आवाज कहती है कि भावोंकी अपनी दुनिया बना कर विचरना चाहते हो तो भले ही विचरो पर वास्तविकताका इस हाय-हायसे कोई संबंध नहीं है। लड़के अपनी अलग दुनियामें रहते है। उनका अपना क्षेत्र होता है। उनकी लालसा, भावुकता और आकांक्षा तथा उनकी दिलचस्पीकी अलग दिशा और क्षेत्र होता है जो उनके तत्कालीन जीवनके अनुकूल होता है। वे उसमें मस्त रहते हैं, उसीके घात-प्रतिघातसे सुखी या दुखी होते है और उन्हीं समस्याओके हल करनेमें अपना समय लगाते है। उनसे दूर बैठा हुआ उनका पिता, अपने सहज पुत्र-स्नेहसे कितना विकल होता है और विकल होता भी है या नहीं इसमें उन्हें कोई रस नही है। उस कहानी-

को वे यदि कभी सुन पावें तो भले ही उनका कुछ मनोरंजन हो जाय पर इससे अधिक उसका कोई मूल्य उनकी दृष्टिमें हो ही नहीं सकता।

मै समझता हूँ कि मेरे हृदयकी इस आवाजमें भी सत्यका अंश बहुत है। मैं जानता हूँ कि एक समय था जब मैं भी तुम्हारी उमरका ही किशोर था। आज समीक्षा करता हूँ तो सोचता हूँ कि माता-पिताके स्नेहका अधिकारी तो मैं भी था और हूँ पर कभी इस बातकी चिंता तो नहीं की कि मेरे प्रति उनके हृदयमें कितना अगाध स्नेह है, मेरे सुख और शान्ति तथा आनन्दके लिए वे कितने उत्सुक हैं तथा मेरे योगक्षेमके लिए उनके अन्त-स्तलमें कितनी भावुकता और उत्कंठा रहती है। फलतः यह सच है कि मेरी आकुलता-विकलतामें न तुम्हें दिलचस्पी हो सकती है और न मै समझता हूँ कि दिलचस्पी होनी चाहिये। पिता और विशेपकर माताका स्नेह तो एकांगी होता है। वह अपने स्नेहका मूल्यांकन करना नहीं चाहता। वैसा करना तो उस पुनीत भावका अपमान करना है। वात्सल्यका भाव अपनी विशिष्टता रखता है और विशिष्टता यही है कि उसका कोई कारण ढूंढ़कर पेश नहीं किया जा सकता। वह सहज है। उसमें न बदला पानेकी इच्छा होती है, न कोई आकांक्षा, न कोई स्वार्थ। पुत्रके लिए पिताका हृदय भी अपनी अलग दुनिया बनाता है, उसी दुनियाँमें रहता है और इस बातकी चिन्ता या इच्छा भी नही करता कि कोई उसकी ओर देखे और उसका मूल्य आंके। हृदयकी वृत्तियों-

का आखिर यही तो खेल है। कोई चाहे या न चाहे पर उसका पितृ हृदय सहज ही अपने बच्चेके लिए विकल रहेगा, उसकी चिन्ता किया करेगा और उसके मंगलकी कामना करता हुआ मस्त होगा। इतना ही नहीं बल्कि वह उस स्थितिमें जिसमें मैं पड़ा हुआ हूँ, अपने बच्चोंके संबंधमें बहुधा साधार और निराधार कल्पना कर करके परेशान होता रहेगा, कभी आशंकित होगा, कभी विचलित, कभी उनके निकट होनेके लिए उत्कंठित होगा और कभी बात करनेके लिए उत्सुक !

विचार करता हूँ तो अपने ही ऊपर आश्चर्य होने लगता है, कैसा है मनुष्यका व्यक्तित्व ? एक ओर जो मानव महान् पथका पथिक होता है, ऊँचे आदर्शोंके लिए जीवनकी बलि हँसते हँसते चढ़ा देता है, मोह और अनुरागके बंधनोको छिन्न भिन्न करके स्वयं अपने हृदयकी सारी कामना और लालसाको चूर कर देता है, वही दूसरी ओर हृदयकी छोटी-छोटी लोल लहरियोंमें लहराता हुआ असहायकी भाँति सह्य वृत्तियोके लपेटसे घायल होकर कराहता दिखाई देने लगता है। कैसा द्वन्द्व है, कैसा रहस्य और कैसी है विडंबना ! बंबईमें ८ अगस्तकी रातको मैंने भी अपने तुच्छ जीवनके संबंधमें एक दृढ़ संकल्प किया। सर्व भारतीय कांग्रेस कमेटीमें अंग्रेजी साम्राज्यवादके विरुद्ध युद्ध छेड़ देनेके प्रस्तावपर अपना मत उसके पक्षमें प्रदान करनेके पूर्व समस्त बातोंपर पूरी तरह विचार कर लिया था। किसी आवेशमें आ कर कार्यसमितिके प्रस्तावका समर्थन नहीं किया था। इस निर्णय-

का क्या परिणाम देशके लिए होगा और उसका क्या प्रभाव हमारे जीवनपर पड़ेगा तथा आजसे मुझे क्या करना होगा यह सब चित्रकी भाँति मेरे विचारपथमें स्पष्ट हो गया था। मैंने समझ लिया था कि आनेवाले भयानक तूफानमें मुझे कूदना है। संसार, जीवन, परिवार, बाल-बच्चे तथा भविष्यकी समस्त सुख कल्पनाको आज सदाके लिए छोड़ देनेका निश्चय करके ही कूदनेके लिए आगे बढ़ा जा सकता था। परिस्थितिपर गंभीरतापूर्वक विचार करनेके बाद मनने संकल्प किया कि राष्ट्रीय परित्राणके इस गौरवपूर्ण ऐतिहासिक महायज्ञमें 'स्वाहा' का उच्चारण करते हुए अपनी भी अकिंचन आहुति डालना ही मेरे जीवनकी सार्थकता है। कमेटीने प्रस्ताव स्वीकार किया। रात दस बजे अधिवेशन समाप्त हुआ। हम युक्तप्रान्तके प्रतिनिधियोंको गांधीजीका आदेश मिला कि प्रातःकाल ८ बजे (९ अगस्तको) बिरला भवनमें जाकर उनसे भेंट करें। वे भावी युद्धयोजनाके सम्बन्धमें हमें आदेश देते। रातको वापस आकर जब अपने डेरे पर लेटा तो मुझे स्मरण है कि भविष्यकी चिंताने आ घेरा।

तुम्हारी बीमारीका ध्यान आया, तुम लोगोंके मातृविहीन होनेकी याद आयी, तुम्हारे जीवनके प्रति अपनी जिम्मेदारीका ज्ञान हुआ, जिस पथपर जाना था उसकी कठिनाइयोंका चित्र भी मूर्त्तिमान होकर सामने खड़ा हो गया। पर हृदयकी गतिको क्या कहूँ? तमाम बातें सामने आयीं और धीरे-धीरे हटती गयीं। सबका उत्तर आपसे आप मिलता गया। सामने एक लक्ष्य

था जिसके प्रकाशमें मानो मोहान्धकार नष्ट होता गया। हृदय कहता कि 'यह विकलता कैसी? जीवनका मूल्य इसीमें है कि वह अपने प्रयोजनको, अपनी सार्थकताको सिद्ध करे। अवसर आनेपर बगलें झाकनेवाला तो मृत्यु आनेके पूर्व ही मर गया। फलतः मार्ग स्थिर हो गया। प्रातःकाल बिरला भवन पहुँचनेका निश्चय कर मैंने निश्चिन्त हो निद्राकी शरण ली। इधर घटनाओंका क्रम तीव्रवेगसे परिचालित था। हममेंसे बहुतसे जगे भी नहीं थे कि गांधीजी और कार्यसमितिके सदस्यगण गिरफ्तार कर लिये गये। सुबह नीद खुली तो देखा कि विद्रोहका बादल अरब महासागरके तटसे उठकर भारतीय क्षेत्रमें एकत्र होने लगा है। बंबईमें ९ अगस्तके प्रभातका दृश्य जीवनपर्यन्त न भूलेगा। सारे टेलीफोनके तार काट दिये गये थे। चारों ओर सनसनी थी। सरकारी दमनका यंत्र विद्युत् वेगसे चल पड़ा था। एक एक करके बंबईके सारे कांग्रेस कार्यकर्त्ता भी अरुणोदयके पूर्व ही पकड़ लिये गये थे। गांधीजी और कार्यसमितिके सदस्य नेता तो गिरफ्तार करके लुका, छिपाकर बंबईके बाहर अनिश्चित स्थानको भेज दिये गये थे। जलनिधिकी तरंगोंमें बाल सूर्य अभी अपनी रक्ताभा प्रदान भी नहीं कर पाया था कि बंबईके विशाल राजपथोंमें भयावनी महामारीकी भाँति यह समाचार फैलने लगा कि गांधीजी तथा नेतृवृन्द गिरफ्तार कर लिया गया। सब समाचार जाननेके लिए मैं भी झटपट बिरला भवनकी ओर चल पड़ा। देखते-देखते चारों ओर लालीका साम्राज्य छाता दृष्टिगो-

चर हुआ। समुद्रमें सूर्यकी लाली थी, बंबईका अंबर सिन्दूर रंजित था और धरणी देशभक्तोंके शोणितसे लाल थी। जिधर जाता पुलिसके डंडे बेतहाशा चलते दिखाई देते। नवयुवकोंके झुण्ड मस्तीमें उमड़ते चले जा रहे थे। बाजार बन्द थे। ट्राम-गाड़ियाँ, बसें और विक्टोरियाँ जहाँ कहीं भी निकलकर पहुँचती थी वहीं खड़ी हो गयी थीं। 'अंग्रेज निकल जायँ' और 'भारत आजाद है' की प्रचंड ध्वनि अंतरिक्षको कँपाये दे रही थी। मैंने देखा कि राष्ट्रीय अन्तर्ज्वालाका भीषण विस्फोट आरंभ हो गया है। जो प्रदर्शन हो रहा था उसका न आयोजन किया गया था, न प्रचार। न कोई संघटित प्रयास था न संचालन। जो था वह क्रान्ति धाराकी उत्ताल तरंग थी, क्षोभ सागरकी प्रचंड बड़वाग्नि थी जो आज अनायास विकराल रूप धारण कर निकल पड़ी थी।

सायंकाल शिवाजी पार्कमें एक लाखसे अधिक नर-नारी एकत्र थे। जिधर देखो मुंड ही मुंड दिखाई दिया। पार्कको पुलिस और फौजके सिपाहियोंने पहलेसे ही घेर लिया था। उनकी चमकती हुई संगीनोंकी पंक्ति महाविभीषिकाकी लपलपाती जिह्वाके समान हिल उठती थी। पर भीड़ हटनेके लिए तैयार न थी। जो आता पार्कमें घुसनेकी चेष्टा करता। डंडे चले, संगीनें भारतीय शहीदोंके शरीरोंमें घुसीं और देखा कि थोड़ी ही देर बाद बंदूकें दगने लगीं। गोलियाँ सनसनाती हुई निकलीं, लोग धड़ाधड़ गिरे पर भीड़ न हटी। अंतमें गैस-बमोंका प्रयोग किया गया। ये गैस-

बम फूटकर आँखोंमें इस प्रकार लगते जैसे किसीने मिरचा भर दिया हो। गलेमें जाकर उनका धुँवा दम घोटने लगता। पर जिस प्रतिरोधकी भावनाने जनसमूहको विक्षुब्ध किया था उसीने उसे कालके भयसे भी निर्मुक्त कर रखा था। सशस्त्र और पशु-बलाश्रित सरकारका हृदयहीन यंत्र एक ही गर्दिशमें अशस्त्र भारतीयोंके उच्चतम भावों और आदर्शोंको पीस डालनेका यंत्र बन चुका था। उसे न ममता थी और न दया। लज्जा भी न थी कि निहत्थोंका रक्तपात अपनी संगीनोंसे कराना मानवताकी हत्या करना है। ब्रिटिश बाहुबलका अच्छा प्रदर्शन था। जो बाहु मलाया और बर्माकी रक्षामें कुण्ठित हो गया था, जो शस्त्र हॉगकॉगकी ब्रिटिश पताकाको बचानेमें निकम्मे सिद्ध हुए थे और वीरता डंकर्क, फ्रान्स और यूनानमें अपना स्वरूप प्रकट कर चुकी थी वही अपने बलकी आजमाइश निहत्थे, दबे हुए और दुर्बल भारतीयोके साथ कर तोष और प्रसन्नता प्राप्त करती दिखाई दी। ९ अगस्तका यह दृश्य और उसके बादकी घटनाएँ जो इस देशमें घटीं मानव इतिहासके घृणित अध्यायके रूपमें सदा वर्तमान रहेंगी और भावी इतिहासकार उसपर अपना फैसला देंगे।

मैं यह कह रहा था कि ये दृश्य मेरे नेत्रोंके सामने आज भी है। मैं उसी दिन रातके समय काशीके लिए रवाना हो गया। उसी वक्त समझ लिया था कि अब मेरे भाग्यमें क्या बदा है। १० अगस्तकी अर्धरात्रिको प्रयाग पहुँचा ही था कि ब्रिटिश साम्राज्यकी रक्षाके लिए मुझे गिरफ्तार कर लेना उचित समझा

गया। बरसातकी रात प्रचंड रूपसे अपनेको काले परिधानमें ढँके हुए थी। पानी भी बेतरह बरस रहा था। मुझे एक बार तुम्हारी बीमारीका स्मरण बड़े वेगसे हुआ। हृदयमें आया कि एक बार तुम्हें देख लिया होता तो अच्छा था। पर तत्क्षण हृदयके दूसरे कोनेने मानो झकझोर दिया। किसीने कहा कि यह समय आर्त होनेका नहीं है। स्वेच्छासे तुमने अपनी नौका स्वयं फूँक दी है। अब उस तमाशेको मस्त होकर देखनेमें ही तुम्हारा गौरव है। पुलिसवाले लारीमें बिठाकर ले चले। नैनी जेलके फाटक पर पहुँचा तो रातको १० बज रहे थे। भीतर दाखिल हुआ और थोड़ी देर बाद अपनी कोठरीमें पहुँचा दिया गया। इस कोठरीमें महीनों बीत गये, जीवनका क्षण-क्षण बीतता जा रहा है। मेरी यह दुनिया अपना निराला ही रंग और रूप रखती है। बाहरसे कोई संबंध नहीं। यारोंने जिन्दाही कब्रमें गाड़ रखा है। पर चेतना मौजूद है। सोचता हूँ कि कैसा मामला है। मैं ही तो हूँ जो अपने प्राणको होम देनेका संकल्प करके बंबईसे चला था। सोच लिया था कि इस प्रखर राष्ट्रीय प्रवाहमें गोते लगाना है फिर चाहे उसका परिणाम कुछ ही क्यों न हो। जीवन नैया किसी घाट किनारे लगेगी तो ठीक ही है और न लगे तथा विनाशक आवर्तों में पड़कर तलमें समा जाय तो भी ठीक ही है। विलुप्त होते होते भी ऊपरी सतह पर वह कुछ बुलबुलोंकी सृष्टि तो कर ही जायगी। उसकी इतनी सार्थकता भी क्या कम है ?

महान् आदर्श और विकट पथके प्रति जिस हृदयमें इतना उन्माद था वही हृदय तो है जो इस रात्रिमें तुमसे बोलने और तुम्हारे निकट होनेके लिए विकल है ? अपना यही रूप है जिसे देखकर आश्चर्य होने लगता है। कैसा तमाशा है ? विचार करो कि यह मनुष्य कैसा विचित्र प्राणी है। मैं ही हूँ जिसने एक नहीं अनेक बार सभामंचोसे, तथा समाचारपत्रोंके स्तंभोंसे देशकी जनताका आवाहन किया है और ललकारा है कि 'उठो ! मातृभूमिकी मुक्तिके महायुद्धमें कूद पड़ो। आवश्यक हो तो हँसते हँसते प्राणोंका विसर्जन कर दो।' यदि एक भी व्यक्ति मेरी इस पुकारसे प्रभावित न हुआ हो तो भी नैतिकता और कर्तव्यकी यह माँग थी कि मैं स्वयं उस पथका अवलम्बन करूँ जिसका प्रचार करता रहा हूँ। अपने और संसार तथा सत्यके प्रति मेरा यही धर्म था। आज हजारों ऐसे हैं जिनके घरका दीपक इस तूफानके झटकेने बुझा दिया। अनेक नवयुवक गोलियोंके शिकार हो गये। न जाने कितनोंका कलेजा संगीनोंने फाड़ डाला। कितनी माताओंकी गोद सूनी हो गयी, न जाने कितने बच्चे अनाथ हो गये। मैंने अथवा और कितनोंने कब इस पर आँसू बहाया होगा ? थोड़ा आगे बढ़ो और देखो कि आज महायुद्धकी आगसे सारा संसार जल रहा है। तुम इस युद्धका समाचार बड़े शौकसे पढ़ते हो और मैं जानता हूँ कि अपनी राय भी दिया करते हो। पर इस युद्धने जो महा संहार किया है और कर रहा है उसकी ओर जैसे किसीका ध्यान ही नहीं जाता। करोड़ों नौजवान जो

इस धरतीके खिलते हुए मनमोहक पुष्प थे इस पिशाचके जबड़ोंमें समा गये। बसे-बसाये नगर ढूह हो गये और अपने साथ साथ लाखोंकी मधुर आशा, कोमल कल्पना, सुखद स्मृति लेते गये। जिन घरोंमें लोगोंका बचपन बीता है, जिनमें उन्होंने जीवनके सुखकी घड़ियोंका अनुभव किया है और जो उनके हृदयकी लीलाके स्थल रहे हैं वे आज निर्दयतापूर्वक पीस-पासकर धूल कर दिये गये हैं। माताओंने अपने हृदयके टुकड़े दिये और कुल ललनाओंने अपने सौभाग्य-सिंदूरकी भेंट चढ़ायी। पृथ्वी मानव-शोणितसे लाल कर दी गयी। भयानक विनाश, प्रचंड संहार और प्रलय यही इस युद्धका स्वरूप है। पर कब मैंने इस पर दो बूँद आँसू टपकाये? वही मैं, आज इसलिये विकल होता हूँ कि तुम मातृहीन हो, वात्सल्यके सुखसे वंचित हो। आदर्श और कर्तव्यके नाम पर विरक्त हुआ हृदय किस प्रकार दुर्वलताओं और आकर्षणसे बद्ध है? यह द्वन्द्व और अपना यही विरोधी तत्वोंसे बना स्वरूप घोर आश्चर्य और परेशानीमें डाल देता है।

फिर यह युद्ध कोई नयी वस्तु नहीं है। आजसे ३० वर्ष पूर्व ऐसा ही महायुद्ध एक बार और हो चुका है। उस समय तुम्हारी उमरके लोगोंका जन्म भी नहीं हुआ था अतः तुम्हारे लिए युद्ध विश्वके इतिहासमें एक महत्त्वपूर्ण घटनाके सिवा और कुछ नहीं है पर वह घटना भी महाकालका नर्तन ही थी। मानवताको उसने विनाश, दैन्य, दरिद्रता और दुःखके सिवा और क्या प्रदान

किया ? सभ्यताकी रक्षाके लिए सभ्यताकी हत्या की गयी। श्री और सम्पत्ति तथा जगतकी उन्नतिके नामपर लाखो नवयुवकोका मस्तक घासकी तरह काट डाला गया, व्यवस्थाकी स्थापनाके लिए तत्कालीन व्यवस्थाका गला घोट दिया गया और लोक-तंत्रका सृजन करनेके लिए लोकतंत्रको फॉसी दे दी गयी। चार वर्ष तक लोमहर्षक पैशाचिक प्रवृत्तियॉ उच्छृङ्खल होकर नाचती रहीं इसलिए कि विश्वमें न्यायका साम्राज्य स्थापित हो। उसके गर्भसे जो न्याय उत्पन्न हुआ वह वार्साइका महा अन्याय था। युद्धोंको सदाके लिए समाप्त करने तथा शान्तिकी स्थापनाके लिए मनुष्यने मार्ग ग्रहण किया अशान्ति और संघर्षका ! देखता हूँ न शान्ति स्थापित हुई, न युद्धका लोप हुआ। न सभ्यताकी रक्षा हुई, न जगतसे भूख, दरिद्रता और अभावका नाम निशान मिटा और न मानव मानवीय हुआ। उसी वार्साईके गर्भमें भावी युद्धका बीज था। वह बीज अंकुरित हुआ, उसका विकास हुआ और आज उसकी विषमयी छायामें यह भू मंडल छार छार हो रहा है। आज तो विश्व छिन्नमस्तक नर-रुंडोंसे भर उठा है जो पृथ्वीमें प्रवाहित हुई रक्त धारामें, इधर उधर उतराये हुए है। मानव।शोणित तर्पण कर रहा है पर मालूम नहीं कि किसकी तृप्तिके लिए ? अपने अहंकार और स्वार्थकी तृप्तिके लिए, अपने हृदयस्थ दानवकी तृप्तिके लिए, अपनी सनक और अपने दर्पकी तृप्तिके ही लिए यह महा अनर्थ हो रहा है अथवा और कोई लक्ष्य है ? जगत त्राहि-त्राहि कर रहा है, भूखी-नंगी जनता पीसी जा रही

है, उसका दुर्दान्त शोषण हो रहा है! वैज्ञानिकोंने ईश्वरके .।.त्व विरुद्ध विद्रोह करके मनुष्यकी महत्ता स्थापित की! ्कृति । चेरी बनाया, उसे अपने संकेतपर नचानेका दावा किया। घोषणा की गयी कि विज्ञान और बुद्धिवादके द्वारा जगत-को धार्मिक अंधविश्वाससे मुक्त करके जीवनको सरल, आनन्द-मय और सुखमय तथा मेदिनीको शान्तिमयी, मंगलमयी और ऐश्वर्यमयी बना दिया जायगा!

पर खुदाको हटाकर मनुष्यने शायद शैतानको ही एकछत्र राज्य प्रदान कर दिया। वही विज्ञान आज मानवताके लिए अभिशाप हो गया है। अपने हाथों अपने विनाशका कैसा अभिनव उपक्रम हो रहा है! सुख, शान्ति, संतोष नामकी वस्तु है कहाँ? मिथ्याभिमान, लोलुपता और पाखंडके सिवा और कुछ तो दिखाई नहीं देता। सोचने लगता हूँ कि मनुष्य कैसे इतने नीचे गिरता है। जो प्राणी विधि-विधानके रहस्यका उद्घाटन करनेकी चेष्टा करता हो, जिसने प्रकृतिके पटको उघाड़कर उसके स्वरूपको समझनेमें सफलता प्राप्त की हो, जिसने महती संस्कृतियो, ऊँचे आदर्शों और पवित्र सिद्धान्तोंकी स्थापना की हो और जिसने बुद्धि तथा पुरुषार्थकी सार्थकता सिद्ध कर दी हो तथा जगतको अपने जीवनकी उन्नति और उत्कर्षका साधन बनाया हो, वह कैसे अपने बड़प्पनको भूलकर पशुतुल्य व्यवहार करने लगता है और तुच्छ प्रवृत्तियोंसे पराजित हो जाता है। बहुधा मैं अनुभव करने लगता हूँ कि बेचारे मनुष्यसे सब शत्रुताका

व्यवहार करते हैं। मनुष्य तो मनुष्यके विरुद्ध लड़ाई छेड़े हुए है ही, ईश्वर भी उसके विरुद्ध युद्ध छेड़े हुए है। नर-मेधकी प्रेरणा नर-हृदयमें उत्पन्न करके वह क्यों उनके विनाशकी व्यवस्था करता है? देखता हूँ कि प्रकृतिने भी उससे अपनी शत्रुता घोषित कर दी है। कहीं भूकम्प, कहीं तूफान, कहीं महामारी और कहीं जल-प्लावन, कहीं अकाल और कहीं अभाव असंख्य प्राणियोंका संहार प्रति वर्ष करता रहता है। सोचने लगता हूँ कि सबने मिलकर इस दयनीय द्विपद्प्राणीको अपने क्रोधका शिकार न जाने क्यों बना रखा है? पर कभी कभी इसके विपरीत भी सोचने लगता हूँ। क्या मनुष्यने ही सबके विरुद्ध विद्रोहका झंडा ऊँचा नहीं किया है? उसने अपने सजातियोंसे तो संग्राम ठान ही लिया है पर ईश्वरके अस्तित्व तकको अस्वीकार करके उसे चुनौती देता है, संशय और सबकी खोद-विनोद करनेकी प्रवृत्ति दिखाकर सबसे ऊपर अपनी बुद्धिकी सत्ता स्थापित करता है। यह अद्भुत प्राणी अपने चरणोंसे अनन्त प्रकृतिकी असीम परिधिको नाप लेनेके लिए अग्रसर होता है, पहाड़ोंकी चोटियाँ, समुद्रके अतल तल और पृथ्वीका गर्भ सब उसकी समीक्षाके अधीन हो जाते हैं और परम रहस्यमयका रहस्य भी सुरक्षित नहीं रहने पाता!

सबसे युद्ध और संघर्षका सूत्रपात करके मानव ही कहीं तमाम बुराइयों और दुःखोंका कारण तो नहीं हो रहा है? पर दुःखका कारण हो अथवा न हो, ये बातें मानवके साहस और स्वाभिमान तथा उसकी नैसर्गिक शक्तिकी ओर अवश्य संकेत

करती हैं। पर जो इतना शक्तिशाली है उसकी दुर्बलता देखकर चकित हो जाता हूँ। अपने बच्चेका हास और उसकी क्रीड़ा देखनेके लिए, अपनी प्रियतमाके सम्मुख घुटने टेककर आत्मसमर्पण करनेके लिए, स्नेह, राग और ईर्ष्या तथा घृणा, सुख और दुःखके अपूर्व बंधनोंका अनुभव करनेके लिए वह तनिक तनिकसे प्रलोभनोंको पाकर मुँहके बल कैसे गिर पड़ता है। अपने ऊपर पड़े हुए इस पर्देके पीछेके अपने ही रहस्यमय स्वरूपको मनुष्य अबतक नहीं पहिचान पाया, यद्यपि अपनेसे दूर, करोड़ों मील दूरके सितारों और ग्रहोंतक उसकी ज्ञान-दृष्टि पहुँच जाती है।

पर अब पत्र समाप्त कर रहा हूँ। रातके डेढ़ बज चुके हैं। रेंड़ीके तेलका दीया अपनी इहलीला समाप्त ही करनेवाला है। मेरा काम भी हो गया। वास्तवमें तुम्हारे निकट होनेकी चाह थी, तुमसे बात करना चाहता था, उस प्रयत्नमें अनायास ही दृष्टि अन्तर्मुखी हो गयी। मेरी दृष्टिने अपनी समीक्षा आरंभ कर दी। मैंने देखा कि दोनों काम हो गये। समीक्षा हुई और तुमसे दूर बैठे बैठे भी संबंध स्थापित कर लिया। मुझे संतोष प्रदान करनेके लिए यह काफी था। अब बस! तुम भी विश्राम करो।

तुम्हारा
कमलापति

७

नैनी सेण्ट्रल जेल

ता०..........

प्रिय लालजी,

रात काफी बीत चुकी है। चारों ओर गहरा सन्नाटा छाया हुआ है। कहीं दूर कदाचित फाटक परका घंटा अभी टन से दो बार बजा है। उसीसे यह जान सका हूँ कि रजनीका चौथापन आने ही वाला है। जाड़ेकी ऋतु समाप्त होनेको आयी फिर भी कुछ ठंड पड़ रही है। चन्द्रमा कुछ कालके लिए आकाशमें गश्त लगाकर संभवतः विश्राम करनेके लिए अपना मुँह ढक चुका है। सन्नाटेके साथ-साथ अंधकारका विस्तृत साम्राज्य छाया हुआ दिखाई दे रहा है। घंटेकी आवाजके साथ-साथ न जाने मेरी आँखें क्यों खुल गयीं। शायद रात्रिके पहले ही पहरमें करुणामयी निद्राने अचेतनाकी चादर उठाकर

कुछ घंटोंके लिए मुझे इस स्थान और अपने इस वर्तमान अस्तित्व-से विस्मृत कर दिया था। पर कुछ ही समय के बाद, मानो मुझसे रुष्ट होकर, उसने भी प्रस्थान कर दिया। बार-बार चेष्टा करने पर भी अब आज उसका आश्रय पानेमें असमर्थ हो रहा हूँ। पड़े पड़े आँखें खोलकर अपने चारों ओर देखा तो यह पाया कि बैरकमें रहनेवाले मेरे सब साथी खुर्राटें ले रहे है।

इस घोर शान्तिके हृदयको विदीर्ण करती हुई किसी बैरकसे अभी किसी नंबरदारकी आवाज आयी और मेरे कानमें तीरकी तरह घुस गयी। 'ताला, जँगला, लालटेन और पूरे कैदी ठीक है हुजूर'। घड़ीमें चाबी लगानेवाला जमादार अपने साथी 'छ घंटे' के साथ अभी अभी अभी हमारे बैरकका चक्कर लगा गया है। हम लोगों पर पहरा देनेवाले नम्बरदारने उससे रिपोर्ट लगायी है और कहा है 'सब ठीक है हुजूर'। 'नंबरदार' कैदी होते हें जो कैदियोंपर ही जेल अधिकारियोंकी ओरसे अफसर नियुक्त कर दिये जाते है। ये रातमें बैरकोंमें कैदियोंपर पहरा रखते है और प्रति आध घंटेमें 'सब ठीक है' की रिपोर्ट जोरसे चिल्लाकर बढ़ा देते हैं। जेलमें 'रिपोर्ट बढ़ाना' एक खास बात है जो वड़ी प्रचलित है। कैदियोकी यह गिनती जोर जोरसे की जाती है। 'एक, दो, तीन, चार' इस प्रकार चिल्लाते हुए प्रत्येक कैदीके सिरके पास जाया जाता है, उसे देखा जाता है और गिनतीके वाद रिपोर्ट वढ़ा दी जाती है। सारी रात यह खुराफात होती रहती है। हम लोग तो राजवंदी है इसलिए हमारी गिनती

जरा धीरेसे की जाती है पर साधारण कैदियोंकी गिनती करते हुए तो नंबरदार उन्हें जगाता है, बहुधा उठकर बैठनेका हुक्म दे देता है। पर यही एकमात्र पहरा नहीं है। सारी रात घड़ीमें चाभी भी लगती चलती है। यह न समझना कि यह घड़ी समय बतानेवाली तुम्हारी 'रिस्टवाच' या 'जेबी घड़ी' है जिसमें चाभी भी लगायी जाती है। रातको पहरा देनेवाले जमादारकी कमरमें एक यंत्र बँधा होता है। चमड़ेकी पेटीमें चमड़ेका एक डिब्बा-सा बँधा होता है जिसे वह पहने रहता है। तुमने नापनेके लिए नाप करनेका वह फीता तो देखा होगा जो चमड़ेके एक चिपटे और गोल डब्बेमें लपेटा रहता है। बस उसी डब्बेकी तरह इस यंत्र-की भी शकल होती है। बैरकोंके बाहर एक छोटासा ताखा होता है जिसमें लोहेकी एक भंडरिया लगी होती है। इस भंडरियेमें लोहेके चेनसे बँधी एक छोटी सी ताली लटकती रहती है। इस तालीको उस डब्बेके मुँहमें डालकर घुमा दिया जाता है। डब्बे-के भीतर उस तालीके घुमानेका निशाना कागज पर बन जाता है।

एक जमादारके जिम्मे ५, ६ या ७ तक बैरिकें होती हैं जहाँ जाकर उसे हर बैरकके बाहर लटकती हुई तालीको डब्बेमें डाल-कर घुमाना पड़ता है। डब्बेके भीतरका इन्तजाम कुछ ऐसा होता है कि उसमें पड़े निशानको देखकर यह अंदाज लगा लिया जाता है कि जमादारने हर बैरककी गश्त की या नहीं। एक बैरकसे दूसरे बैरक तक पहुँचनेमें जमादारको पाँच मिनट लगते हैं और इस प्रकार सातों बैरकोंका चक्कर काटकर ३५ मिनटमें

वह फिर उसी बैरक पर पहुँच जाता है जहाँसे अपना काम आरंभ किये होता है। इस प्रकार बेचारा जमादार बराबर छ घंटे तक चलता रहता है। यदि ३५ मिनटके बजाय वह ४० मिनटमें पहुँचे तो डिब्बेके भीतर पड़े निशानसे यह समझ लिया जाता है कि वह निर्धारित समयपर जहाँ पहुँचना चाहिये वहाँ नहीं पहुँच सका। फिर तो उससे जवाब तलब होगा, पेशी होगी, जुर्माना होगा। जमादारके साथ साथ एक नंबरदार भी लालटेन लिए घूमा करता है। ६ घंटे तक उसकी ड्यूटी भी होती है इसलिए उसे '६ घंटा' के नामसे ही पुकारते हैं। इस घड़ीकी चालमें कोई फर्क कभी नहीं पड़ता। गरमी हो चाहे सावनकी भयावनी रात, पानी पड़ रहा हो या पत्थर, कड़ाकेकी सर्दी गिर रही हो या पाला बराबर आदमीकी कमरमें बँधी यह घड़ी चलती रहती है। जिस बैरकके सामने जमादार पहुँचता है उस बैरकका नम्बरदार अब गिनती करके 'सब ठीक है हुजूर' का रिपोर्ट लगा देता है। मानव संतानकी स्वतंत्रता-का अपहरण करनेके लिए यह विकराल आयोजन! कैदी मनुष्य है, फिर भी उसपर इतनी निगरानी, इतनी चौकसी मानो वह किसी भयावने प्राणहारी हिंस्र पशुसे भी अधिक भयावना हो। मनुष्यने मनुष्यका जीवन कैसा बना रखा है! इस समय अपनेको सात तालोंके अन्दर बन्द पाता हूँ। बैरकोंमें शामको बन्द होनेके समय गिनती होती है। गड़रिये भेड़ बकरियोंको उनके कठघरेमें हाँकते समय किस प्रकार गिनते है यह शायद

तुमने भी देखा होगा। बिलकुल वही हाल हम लोगोंका भी होता है। जमादार होता है, नंबरदार होते हैं, जेलर होते हैं, सबके सामने हम लोग सायंकाल ६॥ या ७ बजे बैरकमें हाँक दिये जाते हैं। जब घुसने लगते हैं तब एक एक आदमीकी गिनती कर ली जाती है। बैरकका दरवाजा बंद कर दिया जाता है। इसके बाद सारी रात आध आध घंटे पर हम गिने जाते है और रिपोर्ट लगती चलती है। सुबह खुलनेके वक्त कैदी बैरकोंसे ऐसे बाहर निकलते हैं जैसे दरबेसे कबूतर। पर निकलनेके समय फिर भी गिनती होती है।

मनुष्य मनुष्य समझा ही नहीं जाता। जेलमें यहाँ कहावत कही जाती है कि कैदी अगर भाग गया तो शेर भाग गया और मर गया तो मच्छड़ मर गया। वास्तवमें वह मनुष्य नही समझा जाता। या तो भयानक शेर है या मच्छड़ जिसे मसलकर धूलमें मिला देना भी गुनाह नहीं है! नींद खुल गयी और अपने बिस्तर पर पड़े पड़े घड़ीकी पादध्वनि सुन रहा हूँ। प्रति पाँच मिनटमें किसी न किसी बैरकसे आनेवाली 'सब ठीक है' की चिल्लाहट तो कलेजेमें धँस जाती है। सोचता हूँ कि सचमुच क्या 'सब ठीक है'? क्या यही समाज, यही व्यवस्था और यही विधान मनुष्यकी मानवताका द्योतक है? कानून किसीको चोर समझकर, किसीको डाकू कहकर और किसीको जालसाज घोषित कर उसे दुनियासे अलग, समाजसे अलग और प्रकृत जीवनसे अलग कर इस नरकमें ला पटकता है,

पर क्या कभी उसने यह भी सोचा कि किसी चोरकी चोरी, डाकू-की डकैती और जालसाजकी जालसाजीके लिए समाज, समाजके विधान, आजके आर्थिक और राजनीतिक संघटन तथा जो समाजके अगुवा हैं उनका स्वार्थ किस सीमा तक उत्तरदायी है? जड़ कानून तो क्या सोचेगा पर कानून बनानेवाले और कानूनका परिपालन करनेवालोंने क्या कभी यह विचार भी किया है कि अपनी आँखोंके सामने पेटकी ज्वालासे तड़पते अपने बच्चेको देखकर मनुष्य कैसे पागल हो जाता है और कैसे अपनी मृतक माताके लिए कफनका इन्तजाम न कर सकनेके कारण मनुष्य क्षुब्ध हो जाता है? आज जिन्हें चोर डाकू और जालसाज कहकर समाजका शत्रु घोषित किया गया है उन अभागोंके जीवनकी ओर कब किसने दृष्टिपात किया है? वे भी मनुष्य हैं, उन्हें भी माया-ममता है, सुख-दुखकी अनुभूति है और अपने बच्चोंसे प्रेम है। किन परिस्थितियोंने उन्हें चोर बनाया और वस्तुतः उस परिस्थितिके लिए जिम्मेदार कौन है? क्या उसकी जिम्मेदारी इन्हींपर नहीं है जिन्होंने अपनी तृप्ति और पूर्तिमें सफलता पायी है दूसरोंको पीसकर, उन्हें अभाव और अतृप्तिमें जलनेके लिए छोड़ दिया है। क्या आज वे ही स्वयं बड़े चोर नहीं हैं? भले ही वे अपनी चोरी कानूनकी दृष्टिमें जायज करके मस्ती लूटें पर मनुष्यता और न्याय-भावना उन्हें कब निर्दोष कहेगी। फिर भी नम्बरदार कहता है 'सब ठीक है, हजूर' और 'हजूर' तुष्ट हो जाता है।

जेलमें चोर दण्ड भागी बनाकर रखा जाता है पर देखता हूँ कि वहाँ ऊपरसे नीचे तक दिन दहाड़े चोरी होती रहती है। बड़ेसे बड़े आफिसरसे लेकर साधारण जमादारतक चोरी करते हैं। कोई तिकड़म करके कैदियोंके पैसे वसूल करता है, कोई कोई बगियाका सुख लूटता है। नाना प्रकारके कुकर्म करते और कुचक्र चलाते उन लोगोंको देखता हूँ जो तथोक्त चोर-डाकुओं पर निगरानी रखने, उनपर पहरा देने और उन्हें कानूनी दण्ड भोगवानेके लिए सार्वजनिक कोषसे अपना मासिक वेतन पाते हैं। कैसा खेल है ? देखता हूँ कि जो स्वयं चोर हैं वे ही दूसरे चोरों पर पहरेदारी करते हैं। इस पाखंड, इस मिथ्याचार और इस ढोंगका कोई ठिकाना है ? क्या यही मानव सभ्यता है जिसपर हम अभिमान करते हैं ? मनुष्यका सहज रूप आखिर है क्या ? क्या वह असत्याचरण, वितंड, प्रवंचन, और प्रतारणका ही पुतला है ? क्या उसकी विशेषता केवल इतनेमें है कि वह अपनेको और दूसरेको बड़ी सरलता और सफलताके साथ धोखा देनेमें समर्थ होता है और इस प्रक्रियाके द्वारा अपने नग्न स्वरूपको छिपा लेता है ? क्या इस धूलि-प्रक्षेपणकी कलाका नाम ही सभ्यता है ? इस अंधकार पूरित स्थानमें मानव जीवनके विकृत स्वरूपको मेरी कल्पनाने इस प्रकार मेरे सम्मुख ला खड़ा किया कि मैं स्वयं ही काँप उठा। मेरे लिए उस विचार-प्रवाहको रोकना अनिवार्य हो गया। उसका भार सहन करना मेरी शक्तिके बाहरकी बात हो चली। उठकर कोठरीके झरोखेके पास आया। आबद्ध

कैदीकी दृष्टि असीम व्योमकी ओर जा पड़ी, देखा कि पृथ्वीसे अंतरिक्षतक सारा शून्य अंधकारसे आवेष्ठित है। तारक मंडली अवश्य टिमटिमा रही थी। सोचा अंबरके इन झरोखोंके उस पार कौनसा प्रकाश है जिसकी झिलमिल आभा अंधकारोदधिको पार करती हुई मुझ अकिंचन प्राणीतक पहुँच रही है। मेरे झरोखेने मेरी दृष्टिके विस्तारको अपने कठोर परिवेष्ठनमें इस प्रकार घेर रखा है कि अपरिसीम नभमंडल भी ससीम हो गया है। महीनों बीत गये पर निर्मुक्त भावसे रात्रिके आकाशका दर्शन कर ही नहीं सका हूँ। यह कोठरी सूर्यास्तसे लेकर सूर्योदय तक दुर्दान्त कृत्याकी भाँति मुझे बलात् अपने जबड़ोंके भीतर रखती है। आज खुले आकाशका दर्शन करनेके लिए तरस उठता हूँ। वे लोग कैदीके हृदय और उसकी भावनाकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकते जिन्हें इस जीवनका अनुभव नही है।

मुझे तो कुछ ही महीने बीते है पर यहाँ ऐसे प्राणी है जिनका यौवन समाप्त होनेको आया, जिनका यौवन और बुढ़ापा सब बीत गया पर जो धवल ज्योत्स्नासे विशुभ्र हुए दिगन्त तथा अंधकारावृत अनन्त आकाशके आलोकित गवाक्षोंके स्वरूपको युग बीत गया देख ही नहीं पाये हैं। वे मानो उसे भूल गये है। मै तो फिर भी अपने झरोखेसे उसकी झाँकी बहुधा कर लिया करता हूँ। जेलका जीवन इतना नीरस और शून्य होता है कि उसे सरस बनानेके लिए हृदयमें विशेप प्रकारका बल संचय करना पड़ता है। कल्पना और भावुकताकी शरण न लो तो

स्पंदनहीन, अचेतन जड़ हो जानेमें विलंब नहीं लग सकता। महीनोंसे एक स्थानका वास, चारों ओरकी ऊँची प्राचीरें! छोटीसी कोठरी, थोड़ेसे साथी जिनके साथ २४ घंटेका निवास। वही कठघरा, वही झरोखा, वही पेड़, वही आदमी, वही साथी! वही घृणा तथा क्षोभ उत्पन्न करनेवाली बैरकें। बैरकोंकी इमारतका क्या वर्णन करूँ। तुम्हें कैसे बताऊँ कि उसकी शकल कैसी है? पूरब-पच्छिम या उत्तर-दक्खिन एक लंबी सी इमारत! मालगाड़ीके डब्बे तुमने देखे होंगे जिनमें जानवर वगैरह एक साथ एक स्थानसे दूसरे स्थान भेजे जाते हैं। कल्पना कर लो कि वैसे ही डिब्बोंकी लम्बी कतार परस्पर जुड़ी हुई रेलकी पटरी पर खड़ी है। जो उसकी शकल होगी वही शकल बैरकोंकी होती है। बे-सिर-पैरकी ऊँटपटाँग इमारत! प्रति क्षण वहीं रहना और महीनों रहना। जो साथ हैं वे महीनोंसे प्रति क्षण साथ हैं। न कोई नवीनता है, न सनसनी, न नया कार्यक्रम न आयोजन। वही समयसे बंद होना, खुलना, खाना, पीना, सोना और पड़े रहना। इस जीवनमें रस लानेका एक मात्र उपाय है पुस्तकोंकी शरण लेना। लेखनी हो, पुस्तक हो, सरस्वतीके आराधनका अभ्यास हो तो काल-प्रवाह तीव्र वेगसे होता प्रतीत होता है। इस बार इसकी भी व्यवस्था नहीं है। फिर समय कैसे कटे? मैंने तो किसी प्रकार कुछ सामान जुटा लिये हैं। इन पंक्तियोंको लिखता जाता हूँ उसी साधनके बल पर और लिखना इस जीवनका सबसे बड़ा आशीर्वाद है।

कोठरी साफ करता हूँ, कपड़े धोता हूँ। माला मेरे पास है जो बहुत से समयका भक्षण कर जाती है। जितना सो सकता हूँ सोता हूँ और बैरकके सामनेकी थोड़ीसी खुली जगहमें कोल्हूके बैलकी भाँति सुबह-शाम चक्कर काट लेता हूँ। कुछ समय मित्रोंसे गप करनेमें भी विताता हूँ यद्यपि कहने-सुनने के लिए अब कोई नयी बात नहीं बची है। यह सब करते हुए जो समय बच जाता है उसे रात्रिके अंधकारदर्शनमें बिता देता हूँ। वस्तुतः यह समय सबसे अधिक रोचक और आकर्षक होता है। बंधनोंसे बद्ध इस स्थूल भौतिक शरीरमें मनकी सत्ता कितनी उपयोगी है इसका पता जैसा यहाँ मिला वैसा पहले कभी नहीं मिला था। उसे मैं उड़ा देता हूँ और उसकी उड़ानको अबाध हो जाने देता हूँ। स्वरूप-विहीन इस पक्षीकी गति अतुलनीय है। सोचते ही क्षणमात्रमें वह इन समस्त बंधनों और चट्टान सी खड़ी दुर्लंघ्य दीवारोंकी अवहेलना करते हुए न जाने कहाँसे कहाँ पहुँच जाता है। जगतकी कोई भौतिक शक्ति नहीं है जो उसके मार्गका अवरोधन कर सके। सारी पहरेदारी और कानून-कायदे तथा प्रचंड बलशील सरकारकी शक्ति घटी रह जाती है। वह निःसीम शून्यकी परिक्रमा कर आता है, अतीतका पट खोल कर देख आता है, वर्तमानका निरीक्षण कर आता है, और धुँधले भविष्यमें भी झाँक आता है। मेरे मधुर भावों और कोमल कल्पनाओंको कुछ क्षण के लिए सप्राण करके इस जीवनमें रसका संचार कर देता है। मुझे लिये दिये तुम तक

पहुँच जाता है। बहुधा मेरी स्मृतिके अंचलसे ढँकी तुम्हारी दिवंगता माको न जाने किस अदृश्य प्रदेशसे ढूँढ़ लाकर सामने खड़ा कर देता है। अपने अपूर्व पंखोपर बिठा कर मुझे न जाने कहाँ कहाँ तक घुमा लाता है। उस क्षणमें भला कुत्सित लोहेके जँगले और जड़वत् जीवनका मान कहाँ रह सकता है ? पर जहाँ वह समस्त जगतको छान डालता है वहीं कभी कभी अंतर्मुख होकर मेरे अंतस्तलमें भी प्रवेश कर जाता है। फिर तो उसका तमाशा देखते ही बनता है।

उस समय मेरे लिए न केवल जेल और जंगले तथा जीवन-का अस्तित्व लुप्त हुआ सा प्रतीत होता है बल्कि समस्त जगत भी जैसे अपनी सत्ता खो बैठता है। वह भीतर मथनी लेकर प्रचंड प्रमंथन करता है और जिस प्रकार देव तथा दैत्योंने क्षीर सागरको मथकर अनेक परस्पर विरोधी गुणोंके रत्न ढूँढ निकाले थे वैसे ही वह भी मेरे तल प्रदेशसे अनमोल संपदाकी ढेरी लाकर मेरे सामने बिखेर देता है। मै जानता हूँ कि मेरी यह संपत्ति बिल्कुल निजी है। उसपर न किसी दूसरेका अधिकार है, न कोई उसका उपयोग कर सकता है और न किसीको उसकी चिंता हो सकती है। मेरे सिवा किसी दूसरेकी दृष्टिमें न उसका कोई मूल्य हो सकता है और न किसीको उससे दिलचस्पी ! पर मेरे लिए तो वह सब कुछ है। अपना तहखाना देखकर मैं स्वयं ही स्तब्ध हो जाता हूँ। उसमें देखता हूँ तो पाता हूँ अतृप्तिके जलते अंगारे जो एक प्रकारके विचित्र अभावकी अनुभूति करते हैं।

न जाने कैसी शून्यताका आभास सा मिलता है। इच्छाएँ सुलगती दिखाई देती हैं और अपूर्तिके कारण आहका धुंवा उठता स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। सब मिलकर अद्भुत अन्तर्ज्वालाकी सृष्टि करते हैं। इस दाहकी वेदना ही एक प्रकारके विरागका प्रजनन करती है। पर मैं धोखेमें नहीं पड़ता। स्पष्ट देखता हूँ कि यह विराग सहज विरक्ति नहीं है पर अनुरक्तिका ही चरम विंदु है। अतृप्ति और अभावके गर्भसे उद्भूत विरक्तिकी विसात-ही क्या है? हृदय यदि इन वासनाओंको ही अपनी संपत्ति बनाये होता तो शायद मनुष्य अपनी इस विभूतिको पाते ही जलकर भस्म हो जाता। कदाचित उस समय उसके लिए अपनी संपत्तिपर प्रसन्न होनेका कोई कारण न होता। पर इसके सिवा उसका अंतरतम प्रदेश ऐसे रत्नोंकी भी खान है जो अपने शीतल अस्तित्वसे इस तापका शमन करते रहते हैं। देखता हूँ कि कहीं सत्वका, शिवका और सौंदर्यका भी निवास है। ये ही जीवनका मूल्यांकन करनेकी कसौटी हैं। जीवन इन्हींके आधारपर स्थापित आदर्शोंको प्राप्त करनेके लिए अभिप्रेत है। अतृप्ति और अभावकी वेदना सहन करते हुए भी मनुष्यके हृदयका एक अंश उनके द्वारा आकृष्ट है।

देखता हूँ कि वह मन इन तमाम रहस्योंको सामने लाकर ऐसे खोल देता है जैसे कोई उलझी हुई ग्रंथि खोल दे। मनको अंतरमुख होने दे, फिर देखे उसकी लीलाको। अपनेही स्वरूपका ऐसा स्पष्ट प्रतिविंव प्रतिचित्रित करनेका आयना कदाचित

जगतीमें दूसरा नसीब नहीं हो सकता। निःशब्द रजनीके अंधकार-दर्शनका अवसर इसी कारण मुझे आकर्षक प्रतीत होता है। अंधकारके इस विशेष रूप और गुणका आभास यहाँसे बाहर पहले कभी नहीं मिला था। अबतक तो यही समझता था कि प्रकाशके अभावका नाम ही अंधकार है। पर अब ऐसा लगता है मानो अंधकारका अपना स्वतंत्र रूप है। हृदय स्पष्ट ही उसके भारका अनुभव करता है। उसे देखते देखते ऐसा मालूम होने लगता है कि उसका एक प्रकारका बोझ मनपर पड़ रहा है। बोझ ही नहीं बल्कि वह अपने रोब, अपने दबदबे और अपनी महत्ताका अनुभव करने लगता है। मन निश्चल और एकाग्र हो जाता है, व्यक्ति अपना अस्तित्व खोकर उसीमें लय होता दिखाई देता है। अनंत जलनिधिको देखकर अथवा सनातन हिमसे ढँकी उत्तुंग गिरिशिखाको देखकर हृदयपर उसकी महत्ताका जो अद्भुत प्रभाव होता है कुछ वैसा ही अनुभव रात्रिके इस गंभीर अंधकारका दर्शन करनेपर होता है।

बस इसी प्रकार जीवनके क्षण बीतते चले जा रहे हैं। कहाँ जा रहे है पता नहीं पर मैं कालकी हत्या करता जा रहा हूँ। इसी समय धीरे-धीरे मंद समीर बह चला है। भोर होनेके पूर्व अंधकार कुछ और भी प्रगाढ़ हो गया है। पवनका वह डोलना अजब सुहावना लगता है। सामनेके वृक्षोंकी पत्तियाँ धीरे-धीरे हिलने लगी है। ऐसा मालूम हो रहा है मानो रु रजनी दबेपांव किसीको ढूँढनेके लिए निकल पड़ी हो।

प्रकार वैठे घटों वीत गये, यकायक वैठककी टिमटिमाती हुई लालटेनकी ओर ध्यान गया। सोचा उसका कुछ उपयोग करूँ और जो विचार लहरियाँ उठती और विलीन होती रही है उन्हें तुम्हारे लिए लिख डालूँ। इसे समाप्त करते करते प्राचीमें ऊषाकी अरुणाभा उदय होती दिखाई दी। जगतमें जीवन जगता नजर आ रहा है। फलतः रात भर श्रम करती हुई लेखनीको अव विश्राम करने देता हूँ।

तुम्हारा

कमलापति

८

नैनी सेण्ट्रल जेल,

ता०·· ··· ··

प्रिय लालजी !

आज जेलमें होलीका उत्सव मनाया जा रहा है। मेरे कानोंमें अभी अभी मंद किन्तु उल्लास भारी स्वर लहरी टकरायी है जो कहीं पासके बैरकसे प्रवाहित हो रही है। इन कैदियोंके जीवनमें आनन्द, सुख और संतोषके लिए स्थान कहाँ है? जो पशुओंकी तरह पीसे जाते हैं, जो समाजसे उपेक्षित है, जिनके लिए जगतमें कहीं सम्मानपूर्वक खड़ा होनेका स्थान नहीं, जिनका भविष्य अंधकारमें है और जिनमेंसे बहुतोंके जीवनके अनेक वर्ष यहीं समाधिस्थ हो गये और जिनकी सूखी हुई हड्डियाँ और चिचुके चाम भी संभवतः यहीं गलपच जायँगे, उनके लिए कहाँ है बसंत और कहाँ है सावनका मेघगर्जन?

यहाँ ऐसे प्राणी हैं जिनकी सारी जवानी इसीमें कट गयी, बुढ़ापा यहीं आ गया और अब मौत भी संभवतः यहीं आकर उन्हें बंधन मुक्त करेगी। ऐसे लोगोंकी संख्या भी बहुत है जिन्हें यह भी पता नहीं कि उनके घरकी क्या दशा है, अपने जिन बच्चोंको वे छोड़ आये थे वे अब कैसे है। उनके घरवाले भी उन्हें भूल चुके हैं। वे यदि आज कहीं छूट कर जायँ और अपने सौभाग्यसे अपने बेटोंसे मिलें और अपनी बीबीके सामने खड़े हों तो शायद न बेटा बापको पहिचानेगा और न बीबी अपने मियाँको। क्या कभी कोई इसकी कल्पना भी कर सकता है कि इनके हृदयमें भी रसका संचार होना संभव है? क्या होली और क्या दीवाली किसीमें यह सामर्थ्य कहाँ हो सकती है कि इनके हृदयके टूटे हुए तारोंको जोड़कर पुनः झंकृत कर दे?

पर लीलामयकी महानटी प्रकृतिने मनुष्यको विचित्र प्राणी बनाया है। देखता हूँ कि मानवमें सुख-दुखमें सामंजस्य स्थापित कर लेनेकी अद्भुत प्रतिभा होती है। परिस्थिति उपस्थित होनेपर किस सरलताके साथ वह अपनेको उसके अनुकूल बना लेता है। उसके हृदयमें स्वभावतः कितनी कला, कितना संतुलन और कितना धैर्य भरा पड़ा है। कदाचित् मनुष्यमें यदि इसकी क्षमता न होती तो वह एक क्षणके लिए भी जीवन धारण करनेमें समर्थ न होता। मुझे तो ऐसा लगता है कि जगती अनन्त दुःख और वेदनासे ही परिपूर्ण है। प्रबल वेगवान महान काल-नदके स्तरपर बुलबुलेके समान अकस्मात प्रकट हुए इस जीवनके अस्थायी

अस्तित्वपर जरा ऊँचे उठकर दृष्टिपात करता हूँ तो सोचने लगता हूँ कि उसके कितने क्षण सुख और शान्तिमें बीते है। मै तो यदि खुर्दबीन भी लेकर खोजनेकी चेष्टा करता हूँ तो मुझे सुख, आनन्द और तृप्ति नामका पदार्थ कहीं ढूँढ़े भी मिलता दिखाई नहीं देता। छोटेसे इस जीवनका अधिकतर भाग वेदना और पीड़ामें ही डूबा दिखाई देता है। हाँ, सुखके क्षण कभी कभी आ जाते है जो बिजलीकी भाँति चमककर अंधकाराच्छन्न पथपर आलोककी आभा फेककर मानो लुप्त हो जाते है। वह सुख नश्वर होता है, क्षणिक होता है पर वे क्षण सत्य होते हैं जो जीवनमें अपनी अमिट स्मृति छोड़ जाते है। यही स्मृति जीवनकी शक्तिका स्रोत होता है। यही स्मृति निराशामें आशा, अंधकारमें प्रकाश और मृत्यु तथा विनाशमें जीवन तथा निर्माणकी रेखा बनी रहती है।

मानव स्वभावकी यह विशेषता उसकी सबसे बड़ी विभूति है। उसीके बलपर भूख और यातनासे पीड़ित, किसी सुदूर और उपेक्षित गाँवकी झोपड़ीमें पड़ा हुआ किसान जब दिन भर परिश्रम करनेके बाद सायंकाल अपने बालबच्चोंमें आता है और अपने हुक्केकी निगाली मुँहमें डालकर गुड़गुड़ शब्द करते हुए हृदयकी आह धुँयेके साथ बाहर निकालता है तब उसीमें उस सुख और तृप्तिका अनुभव करता है जो उसे दूसरे दिन पुनः ठोकर खानेकी शक्ति प्रदान करता है! यही विशेषता मनुष्यको जंगलमें भी मंगल मनानेका उत्साह प्रदान करती है।

किसका जीवन है जो दुःखोंसे आकीर्ण न हो, समाजका कौनसा अंग है जो अतृप्ति और अभावका अनुभव न करता हो? फिर भी मनुष्यको इसी जीवन और इसी जगतसे इतना मोह होता है! चलते हुए पारेके बिखरे कनोंके समान छिटके हुए सुखके क्षणोंको बटोर लेनेके असंभव प्रयासमें जीवन कितने दुख, कितनी वेदना और कितनी यातनाओंका भार सहन करनेके लिए तैयार हो जाता है, यह देखकर क्या आश्चर्य नहीं होता? पर आश्चर्य-मयी तो यह दुनिया है ही!

फलतः कैदियोंको होलीके उत्साहमें मस्त देख रहा हूँ। उन्होंने डफली बनायी है, घुँघरू बनाये है और फटे पुराने चिथड़ोंको एकत्र कर उन्हें रँगा है। अपनी बैरकोंसे बाहर निकल कर वे स्वाँग रच रहे हैं, फगुआ गा रहे हैं और कोई कोई घुँघरू पहिन कर नाच रहे है। इन अभागे बंदियोंका उल्लास और उन्माद दर्शनीय है। स्वतंत्र वायु और निर्मुक्त अनन्त आकाशसे भी वंचित हो कर ये जीवनको कुछ क्षणके लिए मोहक और आक-र्षक बनानेमें सफल हुए हैं। आज होली न आयी होती तो इन्हें इतना भी नसीब न हुआ होता। त्योहारोंकी ऐसी उपयोगिताका पहले कभी आभास भी मुझे नहीं मिला था। होलीके साथ न जाने कितना इतिहास जुड़ा हुआ है? मैंने कहीं पढ़ा था कि हजारों वर्ष पूर्व वैदिक युगमें आर्य बड़े उत्साह और धूमधामसे वसंतोत्सव मनाया करते थे। इन उत्सवों को 'समय' कहा जाता था जिसका उल्लेख और वर्णन वेदोंमें मिलता है। खेल, कूद,

नाच-रंग, नाटक, घुड़दौड़, रथोकी दौड़ आदि तरह तरहके उत्सवोमें स्त्री-पुरुष सब भाग लेते, दिन-दिन, रात-रात खेल तमाशे हुआ करते और कई दिनो तक होते रहते। वेदोमें इस उत्सवके आकर्षक वर्णन मिलते हैं। पुरातन आर्योमें स्त्रियोको बड़ी स्वतन्त्रता थी। उस समय युवती कन्या स्वयं अपने पतिका वरण कर लेती थी। कहते है, इन उत्सवोमे ऐसे स्वयवर बहुत होते थे। लड़के-लड़की परस्पर मिलते और उनमें से जो विवाह-बंधनमें आबद्ध होना चाहते उनके माता-पिता उनकी इच्छाके अनुसार वही कर देते। 'समनोत्सवो'की यही बड़ी भारी उपयोगिता थी। न जाने कितनोके जीवन और हृदय-का संमिलन करनेका पुण्य इस 'समन'को प्राप्त हुआ होगा।

हमारा होलिकोत्सव शायद उस प्राचीन समनोत्सवका ही विकसित रूप है। हजारो वर्षोसे होनेवाले इस उत्सवके साथ न जाने कितनोके हृदयका उल्लास, उनकी कामना, उनकी मधुर कल्पना और उनकी भावुकता मिली हुई है। न जाने कितनोके जीवनमें इसने किसी कोमल स्मृतिकी वह चिनगारी जला कर छोड़ दी है जो अपनी अखड ज्योतिसे उसे सतत दीप्त करती रहती है। यमुनाके तटपर मनोहर निकुंजोमें श्यामने गोपि-काओंके साथ होली खेली थी। सहस्राब्दियों पूर्व वहाँ जो रस-धारा प्रवाहित हुई थी वह आजतक सूखी नहीं और कदा-चित तबतक न सूखेगी जबतक मनुष्य मनुष्य है। उस चिरंतन रसधारका उद्गम है मनुष्यका हृदय और उसकी अनुभूतियाँ जो

आज भी श्यामके होलिकोत्सवकी गाथामें अपने ही प्रतिबिंबका दर्शन करता है। होलीकी यह महत्ता तो मै समझता था पर आज उसकी जो उपयोगिता दिखाई दी उसकी कल्पना भी पहले कभी नहीं की थी। इन आबद्ध प्राणियोंको थोड़ी देरके लिए उसने बंधन मुक्त करके अपनी सार्थकता सिद्ध कर दी है। मेरी आँखोंके सामने मैदानमें उन्होंने धूम मचा रखी है। मालूम होता है कि वेगसे बहती नदीका बाँध जैसे टूट गया हो। उनके गानमें न वेदनाका राग है और न नृत्य और अभिनयमें उदासीनताकी काली छाया। बंधनयुक्त जीवनमें कल्पित स्वतंत्रताका यह क्षण क्या उनके लिए सत्य नही है? कौन उसे असत्य कहनेका साहस करेगा? फिर कैदियोका झूमड़ घूम-घूम कर इस सत्यासत्य मिश्रित जीवनका उपभोग क्यो न करे?

पर कैदियोंके इस प्रदर्शनका दर्शन करनेमें मै अपनेको भूल गया। मैने आज महीनों बाद लेखनी उठायी थी। होलीने प्रातः-कालसे ही तुम लोगोंकी ओर मुझे आकृष्ट कर रखा है। आज तुम लोगोका उत्साह, विनोद और क्रीड़ा अपनी सीमा पार कर जाती थी। सब बच्चे मिलजुलकर जो धूम मचाते थे, जो रंगबाजी और हल्लागुल्ला होता था वह यहाँ बैठे-बैठे याद कर रहा हूँ। उस समय तुम लोगोंका उत्पात देखकर झुंझलाता था, उलझ पड़ता था और अकसर डाँट भी सुना देता था। आज कहीं हृदयके कोनेमें उसी उत्पात और होहल्लेको देखने और सुननेकी टीस सी हो रही है। पर टीसका समाधान करनेका उपचार तो

मैंने खोज ही निकाला है। अपने कागजके चिथड़े और टूटी हुई कलम उठायी और बैठ गया। महीनोंसे कुछ लिखा नहीं था। दूसरी घटनाएँ मनकी धाराको दूसरी ओर खींच ले गयीं थीं। एक दिन बैठे-बैठे सुनाई पड़ा कि गांधीजीने इक्कीस दिनका उपवास आरंभ कर दिया है। समाचार क्या था मानो अकस्मात वज्रपात हुआ था। सैकड़ोंकी संख्यामें बद राजबंदी ऐसे स्तब्ध हो गये मानो उन्हें काठ मार गया हो। फिर तो १० फरवरीसे ६ मार्च तकका समय ऐसे कटा कि उसका वर्णन करना कठिन है। भयावनी आशका और भीषण विक्षोभके दिन थे। हर क्षण यही भय रहता था कि कही अशुभ समाचार सुननेको न मिल जाय। मनकी गतिको क्या कहूँ ? एक ओर समाचार सुननेमें त्रास होता था, इच्छा होती थी कि कोई भी संवाद न आवे तभी अच्छा और दूसरी ओर प्रतिक्षण यही कामना रहती थी कि कुछ समाचार मिले। अद्भुत अतर्द्वन्द्व था। विचित्र खींचातानी और कशमकश थी।

ब्रिटेनकी साम्राज्यवादिनी सरकारकी निष्ठुरता हृदयमें आग लगाये हुए थी। अपनी असह्यावस्था झुंझलाहट पैदा कर रही थी और इस महान देशके करोड़ो नर-नारियोंकी नपुंसकता लज्जाका उद्रेक कर रही थी। हम लोग सोचते कि गांधीजी विकट सकटमें फँस गये। वे उन लोगोंमें है जो अपनी प्रतिज्ञासे डिगना नहीं जानते चाहे शरीरके टुकड़े टुकड़े क्यो न उड़ जायें। उनमें विदेहत्वका आदर्श सजीव रूपमें मूर्तमान हो चुका है।

आदर्श और सत्यके लिए उस व्यक्तिकी दृष्टिमें न जीवनका कोई मूल्य है और न जगतका ! पर दूसरी ओर स्वार्थमें अंधे हुए कठोरहृदय साम्राज्यवादियोंकी सत्ता देखी जिनमें नर-रक्तपान करते-करते मनुष्यता नामके किसी पदार्थकी छाया भी नहीं रह गयी है। भय होता, भय नहीं विश्वास था, कि यदि कहीं वह अशिव मुहूर्त आ ही गया जब गांधीजीका भौतिक देह इस तपके बोझको सहन करनेमें असमर्थ होता दिखाई देगा तो उस समय भी वे मानवताकी इस विभूति और पृथ्वीके इस अमूल्य रत्नको नष्ट कर देनेमें आगापीछा न करेंगे। आखिर वे भी तो मनुष्य ही थे जिन्होंने ईसाके तपःपूत शरीरमें लोहेकी कील ठोककर प्रसन्नता और संतोष प्राप्त किया था। यदि इतिहास उसीकी पुनरावृत्ति करे तो उसे कौन रोक सकेगा ?

हम अनुभव कर रहे थे कि आज गांधी नहीं मर रहा है बल्कि उसके साथ वह आदर्श और वह सत्य मर रहा है जिसका प्रतिनिधित्व वह कर रहा है और जिसका दिव्य संदेश लेकर यह देवदूत अवनिपर अवतीर्ण हुआ है। प्रश्न उठता कि क्या मानवके चरम कल्याणकी इच्छा और उसके लिए चेष्टा करना ही कोई जघन्य अपराध है जिसके लिए इतना भयानक दंड मिल रहा है। यदि मानव-समाजको संहारसे, विनाशसे और पापसे बचाना है तो उसकी समस्त व्यवस्थाको अहिंसाके आधार पर स्थापित करनेका आयोजन करना ही होगा। लोग कह देते हैं कि अहिंसा मानव प्रवृत्तिके प्रतिकूल है और कभी हिंसाका

उन्मूलन संभव नही है। वे इतिहासको साक्षी रूपमें उद्धृत करते है। पर मै समझता हूँ कि ऐसे लोग उसी इतिहासको गलत ढगसे देखते है। वे यह नही देखते कि विकास-पथका पथिक मानव सदा आरभिक प्रवृत्तियोसे युद्ध करता, उनका सयम और नियत्रण करता ही आगे बढ़ता चला गया है। उसकी यही साधना सस्कृतियोको जन्म देती रही है। विचार करो तो देखोगे कि मानवताका इतिहास इस परम साधनाका ही इतिहास है। सहज प्रवृत्तियोका उन्मूलन मनुष्य नही कर सकता पर उन प्रवृत्तियोंको व्यवस्थित करना, उनपर कलाका रंग चढ़ाना, उन्हें नियंत्रित करना, उनकी धाराको अधिक उन्नत पथको ओर मोड़ना और उसे सुसंयमित करना न केवल उसकी शक्तिमें है बल्कि इसीका प्रयास वह सदासे करता रहा है। समाजकी रचना इसी प्रयासका परिणाम है। संस्कृतियोका विकास इसी तपस्याका फल है।

फलतः हिसा और स्वार्थका उन्मूलन भले ही न हो पर उस दिशाकी ओर तो मनुष्य बढ़ता ही जायगा। जैसे हिसा उसकी सहज प्रवृत्ति है वैसे ही उसके सयम करनेकी प्रवृत्ति भी प्रकृतिने सहज ही उसे प्रदान की है। मानवका यह द्वन्द्वात्मक स्वरूप ही उसकी विशेषता है। गांधी ऐसा व्यक्ति उसीकी ओर संकेत करता है। आज उसकी असफलता न केवल भारतके लिए बल्कि समस्त मानव समाजके लिए अभिशापके सदृश होगी। वह असफलता गांधीकी असफलता नहीं बल्कि मानवताकी पुनीत साधनाकी असफलता होगी। वह होगा उसके विकास पथका

अवरोधन जो उसकी गतिको रुद्ध कर देगा। फिर तो गतिहीन मानव न केवल अपने प्रयोजनसे भ्रष्ट होगा बल्कि विनाशके मुखमें समा जायगा। हम इसी दृष्टिसे इस समस्यापर विचार कर रहे थे और निराश हो रहे थे। उन इक्कीस दिनोंकी अपनी आंतरिक वेदनाका क्या वर्णन करें। 'आज गांधीकी हालत खराब है', डाक्टर इनके जीवनसे निराश हो रहे हैं' आदि समाचार सुन सुनकर कलेजा फट जाता। सोचता कि यदि गांधी मरा तो उसके शव पर खड़ी भारतकी पराधीनता उस भयावनी विभीषिकाका रूप ग्रहण करेगी जो ब्रिटेन और भारतके भविष्यको सदाके लिए नहीं तो कमसे कम शताब्दियोंके लिए अंधकाराच्छन्न कर देगी। पर इस असहाय स्थितिमें हम कर ही क्या सकते थे?

एक विश्वास था गांधीजीकी तपस्यामें और दूसरा भरोसा था भगवानका। बहुतोंने व्रत किया, बहुतोंने अपने ढंगसे अपने भगवानकी शरण ली। बहुतोंने आँसुओंकी धारा प्रवाहित कर हृदयका दाह मिटाया। सारे राष्ट्रकी सामूहिक इच्छा-शक्तिने आखिर उन्हें बचा ही लिया। तीन सप्ताहका वह बोझ समस्त स्नायुतंतुओंको विघटित कर देनेका कारण हुआ। फलतः न कुछ लिखना चाहता था, न पढ़ना और न सिवाय उन बातोंके कुछ सोचना। इस प्रकार आज कई सप्ताह बाद पुनः लिखनेकी इच्छा हुई। इस होलीने ही उस इच्छाको जन्म दिया। पर जहाँ लिखनेकी इच्छा हुई वहीं पुनः पुराना प्रश्न मनमें उठ खड़ा हुआ। मै बैठे-बैठे यहाँ कागजपर कागज रंगता जा रहा

हूँ और इन पत्रोंका ढेर लगाता जा रहा हूँ पर मनमें आता है कि क्या इसका कुछ उपयोग भी है? क्या कभी ये पत्र यहाँसे बाहर निकलकर तुम तक पहुँच भी सकेगे? यदि पहुँच भी जायँ तो इनसे क्या तुम्हारा कुछ लाभ भी होगा? इनसे तुम्हारा और कुछ नही तो क्या मनोरजन भी संभव है? ये प्रश्न जब उठते हैं तब मन बैठ जाता है, सोचने लगता हूँ कि व्यर्थ ही क्यो कलम घिसू? इन पत्रोमें कोई तरतीब या व्यवस्था तो है नहीं, मेरे एकाकी और जेलके नीरस जीवनमें उठनेवाले विचार ही तो पंक्ति-बद्ध हैं। फिर इनसे तुम्हारा लाभ ही क्या होगा? आशा-निराशा, सुख और दुखके अनेक घात-प्रतिघातसे जीवन बना करता है। किसीपर इन पंक्तियोका कुछ असर होता है और किसीपर कुछ दूसरा! मै जानता हूँ कि मेरे जीवनकी अनेक घटनाओने मुझे किस साँचेमें ढाल दिया है। जगतके प्रति मेरे दृष्टिकोणमें कुछ उदासीनता और कुछ विरक्ति सी आ गयी है। ऐसा ज्ञात होता है कि मै धीरे धीरे मनसे और प्रवृत्तिसे कुछ अकेला सा हो गया हूँ। जिनके जीवनका मूल एकाकित्वकी यह प्रवृत्ति होती है उनके लिए कुछ विशेष उपादानोंकी आवश्यक्ता होती है। मुझे ऐसा लगता है कि वे उपादान यदि उस व्यक्तिको प्राप्त न हो तो उसका जीवन कुछ सूखा सा, कुछ प्रेरणाहीन हो जाता है। उसे अपना ही जीवन तथा जगत भी कुछ शून्य सा, आकर्षणहीन सा दिखाई देने लगता है। मेरे सबंधमें वे उपादान क्या है, यह जाननेकी न तुम्हें जरूरत है और न मुझे इस संबन्धमें कुछ कहना

ही है। मैंने इतनी बातोंका उल्लेख भी केवल यह बतानेके लिए किया है कि इन पृष्ठोंमें जो लिखा है उसपर मेरे अंतःकरणकी स्थिति और उसके रंगका पुट चढ़ा हुआ है। अपनी ओर देखते हुए, यहाँके शान्त और एकांत वातावरणमें बैठकर, भावोंको जब उन्मुक्त बहने देता हूँ तब वे अपने स्वाभाविक मार्गका अनुगमन करते है। जीवन जिस साँचेमें ढल गया है तथा जिन परिस्थितियो, अवस्थाओं और अनुभूतियोंका वह परिणाम है उनकी प्रतिच्छाया ही तो भावलोकपर प्रभाव डालती रहती है। फलतः उसी प्रकारके विचार लहराते है और सहज ही जब उनकी अभिव्यक्ति होती है तब उसी रूपमें प्रकट होते है।

इस स्थितिमें आज उनका विशेष मूल्य तुम्हारे लिए नहीं हो सकता, यह अच्छी तरह जानता हूँ। पर उन विचारोंमें किसीकी अनुभूति घुली मिली है। किसी दिन वे तुम्हारी समझमें अवश्य आवेगे यह भी मेरा विश्वास है। यही जब मनमें आता है तब पुनः लिखनेकी इच्छा होने लगती है और मनमें भाव उठता है कि यह बिलकुल अकारथ और व्यर्थ नहीं है। फिर मुझे जो संतोष हो जाता है और मेरा समय कट जाता है वह ऊपरसे। एक बात और लिख दूं। मै समझता हूँ कि इन पत्रोको लिखनेके लिए मैंने तुम्हारा संबोधन अवश्य किया है पर जब अंतरमें प्रवेश करके देखता हूँ तब ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तवमें पत्र लिख रहा हूँ अपनेको ही। कदाचित मनुष्य जो भी लिखता है सब अपनेको ही लिखता है, फिर संबोधन चाहे जिसका करे।

अपनी ही भावना, अपने ही विचार, अपनी कल्पनाकी अभिव्यक्ति अपने ही लिए करता है, जिनपर उसीके अतःकरणकी छाप लगी रहती है। ऊपरसे वह चाहे जिसे अपने संमुख रख कर अपने लिखनेका पात्र बनावे पर भीतर अपने अवचेतन मनमें वह स्वयं ही आसीन रहता है। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि ये पत्र केवल तुम्हारे लिए नहीं प्रत्युत मेरे लिए भी लिखे गये हैं और हम दोनोका इससे कुछ प्रयोजन भी सिद्ध हो सकता है।

जीवनमें जो अनुभूतियाॅ मुझे हुई है और जिन समस्याओंके चक्रसे मुझे पार होना पड़ा है, वैसी अनुभूतियाँ और समस्याएॅ तुम्हारे जीवनमें भी उपस्थित हो सकती है। उनका जो प्रभाव मेरे ऊपर हुआ है वही प्रभाव तुम्हारे ऊपर भी हो सकता है। जीवनका जो स्वरूप मेरी समझमें अपने अनुभव और प्रेक्षणसे भासा है, संभव है, कुछ वैसा ही भास समय आने पर तुम्हें भी हो, पर मेरे कथनका यह तात्पर्य नहीं कि ऐसा होना अनिवार्य ही है। जगतके अनेक प्राणियोंमें जीवन विभिन्न है, उनका अलग व्यक्तित्व है और उनकी अलग-अलग अनुभूतियाॅ होती है। यह आवश्यक नहीं कि सब लोग संसारको एक ही दृष्टिकोणसे देखें। मैं तो मानता हूॅ कि जितने मुंड है उतने ही दृष्टिकोण भी हो सकते हैं और हो सकती है उतनी ही विभिन्न प्रकारकी अनुभूतियाँ। पर ऐसा होते हुए भी मेरी समझमें यह आता है कि विभिन्नतामय इस दृश्य जगतके मूलमें किसी प्रकारकी अभिन्न

धारा अवश्य प्रवाहित है जो अदृश्य होते हुए भी सबको एक-सूत्रमें पिरोये हुए है। इस दशामें संभव है मेरे भावोंमें आज नहीं तो कभी आगे चलकर तुम अपने ही भावोंकी प्रतिच्छाया देखो। जीवनमें सामने उपस्थित होनेवाली समस्याओंका जो हल मुझे सूझा है, संभव है, उन्हींसे तुम भी अपनी समस्याओंको हल कर सको। संभव है, इस प्रकार ये पंक्तिया कभी तुम्हारे लिए भी सहायक सिद्ध हों।

इस प्रकार तुम्हारे संबन्धमें विचार करते हुए आज मै तुम्हारे बहुत निकट पहुँच गया हूँ। मेरे मस्तिष्कमें विचारोंका जंगल सा उठ खड़ा हुआ है। बहुत सी बातें इसी सिलसिलेमें मनमें उठ रही है, उन्हें लिख डालना चाहता हूँ पर देखता हूँ कि पत्रका कलेवर बहुत बढ़ गया है। फलतः इसे तो यहीं समाप्त करता हूँ किन्तु दूसरेका आरंभ भी तत्काल कर दूँगा। अवश्य ही वह आरंभ कल होगा। आज उन विचारोंको लेकर ही शयन करूँगा। विश्रामके बाद समझता हूँ कि विचारोंका प्रकटीकरण भी अधिक व्यवस्थित ढंगसे हो सकेगा।

तुम्हारा

कमलापति

१

नैनी सेण्ट्रल जेल

ता०.........

प्रिय लालजी !

मैंने वचन दिया था कि दूसरे पत्रका आरंभ तत्काल ही कर दूँगा। फलतः आज पुनः बैठ गया हूँ। कल तुम्हारे संबन्धमें सोचते-सोचते मै इतना तल्लीन हो गया था कि अपने स्वरूपको भूलकर तुम्हारा ही रूप बन गया था। जब किसीका एकाग्रचितन करनेमें मन समर्थ होता है और जब किसीके ध्यानमें वह मस्त हो जाता है तब उसका अपना व्यक्तित्व उसे विस्मृत हो जाता है। उस विस्मृतिके साथ-साथ समस्त जगतका अस्तित्व भी मिटा-सा प्रतीत होता है। मनकी वह दशा एक विचित्र वस्तु है जिसका अनुभव जीवनमें कभी-कभी ही होता है। इस सम्यक ध्यान और चितनमें ध्यान करनेवाला न केवल अपने व्यक्तित्वको भूल

जाता है वल्कि कभी कभी ध्याता और ध्येय दोनोंका भेद मिट जाता है। तादात्म्य अथवा तद्रूपताकी वह स्थिति अद्भुत सुख और शान्ति तथा अनुभूतियोंकी स्थिति होती है। अवश्य इतने गहरे ध्यानके लिए ध्येय ऐसा होना चाहिये जिसके लिए प्रतिध्याताके हृदयमें प्रवल आकर्षण हो। फिर वह ध्येय चाहे कोई व्यक्ति हो अथवा देवता, कलाका उत्कृष्ट नमूना या कोई चित्र हो अथवा सुन्दर मूर्ति, प्रकृतिका कोई मोहक दृश्य हो अथवा हृदयोद्भूत कोई विचार। विचारका नाम सुनकर घवड़ाना नहीं और न उसकी आकर्षकता अथवा मोहकता और शक्तिमें संदेह करना। यह सच है कि मनुष्यकी दुनिया वहुत कुछ उसके भावों और कल्पनाओंकी दुनिया है। वह अपने विचारों और भावोंका ही तो पुतला है। कभी कभी इन्हीं विचारोंके प्रवाहमें वहते हुए वह उन्हींके ध्यानमें मस्त होकर लय हो जाता है और अपनी अलग अलग सत्ता तक खो वैठता है। यह न समझना कि विचारोंके प्रवाहमें इतना वल कहाँ हो सकता है कि आदमी उसमें डूव जाय ?

गहराईमें उतरकर देखोगे तो पाओगे कि यह जीवन और यह दुनिया मनुष्यके लिए वहुत कुछ उसके भावोंके खेल पर ही ठहरी है। मनुष्य अपने व्यक्तिगत और सामाजिक संवंधोंकी रचना करता है, दुःख-मूलक और सुख-मूलक पदार्थोंको चुनता है, उचित और अनुचितका विवेक करता है, सदाचार मूलक नैतिक नियमों और धर्मकी कल्पनाओंको जन्म देता है, लोगों द्वारा कही गयी, लिखी गयी अथवा पुराने समयसे संस्थापित

अनेक बातोंमें से कुछको चुनकर उन्हें अपने विश्वासका रूप देकर प्रश्रय प्रदान करता है, सुंदर और असुंदरमें भेद करता है, सत्य और असत्यमें विवेचनाकी गति पैदा करता है पर इन सबके मूलमें, पूर्णरूपसे तो नही पर एक बड़ी सीमातक उसका अपना भाव ही प्रधान होता है जो उसकी आधारशिलाकी भाँति स्थित होता है। वह भाव ही तो है जो पत्थरमें प्राणप्रतिष्ठा करके उसे देवत्व प्रदान कर देता है। और वह भाव ही है जो किसीके प्रति अपने मनकी ममता और किसीके प्रति परायेपनका दुराव पैदा करके जीवन और उसके अनेक कर्त्तव्योंकी सृष्टि किया करता है। फलतः जीवनमें भावका बड़ा प्रभाव होता है, इसमें सन्देह नही। इसी भावके प्रवाहमें मनुष्य जब बहने लगता है और विचारकी तरंगोमें लहराने लगता है तब अपने अहको भूलकर कुछ देरके लिए जैसे दूसरे लोकमें पहुँच जाता है जहाँ वह स्वयं अपने विचारोका ही पूर्वरूप बन जाता है। इसी अर्थमें मै कल तुम्हारे विषयमें सोचता-सोचता तुम्हारा ही स्वरूप बन गया था।

मै अपने यौवनके पराह्नसे निकलकर थोड़ी देरके लिए उस उमरमें जा पहुँचा जिसपर उसके उदयके पूर्वकी अरुणाभाका स्निग्धप्रकाश झलकता दिखाई देता है। जिस स्थिति और अवस्थाको बहुत दिन हुए पीछे छोड़कर मै आगे बढ़ गया था उसी तुम्हारी उमरमें लहराता हुआ पहुँचा। और मै प्रसन्न हूँ कि मेरे विचार मुझे घसीट कर वहाँ ले गये, जहाँ पहुँचते ही मेरे

सामने जगतका वह स्वरूप आया जो एक नवयुवककी दृष्टिमें साधारणतः आया करता है। फिर तो मेरी मानस-मंजूषामें सुरक्षित रखे हुए जीवनके वे क्षण-कण एकके बाद दूसरे दिखाई देने लगे जो उस समय तरह तरहकी समस्याओंका रूप धारण करके मेरे सामने उठा करते थे। जीवनका संक्रान्तिकाल तरह तरहके प्रश्न, नयी-नयी उमंगों, नयी आवश्यकताओ और लालसाओं, नयी भाव-लहरियोंको न जाने किस प्रकार जन्म देता है। जगतके स्वरूपका नया बोध, फिर नयी नयी घटनाओं और उनकी अभिनव अनुभूतियाँ तथा जीवनपर अंकित होनेवाली अनेक अमिट रेखाओंको न जाने कब कहाँसे किस प्रकार उत्पन्न करके जीवनको आलोड़ित करता है तथा कभी दुःख और कभी सुख, कभी विराग और कभी अनुराग, कभी क्षोभ और कभी शान्तिका सृजन करके विचित्र समस्याओंको सामने ला खड़ा करता है। वे तमाम पुरानी बाते सिर उठा उठाकर मेरे सामने उपस्थित होने लगीं। सहसा हृदयमें तमाम स्मृतियाँ जाग उठी।

फिर तो विचार आया कि आज तुम्हारें सामने भी वही समय प्रस्तुत है और संभवतः वैसी ही समस्याएँ और प्रश्न, भावनाए और विचार लालासाएँ और प्रवृत्तियाँ आ आकर खड़ी होगी जैसी बहुधा जीवनके इस प्रहरमें खड़ी हुआ करती है। प्राणीको यौवनके रूपमें प्रकृतिने बड़ी भारी भेंट प्रदान की है जिसके लिए जीव उसका सदा ऋणी रहेगा। यौवन प्रदान करके वह प्राणीको मानो नया जीव बना देती है। यह जवानी अपने साथ-साथ

विचित्र प्रकारकी प्रवृत्तियो और परिवर्तनोंका बाढ़ लिये आती है। वर्षाकालकी नदीकी भाँति जब वह उमड़कर वह चलती है तो न किसी रुकावटको मानना चाहती है और न सीमाके बंधनो-की चिता करना चाहती है। उसका उफान आते ही जीव-जगतमें फिर चाहे वह मनुष्य हो अथवा पशु, पक्षी हो वा पेड़-पौधा सब विचित्र परिवर्तनके प्रभावसे प्रभावित होते है। यह परि-वर्तन भी चतुर्मुख और सर्वांगीण होता है। शरीरके विभिन्न अंगोंमें, स्वभावमें, भावनाओंमें, वृत्ति और दृष्टिकोणमें, रहन सहन और व्यवहारमे, हृदय और मस्तिष्कमें, अर्थात् जीवनके हर पहलूमें रद्दोबदल होता है। प्रकृति मानो नव जीवन प्रदान करके प्राणीका सर्वतोमुख कायापलट कर देती है। फिर इस प्रकार परिवर्तित हुआ प्राणी अपनेको, अपने आसपासको दुनिया को, नये ढगसे देखने लगता है। उसकी आवश्यकताएँ और कामनाये, सभी नया रूप ग्रहण करती हैं। नयी भाव लहरियाँ लहराती है और उसे बहा ले चलती हैं। वेगवती जलधाराकी भाँति घहराती हुई, प्रबल वेगसे, जो कुछ उसके सामने पड़े उसे अपनी चपेटमें लपेटती हुई अपने मार्गपर बढ़ती चली जाती है। उसे न अपने बाँधकी परवाह होती है और न अपने दुकूलपर उगे घास-फूल और वृक्षोकी। वह तो मदमस्त, अठलाती, और खेलती हुई, अपने करारेको भी काटकर धमाधम फैलती हुई मनमानीगतिसे दौड़ ही चली जाती है।

यह वह समय है जब मनुष्यमें उसके व्यक्तित्वका विकास होता है। उसमें अपने मनका बोध जागता है, निर्भयता और खतरा उठानेकी प्रवृत्ति पैदा होती है, आदर्शोंके लिए कष्ट उठाने और त्याग करनेकी क्षमताका उदय होता है। युवक-हृदय सहज ही भावुक होता है। उसी भावुकतासे कलाका जन्म होता है। उसीके गर्भसे कोमल कल्पनाओं और मधुर तथा उत्तम भावनाओंकी धारा बह निकलती है। वह युवक ही होता है जो ऊँचे और पवित्र सिद्धान्तोंके नामपर सर्वस्वकी बाजी लगा देता है। देशके नामपर वलि हो जानेकी पुकार युवकको ही आन्दोलित करती है, प्रेमके नामपर सुख और राजपद तकको ठोकर मार देनेकी भावना युवकको ही उत्प्रेरित करती है और राष्ट्रीय गौरवके लिए अनन्त महा समुद्रोंको आकाशमार्गसे उड़कर लाँघ जाने तथा उत्तुंग शैल-शिखरोंको अपने पादस्पर्शसे नत करनेकी सचेष्टता यौवनमें ही जागृत होती है। वही यौवन आज अपने समस्त ऐश्वर्य और विभूतिको लिए तुम्हारे सामने खड़ा है और अपनी सारी संपदा तुम्हारी झोलीमें उड़ेल देनेके लिए उत्सुक है। आज मैं भावों द्वारा उसी तुम्हारी उमरमें पहुँचकर उन तमाम अनुभूतियोंका अनुभव कर रहा हूँ जो साधारणतः तुम्हें होती होंगी। तुमारे सुख और तुारे दुख, तुम्हारी भावना और कल्पना, तुम्हारे विचार और दृष्टिकोण, तुम्हारी कठिनाइयाँ और समस्यायें क्या होंगी या हो सकती है और उनका स्वरूप क्या होगा यह मुझे रह रहकर झलक उठता है। यदि तुममें अपना कोई व्यक्तित्व

होगा तो बहुधा तुम उन व्यक्तियो और विचारोके संघर्षमें आओगे जिनसे तुम परिवेष्ठित रहते हो। दुनिया गतिशील है क्योंकि वह अनन्तकाल-प्रवाहमें बहती हुई, लुढकती और पलटा खाती हुई अपना स्वरूप बदलती रहती है और इस प्रकार अपने किसी पथपर बढ़ती चली जाती है। अकसर मनुष्यके विचार और आदर्श, उसके बंधन और व्यवहार पीछे रह जाते हैं और जगत सामूहिक रूपसे नया स्वरूप लेकर, नयी समस्याओं और आवश्यकताओं तथा प्रश्नोंको लिये-दिये आगे खड़ा दिखाई देता है। उस नवयुगसे प्रभावित नवयुवक कभी-कभी अपनेको उन व्यक्तियों और विचारोसे परिवेष्ठित पाता है जो दुनियाकी दौड़में पीछे रह गये हैं। फलतः वह अपनेको उनके विरोधमें पाता है। कभी उसके मनमें इन बातोंके विरुद्ध विद्रोहका भाव उत्पन्न हो जाता है और हृदयका अन्तर्द्वन्द्व बड़े भारी बोझकी भाँति अपने भारसे उत्पीड़ित करने लगता है।

युवकके हृदयमें समस्या उत्पन्न हो जाती है। वह ऐसी स्थितिमें क्या करे। यदि युवकमें आदर्शवादिता है, यदि उसमें सचाई है, यदि अपने विश्वासोके प्रति आस्था है और यदि उसे अपने व्यक्तित्वका बोध हो गया है तो वह स्वभावतः विरोध या उस विरोधके परिणामस्वरूप आनेवाली परेशानियोंसे घबड़ाकर चुप बैठना नहीं चाहता। पर इसके साथ ही वह प्रस्तुत परि-स्थितिसे खुली युद्ध-घोषणा करके अपने मनमाने पथपर जानेके खतरेकी भी उपेक्षा नहीं कर पाता। अजब साँसतमें उसकी जान

फंसती है। युवककी इस गुत्थीमें तरह तरहसे और गुत्थियाँ पड़ती चलती है। मुझे जीवनकी इन मंजिलोंसे पार होना पड़ा है और उन समस्याओंकी स्मृति मनके अंचलमें अब भी उज्ज्वल रूपसे अंकित है। युवकके सामने उठी समस्या उसे एक ओर परेशान करती है और दूसरी ओर उस परेशानीको बढ़ा देती है वृद्धोंकी अदूरदर्शिता और असहिष्णुता जो यौवनके अल्हड़पन और सहज स्वच्छन्द स्वरूपको समझे बिना उनके मनमें उत्पन्न हो जाती है। बड़े लोग जिनपर यौवनमें पदार्पण करनेके लिए अग्रसर हुए किशोरके योगक्षेमका भार रहता है उसके सहज और स्वाभाविक परिवर्तनसे अकारण घबरा जाते है। वे यह समझते ही नहीं कि युवकमें जिस प्रवृत्तिका उदय हो रहा है वह न कोई अस्वाभाविक बात है और न किसी अनर्थकी पूर्वसूचना। वास्तवमें वह युवककी सच्ची हस्तीकी ही द्योतक है। जिसे वे दोप समझते है वह दोष नहीं है बल्कि परिणाम है यौवनके उन तरंगोका जिसमें प्रकृति उनके जीवनको लहराती है।

उनकी समझमें नहीं आता कि यौवन महाशक्ति है जो जीवनके स्फुरण और विकासका स्रोत है। जिसे वे अनर्थ समझ रहे हैं वह वास्तवमें सबसे बड़ी विभूति है। जीवनमें सफल वही होता है जिसमें उत्प्रेरणा हो, आगे बढ़कर खतरा उठानेकी हिम्मत हो, विघ्न-बाधाओंका सामना करनेका साहस हो। जगत जीवनकी संघर्षभूमि है जिसमें सफल वही होता है जो वीर योद्धाकी भाँति अनेक और विविध घात-प्रतिघातोंका सामना

प्रसन्नतापूर्वक करनेकी क्षमता रखता है। यौवन प्राणीको इसी संग्रामके योग्य बनानेके लिए आता है। भविष्यकी सारी प्रेरणा और क्रिया-कलापकी शिक्षाका काल यही है। ऐसे महत्त्वपूर्ण अवसर पर यदि कोई विकासोन्मुख कलीकी भाँति उमड़ती हुई युवककी भावना और स्फूर्तिमयी प्रेरणाको मसलकर उसके विकासको कुंठित कर दे तो उसका जीवन निश्चयेन निकम्मा हो जायगा। हाँ, इसे अवश्य स्वीकार करना होगा कि यौवन यदि महाशक्ति है तो उसका सदुपयोग और सन्मार्ग-गमन जहाँ आशीष होगा वहीं यदि उसका दुरुपयोग हुआ अथवा वह कुमार्गकी ओर बढ़ा तो भयावह अभिशाप ही होकर रहेगा। फलतः यह कहा जाता है कि बड़े लोग इस शक्तिको उचित मार्ग पर लगानेके लिए ही असहिष्णु अथवा कठोर बनते हैं; पर वास्तवमें यह प्रकार अवांच्छनीय परिणामोका सृजन करती है और जिस लक्षको लेकर बर्ता जाता है उससे बिल्कुल विपरीत फल प्रदान करता है। युवक जिस मानसिक स्थितिमें रहता है और उसके सामने जो समस्याएँ होती हैं वह उनका हल खोजना चाहता है। ऐसे महत्त्वपूर्ण अवसर पर उसे आवश्यकता होती है सहायककी और ऐसे सहायककी जो उसके हृदयको स्पर्श कर सके। सहायक ऐसा हो जो उसकी मानसिक स्थितिको समझे, उसकी समस्याका अनुभव करे, उसके प्रति सहिष्णुता और सहनशीलताका भाव प्रकट करे तथा उसके हृदयकी एक-एक गुत्थीको धैर्यके साथ खोलनेके लिए तैयार रहे। युवक

चाहता है ऐसा आश्रय जहाँ वह विश्वासके साथ अपना हृदय-पट खोलकर रख दे, अपनी लालसा और आकांक्षाका स्वरूप प्रकट कर दे। जहाँ से उसे सहायता, सहानुभूति और स्नेह मिल सके।

पर दुर्भाग्यसे उसे जो कुछ मिलता है इसके विपरीत ही मिलता है। वह पाता है झिड़कियाँ और कठोर आलोचना तथा फटकार! वह देखता है कि बड़े लोग उस पर नाक-भौंह सिकोड़ते हैं, हर क्षण उसके नाम पर रोते है और उसे उदारतापूर्वक नालायकीका सर्टीफिकेट देते नहीं अघाते। मै जानता हूँ कि ग्रहणशील युवक-हृदय इस पर रोता है। वह अपनेको असह्य पाता है और सारे जगतको अपने विरोधीके रूपमें, शत्रुके रूपमें देखने लगता है। ऐसे समय जब उसे सबसे अधिक आवश्यकता होती है स्नेह, सौहार्द्र और सहायताकी वह उपेक्षा और तिरस्कार तथा ठोकर पाकर विचलित हो जाता है। उसकी समस्याएँ जो उसके परिवर्तित जीवनके साथ-साथ उसके सामने आकर उपस्थित रहती है और उलझ जाती है। उसके हृदय पर इसका भयावह प्रभाव होता है। यदि युवक स्वभावसे दुर्बल हुआ तो सदाके लिए अपनी प्रेरणाको तिलांजलि देकर आत्मसमर्पण कर देता है। उसके जीवनका प्रसार रुक जाता है, उसकी नैसर्गिक शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, स्फुरण और प्रेरणाका अभाव हो जाता है। वह उस दयनीय पौधेकी भाँति हो जाता है जिसे पाला मार दिये होता है। सदाके लिए उसके जीवनमें वेदनाका एक राग

बजता रहता है। सदा भयभीत, त्रस्त और सभी भली-बुरी परिस्थितियोंके सामने मस्तक झुकाकर घुटने टेक देना और उसे ही दैव समझ लेना उसका स्वभाव बन जाता है।

पर युवक यदि दूसरी कोटीका हुआ, उसका अपना व्यक्तित्व हुआ तो वह परिस्थितिमें पड़कर यौवनके समस्त गुणोंको छोड़कर उसकी बुराइयाँ अपना लेता है। वह सबको अपना शत्रु समझने लगता है जिसके फलस्वरूप विघातक असंतोष और क्षोभ उसके जीवन सहचर बन जाते हैं। फिर तो उसमें उच्छृङ्खलता और उद्दंडताका विकास होने लगता है। किसीसे सहायता न पाकर और जिसका स्नेह चाहिये उसके स्नेहसे वंचित होकर वह अपनेमें एक प्रकारके मिथ्यादंभ, अहंकार और दर्पको जन्म देता है जिसके सहारे असंतुष्ट जीवनको बढ़ानेकी चेष्टा करता है। उस समय वह जगत्को तृणवत् मानता है, अपनेको ही सबसे अधिक बुद्धिमान् समझने लगता है। सभी प्रकारके बंधनोंके प्रति विद्रोह अथवा कमसे कम उपेक्षाका भाव स्वभावतः उत्पन्न हो जाता है जो उसे स्वेच्छा-चारिताकी ओर अग्रसर करता है। यह अवस्था अद्भुत दुश्चक्रकी भाँति अभागे युवकको घेर लेती है। एक ओर तो उसमें अपने संबन्धमें झूठी महत्ताकी भावना पैदा कर देती है और दूसरी ओर वह यह समझने लगता है कि सारा जगत् उसका द्रोही है। अपनी ही बुद्धिमें उसे ऐसा मूढ़ विश्वास उत्पन्न होता है कि वह यह समझने लगता है कि उसके सामने सारी दुनिया

मूर्ख है। इस स्थितिकी अंतिम सीढ़ी तब आ जाती है जब वह यह समझने लगता है कि अब उसके लिए कुछ सीखना-जानना बाकी नहीं है और वह स्वयं पूरा पंडित हो गया है। फलतः बेचारे युवकका सारा जीवन नष्ट हो जाता है। मस्तिष्कके कपाट इस प्रकार बंद हो जाते है कि उसका मानसिक और बौद्धिक विकास रुक जाता है और अपने अधूरे तथा कल्पित ज्ञान, ढंग तथा व्यवहारको अपनाकर वह सदाके लिए जीवनको दुखी बना लेता है।

यह परिणाम होता है उस असहिष्णुता, अदूरदर्शिता और कठोरताका जिसका आश्रय बड़े लोग ग्रहण कर लिया करते है। उनकी नीयत होती है युवकको सुपथगामी बनानेकी पर उसकी नैसर्गिक विशेषताओंको न समझकर मार्ग ऐसा पकड़ लिया जाता है जिसका परिणाम विपरीत होता है । मैंने बहुतसे युवकोंका जीवन इस प्रकार कंटकाकीर्ण होते देखा है। मैने देखा है वृद्धोंमें और उनके युवकोंमें इसी कारण भेद पैदा होते तथा ऐसी गहरी खाई बनते जिसने उन दोनोंके हृदयको सदाके लिए दूर कर दिया है। मैने देखा है व्यर्थकी कटुताका प्रादुर्भाव होते जिसका बुरा प्रभाव जीवन पर पड़ा है। मुझे जीवनमें ऐसे समय जब सहायताकी आवश्यकता थी, जब किसी सौहार्द्र और स्नेहकी उपयोगिता थी सौभाग्यसे ऐसे गुरुजन मिले जिन्होने उन उपादानोको भरपूर प्रदान किया। मै जानता हूँ कि मुझपर उसका कैसा सुखद और सुशील प्रभाव

हुआ है। अपने हृदयको किसीके सामने खोलकर रख देनेपर उधरसे जो सत्परामर्श, सदुपदेश और सहानुभूति तथा सम-वेदना मिलती है उसका क्या प्रभाव होता है, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। युवक-हृदय किस प्रकार उनको कृतज्ञतापूर्वक ग्रहण करता है, किस प्रकार उस सहायताके बलपर अनेक खतरों, खाइयों और भंवरोंसे पार हो जाता है, किस प्रकार उचित पथसे विचलित होने और इधर-उधर भटकनेके भयसे मुक्त होकर वह प्रसन्न होता है तथा अंतमें हृदयका यह विश्वास कि संसारमें ऐसे लोग हैं जो उसके सुख-दुःखकी चिता रखते है तथा उसकी समस्याओके प्रति उनके मनमें सहानुभूति है, किस प्रकार उसके जीवनमें रसका संचार कर देता है इसका वर्णन नही, अनुभव किया जा सकता है। ये बाते सामूहिक रूपसे उसके जीवनके विकासको प्रभावित करती है। आज जब मैने अपनेको तुम्हारी उमरमें थोड़ी देरके लिए पाया तो समझ गया कि आज तुम्हें किस चीजकी सबसे बड़ी आवश्यकता है। तुम आज जीवनके उस युगमें पहुँचे हो जिसमें नयी-नयी समस्याएँ सामने आती हैं। तुम्हारे हृदयमें ऐसी इच्छाओका उद्रेक होगा जिनका कभी आजसे पहले अनुभव भी न किया होगा। लोभ लालसाएँ नये-नये रूपमें आवेंगी और प्रबल वेगसे अपनी ओर आकर्षित करेंगी।

हृदयके तार विचित्र कारणोसे इस विचित्र ढंगसे झनझना उठेंगे कि तुम उनकी स्वर-लहरीकी मोहकता देखकर मुग्ध और

विमूढ़ हो जा सकते हो। अक्सर ये बातें ऐसी भी होती है जिन्हें किशोर किसीके सामने रख नहीं पाता। उसे मनकी बात कहनेमें संकोच होता है, लज्जा आती है। इसमें बहुत सी ऐसी बातें भी होती है जो समाजकी प्रचलित और स्वीकृत व्यवस्थाओं तथा परिपाटियोंके विपरीत होती है। उन्हें किसीके सामने रखनेमें उसे भय होता है। फलतः वह उनको अपने अन्तस्तलके अति गहरे प्रदेशमें छिपाना चाहता है। पर छिपाये वह चाहे जितना वे जीवनमें एक समस्या तो उत्पन्न कर ही देती है जिसे हल किये विना शान्ति नहीं मिलती और परेशानी बढ़ती जाती है। फिर जैसे जैसे तुम बढ़ोगे वैसे-वैसे विचारोंमें, आदर्शोंमें संघर्ष होनेकी संभावना बढ़ती जायगी। बहुतसे नये-पुराने व्यवहारों और विश्वासोंसे बिलकुल विपरीत दिशामें तुम्हारी अवस्था हो सकती है। अपनी, समाजकी और जगतकी जो परिस्थिति है उससे बिलकुल दूसरी स्थिति और अवस्था तुम्हारी कल्पना पर प्रभाव डाल सकती है। जीवनमें पद-पद पर उचित और अनुचित, सत्य तथा असत्य, नैतिक तथा अनैतिककी विवेचनाका अवसर उपस्थित होता रहता है। यदि तुम विवेकशील हो, विचारशील हो, मनुष्य होनेके नाते अपनी मनुष्यता और उसके उत्तरदायित्वका ज्ञान रखते हो तो बात बातमें कर्त्तव्याकर्त्तव्यका निश्चय करना पड़ेगा। जिस कुलमें पैदा हुए हो, जिस समाजमें जन्म ग्रहण किया है, जिस देशकी संतान हो और सबसे बढ़कर जिस मनुष्य जातिके एक सदस्य होनेका सौभाग्य तुम्हें प्राप्त हुआ

है, उन सबकी परंपरा, संस्कार, इतिहास और सम्मानके अनुकूल जीवनको ढालने और यापन करनेकी चेष्टा करनी पड़ेगी। यह सारा महाप्रयास विभिन्न प्रकारकी समस्याओ और प्रश्नोको उपस्थित करता रहता है। आजके युवकके जीवनपर उत्तरदायित्वका जितना बोझ लद गया है उतना शायद मानव-समाजके इतिहासके किसी युगके युवक पर नहीं लदा था। आजके युवकका सौभाग्य है कि वह उस समय धरातल पर अवतीर्ण हुआ है जब मानव जाति विकासकी अति ऊँची और गौरवपूर्ण मंजिलपर पहुँच चुकी है। इसीलिये उसपर उत्तरदायित्व भी महान है।

ये तमाम समस्याएँ है तुम्हारे सामने। जगतके बड़ेसे बड़े प्रश्नसे लेकर छोटेसे छोटे प्रश्न तकसे व्यक्तिके जीवनका अटूट संबन्ध जुड़ गया है। ऐसे समय तुम्हारी ओर मैं सहज ही आकर्षित हो जाता हूँ। मेरा हृदय तुम्हारी सहायता करनेके लिए, तुम्हारी सेवा करनेके लिए अपने स्वाभाविक स्नेहका सागर लेकर तुम्हारी ओर टूटा पड़ता है। तुम्हारे सुखकी, उन्नतिकी, विकासकी इच्छा मुझसे अधिक और किसे हो सकती है? मेरे जीवनकी एकमात्र कामना यही हो सकती है तुम सुखी हो और जीवन-संग्राममें सफलता प्राप्त करो। आज मेरी एकमात्र भेंट तुम्हारे लिए है मेरी सहायता और मित्रता। मै चाहता हूँ कि तुम्हारा विश्वास प्राप्त करके, जहाँ तक मेरी बुद्धि, शक्ति और अनुभव मुझे ले जा सके तुम्हारी सहायता करूँ। यह समय है जब तुम सहायककी अपेक्षा करोगे। मैं चाहता हूँ कि उस समय बिना

किसी सकोचके, भय या लज्जाके तुम मुझसे सहायताकी माँग करना। किसी भी प्रकारके संकोचको मनमें स्थान देनेकी आवश्यकता नहीं है। जिन बातोंको मुझसे कहनेमें तुम्हें लज्जाका अनुभव हो सकता है, अथवा जिन समस्याओं और प्रवृत्तियोंसे उत्पन्न प्रश्नको सामने लानेमें तुम्हें संकोच हो सकता है, विश्वास करो, मैं उन सब परिस्थितियोंसे गुजर चुका हूँ। अधिकतर लोग वैसी स्थिति पार किये होते हैं क्योंकि जवानी सबकी आती है और कदाचित बहुत अंशमें समान प्रवृत्तियों और अनुभूतियोंको लिये आती है। फिर कोई कारण नहीं है कि तुम मुझसे संकोच करो। मुझसे जहाँ तक हो सकेगा तुम्हारी सहायता करूँगा और तुम्हें जटिलतासे पार होनेमें मेरे'अनुभवसे मदद मिलेगी। मै समझता हूँ कि तुम्हारे लिए इसकी आवश्यकता एक और कारणसे भी है। तुम्हारी माँ इस संसारमें नहीं रहीं। यदि माँ होती है तो बालक हो या युवक उसकी गोदमें अपना माथा रखकर अपनी बहुत सी कठिनाइयाँ और दुःख मातृ-हृदयसे प्रवाहित होने वाली अविरल प्रेम-धारामें बिना प्रयास ही वह देनेमें समर्थ होता है। उस अभावकी पूर्ति तो भला मैं क्या करूँगा, फिर भी तुम मुझमें ऐसा सहायक और मित्र पाओगे जो स्नेह, आदर और उदारता तथा सहानुभूतिके साथ तुम्हारी सहायता करनेमें परम सुख, संतोष और शान्तिका अनुभव करेगा।

यह न समझना कि मै तुम्हें उपदेश दे रहा हूँ या देना चाहता हूँ। मैंने अपने जीवनकी समीक्षा करते हुए किसी नव-

युवकके जीवनकी समस्या और आवश्यकताका जो अनुभव किया है उसीकी ओर संकेत किया है और संभव है आगे भी करूँ। तुम उसी दृष्टिसे मेरी बातोंको लेना। यही समझना कि कोई मित्र तुमसे बात कर रहा है। अब आज इस पत्रको यहीं समाप्त करता हूँ। मै चाहता हूँ कि तुम भी इन बातोंपर विचार करो और देखो कि मेरी बातोंमें तुम्हारे हृदय और तुम्हारी आवश्यकताओंका प्रतिबिंब पड़ रहा है अथवा नहीं। यदि मै कभी यह अनुभव कर सका कि मेरा जीवन तुम्हारे किसी काम आया तो मुझे इतनेसे ही परम संतोषकी प्राप्ति होगी।

तुम्हारा
कमलापति

१०

नैनी सेंट्रल जेल
ता०.........

प्रिय लालजी,

यौवनका आयुष्काल अत्यन्त कम होता है। उसके चले जाने पर चली जाती है उसकी मादकता और मोहकता। कुछ लोग तो ऐसे भाग्यवान होते हैं जो स्वभावसे ही युवक होते हैं। ऐसे लोगोंकी आशा और स्फूर्ति का क्या कहना है? उनका यौवन समाप्त हो जाता है, उसके साथ समाप्त हो जाता है रूप, फिर भी युगके सम्मुख वे पराजय स्वीकार करनेको तैयार नहीं होते। वे अपने अतीत ऐश्वर्यके चिन्हस्वरूप शेष जीवनको उसी प्रकार रंग-चुनकर सजाये रखनेकी चेष्टा किया करते हैं जिस प्रकार कोई उद्ध्वस्त अट्टालिकाके खँडहरको सजाकर संतोष और सांत्वना प्राप्त करनेका प्रयत्न करे। वे आशा करते है कि कदाचित्

विभूतिका यह भग्न स्तूप अब भी उनकी लालसाकी परितृप्ति कर सकेगा और उनके जीवनको रसमय बना देगा। ऐसे लोगोंको और कुछ लाभ चाहे न हो पर स्वपूजाके कारण उनके जीवनमें कुछ रस, कुछ आकर्षण और कुछ आशा बनी रहती है। पर मैं प्रकृत्या उन लोगोंमें हूँ जो स्वर्गवासकी अवधि समाप्त होते देख कर यह अनुभव करते हैं और देखते हैं कि वह अवधि सचमुच समाप्त हो रही है। ऐसे लोगोंके पास फिर बच रहती है केवल अतीतकी मधुर स्मृति जो कभी कभी वेदना और व्यथाका राग भी अलाप देती है। जीवनमें स्थायित्व न आनन्दको प्राप्त है न वेदनाको। प्रकृतिने इनकी रचना सबके लिए समान रूपसे की है जो अपने किसी निराले नियमके अनुकूल आते और जाते रहते हैं। पर आने-जानेवाले ये यात्री नश्वर होते हुए भी जीवनमें अपने आनेके अविनश्वर क्षण छोड़ जाते हैं जिनका संचय करके ही जीवन जीवन बना होता है।

मैं अपने उसी संचित रत्नकी पोटली आज अपने सामने खोलकर उन्हें बिखेरे हुए हूँ। मैं देख रहा हूँ कि मेरी इस पोटलीमें क्षोभकी, दुःखकी, नैराश्य और अभावकी, अतृप्ति और लालसाकी वज्र सदृश कठोर घड़ियोंकी उलझी हुई ग्रंथिके साथ सुख और स्नेहके, सयोग और संतोषके, परितृप्ति तथा पूर्णताके क्षणस्थायी मुहूर्त आबदार मोतीकी लड़ियोंकी भाँति गुंथे हुए है। पर मैंने आज अपने गड़े हुए धनको खोदकर इसलिए नहीं निकाला है कि अपने विक्षोभ, अपने परिताप तथा अपनी निराशा

पर नया रंग चढ़ाकर और उसे नवीन बनाकर संसारके सामने ला रखूँ। मैंने इसलिए उन्हें नहीं खोज निकाला कि तुम्हारे स्वतंत्र, उन्मुक्त तथा शरद्की सरिताके स्वच्छ सलिलकी भाँति निर्मल जीवनमें उन्हें घोलकर उसे गंदा कर दूँ। जो लोग अपने दुःखकी धाराको अंतरतम प्रदेशसे निकालकर बाहर करते है और उसे बहाकर संसारको परितप्त करनेकी चेष्टा करते है वे वस्तुतः कायर होते है। हाय हाय करनेसे न तो अपना काम होता है और न होता है कोई लाभ। हाँ, यदि सुख-दुःखको पीकर उसे अपनेमें ही लय हो जाने दे तो मानवके सामने जीवनका वह तत्त्व झलक उठता है जिसकी प्रत्याभा प्रकट करके न केवल अपने लिए बल्कि संभावतः दूसरेके लिए भी जीवनमार्ग पर रोशनी डाली जा सकती है।

तुम अभी यौवनमें पदार्पण करने जा रहे हो और मै तुम्हारी अवस्थासे लेकर आजतक ये जीवनके बहुमूल्य २०, २२ वर्ष और काट चुका हूँ। उलटकर बीते जीवनकी ओर दृष्टिपात करता हूँ तो उन अनेक उलझनों, दुश्चक्रों ओर समस्यारूपी भँवरों और आवर्तोंको देखता हूँ जिन्हें पार करके आज इस मंजिलपर पहुँचा हूँ। आज उनकी ओर संकेत करना चाहता हूँ इसलिए कि अपने पथपर चलते हुए तुम्हें उससे यदि कुछ सहायता मिल सकती हो तो मिल जाय। यौवनकी सबसे प्रबल, सबसे बहुमूल्य और सबसे प्रभावकर देन होती है प्राणीमें उसके व्यक्तित्वका उदय! अपने स्वरूपका, अपने अस्तित्वका बोध

जीवनके प्रारभसे ही होता है पर इस युगमें वह बोध जिस नये रंग और अनुभूतिको लेकर आता है वह इतना प्रखर और अभिनव होता है कि उसका प्रभाव सारे आगत जीवनको ढालता रहता है। नर हो अथवा नारी, यौबनका उसका उद्बोध, व्यक्तित्वका अपना ज्ञान और उस ज्ञानकी उसके मानसिक तथा भौतिक जीवनपर प्रतिक्रिया देखने ही लायक होती है। युवककी ऑखोमें वह रंग होता है जिससे सारी दुनिया उसके लिए उसी रंगमें रँगी दिखाई देती है। इस अस्थिपिंजरमें लोक-जीवनका कितना स्पदन, कितनी हलचल, कितना आकर्षक सौंदर्य फूट पड़ता है। शरीरावयवोमें मादकता, हृदयमें न जाने कितनी उमंगे, मानसधारामें भाव लहरियॉ जीवनको आमूल ओतप्रोत करके प्रचंड आलोड़न उत्पन्न करती है।

यह प्रबल प्रमंथन और तज्जन्य उत्प्रेरणाएँ जीवनकी अनेक प्रवृत्तियोको जगा देती है। ये प्रवृत्तियाँ कदाचित् अबतक किसी कोनेमें सुषुप्त पड़ी रहती हैं अथवा अमूर्त रूपमें कहीं जीवनके किसी तत्त्वमें लय हुई रहती हैं। पर यौवन आता है मथनी लेकर मथने, जिसके फलस्वरूप अबहनका उद्भव होता है। प्रवृत्तियोंमें लहराता हुआ युवक विचित्र प्रकारकी आवश्यकताओंका अनुभव करता है। वह न जाने क्या क्या खोजता है, न जाने किन किनका अभाव उसे खटकता है और न जाने जीवनमें उसके कितनी गुत्थियाँ पैदा होती जाती है। जीवनके इस संधिकालकी चपेटमें पड़े युवकको स्वयं यह नहीं ज्ञात होता

कि यह मामला क्या है ? बहुधा वह परेशान होता है, विकल होता है और हक्का-बक्कासा हुआ दिखाई देता है। जिनका बचपन समाप्त हो रहा है और जिनके जीवनमें यौवनकी भाषा झलकने लगी है ऐसे किशोरोंको ध्यानपूर्वक देखा जाय तो बहुधा उनमें एक विशेषता दृष्टिगोचर होती है। कोई कोई हतबुद्धिसे, निश्चेष्टसे और अकसर भूले भूलेसे दिखाई देते है। मैने योवनमें पदार्पण करती लड़कियोंको भी इस स्थितिमें पड़ते देखा है। उनके मुखसे, व्यवहारसे और रंगढंगसे ऐसा आभास मिलता है मानो उनका मन कहीं और है। विस्मृतसी, विमूढ़सी और मुख पर एक प्रकार के विरागकी झलकसी दिखाई देती है। जो लोग बच्चेके उमड़ते हुए जीवनके स्वरूप और रहस्यको नहीं समझते वे उनमें इन उपसर्गोंको देखकर क्षुब्ध होते है। समझा जाने लगता है कि यह कोई भारी विकार है जिसका शिकार बालक बालक हो रहा है। मैने देखा है बड़े लोगों को बच्चों की इस स्थितिपर क्रोध करते, उसे खोटी खरी सुनाते ! अनभना हुआ बालक जिस समय अधिकसे अधिक सहानुभूति और सहायता का पात्र होता है उस समय चारों ओर से फटकार पाकर गहरी विकलता और परेशानीमें डूबने लगता है। डाट सुनानेवाले यह नहीं समझते कि उसकी यह स्थिति परिणाम है। कुछ नैसर्गीक कारणोंका जिसका उपचार अत्यंत अपेक्षित है।

मेरी स्मृति मुझे आजभी धोखा नहीं दे रही है। मैं जानता हूँ कि बालकके हृदयमें किस प्रकार धीरे धीरे उसके अनजानमें

तूफान एकत्र होता रहता है। जिसे वह स्वयं समझ नहीं पाता। मै आज उसी स्थितिकी ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। जिस विषयको मैं स्पर्श करने जा रहा हूँ वह न केवल जटिल है वल्कि नाजुक भी है जिसकी चर्चा करना सरल काम नहीं। तुम्हारे लिये ये विषय आज अभिनव है, जीवनमें अवतक उनकी कोई स्पष्ट अनुभूति न हुई होगी। आज भी उनका ज्ञान तो दूर रहा कदाचित् उनकी धुँधलीसी कल्पना भी तुमने न की होगी। ऐसे विषयका ज्ञान बच्चोको कराना अति दुश्कर कार्य है। इस समस्याकी विवेचनासे जहाँ तुम्हारा लाभ हो सकता है वहीं यदि उसका ढंग गलत हो अथवा तुम्हारे हृदयमें वह उलटी और अनुचित उत्सुकता उत्पन्न कर दे तो उससे हानि भी हो सकती है। मैं इस आशंकासे सशंक हूँ; फलतः समुचित ढंगसे सभाल कर ही उसमें हाथ लगाना चाहता हूँ। मै समझता हूँ कि एक सीमा तक इस परम गोप्य विषयका रहस्योद्‌घाटन उचित समय आनेपर उस बालकके सामने हो जाना आवश्यक है जो उस जीवनमें प्रवेश करने ही वाला है। जिस समस्याका उसे सामना करना ही है, जिसे सुल-झाना उसके लिए नितान्त अनिवार्य होगा और जो उसके वर्तमान तथा भावी जीवनके अंग-प्रत्यंगको प्रभावित करने लगी है उसके संबंधमें उसे अंधकारमें छोड़कर यह नीति ग्रहण करना कि वह अकेले ही अपने बल, पौरुष और बुद्धिसे उसके पार हो जानेकी चेष्टा करे बुद्धिसंमत नहीं प्रतीत होता। कौन

कहेगा कि उसे यदि सहारा दिया जा सकता हो तो न देना उचित होगा ?

मै अनुभव कर रहा हूँ कि तुम्हारे हृदयमें मेरे इन वाक्योंने कौतूहल उत्पन्न कर दिया होगा। पर कौतूहलकी, उत्तेजनाकी ऐसी आवश्यकता नहीं है। साधारण रूपसे और शान्त भावसे ही जीवनके इस पहलूकी ओर तुम्हें सदा ध्यान देना होगा। बच्चेकी दुनिया उसके माता-पिता, भाई-बहिन तथा कुछ खानेके पदार्थों और कुछ खेलनेके खिलौनोंतक ही परिमित होती है। पर यौवन आता है व्यक्तित्वका बोध लिये और व्यक्तित्वके जागरण-का निश्चित परिणाम होगा युवकमें अपने अलग अस्तित्वके ज्ञानका उदय होना। उस स्थितिमें उसकी दृष्टि सहज ही विस्तृत होती है, वह स्वयं द्रष्टा बनता है और उससे भिन्न समस्त जगत उपस्थित होता है दृश्यके रूपमें, जिसका वह दर्शन करता है। प्रकृतिकी विचित्र लीलाके फलस्वरूप प्रकट हुए इस जगतके रहस्यमय स्वरूपका सबसे रहस्यमय पहलू है नर और नारी जो संभवतः जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव डालती है। सृष्टिका लक्ष्य चाहे जो हो, जीवनका ध्येय भी चाहे कुछ हो, पर इतना तो स्पष्ट और सिद्ध है कि समस्त प्राणी-जगतके उद्भव और विकासमें जीवनकी रंगस्थलीपर अभिनय करनेवाले जो प्रमुख तत्त्व रहे हैं वह हैं नर और नारी। पशु हो अथवा पक्षी, कीड़े-मकोड़े हो या वनस्पतियाँ, विशालकाय जन्तु हों अथवा मनुष्य, इस जगतमें नरनारीके नश्वर शरीरका ही आश्रय लेकर सृष्टिका

अविनश्वर सत्य मूर्तिमान हुआ है। कदाचित् इसीलिए प्रकृति के अटल विधानके अनुसार नरको नारीके प्रति और नारीको नरके प्रति सतत आकर्षित होना पड़ता है। इसीलिये संभवतः जीवन नैसर्गिक रूपसे परस्पर न केवल आकृष्ट है बल्कि एकके बिना दूसरा अपूर्ण रहता है और जो अपूर्ण है वह निरंतर अपने अभावकी पूर्तिके लिए उत्प्रेरित रहता है। इतना प्रबल आकर्षण सहज रूपसे जीवनका धर्म बना दिया गया, शायद इसलिये कि सृष्टि-क्रिया अविराम गतिसे प्रवाहित रहे। एक तत्त्व-द्रष्टा दार्शनिकने जगतकी उत्पत्तिकी विवेचना करते हुए पुरुष और प्रकृति की कल्पना की है। उसने इन दो अविनश्वर तत्त्वोंके संयोगको ही सृष्टिका मूल कहा है। पुरुष परम चैतन्य होते हुए भी प्रकृति-नटीकी लीलासे विमूढ़ होता है और प्रकृति अचेतन होते हुए भी पुरुषके सान्निध्यमें आते ही स्वभावतः विक्षुब्ध होकर विमोहक नृत्य करने लगती है। प्रकृतिकी मोहिनी लीला और पुरुषका उससे विमुग्ध होना और इस प्रकार दोनोका संयोग ही सृष्टि है। वस्तुतः जीवनमें हम सर्वत्र इस सत्यको घटता देखते हैं।

फलतः नारीके प्रति नरका आकर्षण जीवनका धर्म है जिसकी अनुभूति यौवनमें पदार्पण करते ही प्राणीको होने लगती है। इसे ही हम काम-प्रवृत्ति कहते हैं जिसे प्राणी गर्भसे ही अपने उदरमें लिये आता है। यह सहजात लालसा जीवनपर्यन्त उसके साथ रहती है। आजका मनोविज्ञान इस काम-प्रवृत्तिका

वैज्ञानिक विश्लेषण विस्तारसे करता है जिसपर प्रकांड शास्त्र और उद्‌भट साहित्यकी रचना हो गयी है। आज उस शास्त्रीय विवेचनाकी जानकारी तुम्हारे लिए आवश्यक नहीं है। वह लाभके बजाय हानिकर हो सकती है क्योंकि अप्रौढ अवस्थामें विविध विद्वानोंके बुद्धि-विलास और मत-मतान्तरोंमें पड़कर तुम सीधे और सहज मार्गसे विचलित होकर विचित्र दुश्चक्रोंमें फॅस जा सकते हो। मैं तो तुम्हारे सामने केवल वह स्थिति रख देना चाहता हूँ जो सहज ही इस वयसमें संमुख आ उपस्थित होती है। चेष्टा करूँगा उस स्थितिसे पार होनेके लिए मार्ग बता देनेकी। मेरा सुझाव किसी शास्त्रके आधार पर नहीं किन्तु होगा अपनी अनुभूतिके अनुसार जिसका साक्षात्कार अपने जीवनके उथल पुथलमें मै करता रहा हूँ। बचपनके बाद एक समय आता है जब काम-प्रवृत्ति मानव-हृदयमें हिलोरे लेने लगती है। उस लहरीकी लीला और खेलका वर्णन मैं कैसे करूँ ? युवक-हृदय ही उसे जान सकता है। उसके प्रभावसे मनमें एक अद्‌भुत तरंग उमड़ती है जिसमें युवक सारी दुनियाको सराबोर कर देता है। उसे चन्द्रमाकी ज्योत्स्नामें, सुंदर पुष्पमें, नदीके कल कल शब्दमें, सावनके मेघाच्छन्न आकाशमें, कोयलकी कुहू कुहूमें, वसंतकी सुरभित मंजरीमें, प्रातः आनेवाली ऊषाकी लालिमामें सहज, आकर्षक और मोहक सौन्दर्य दिखाई देने लगता है। अंबर, अवनी, गिरिशृंग और विस्तृत उदधिका वक्षस्थल सब नये रूप-रंगमें अपनेको उपस्थित करते है।

कल्पना, कविता और कोमलताकी ऐसी धारा हृदयमें बहने लगती है जो उसके जीवन और उसके जगत्‌में रसका संचार कर देती है। पर यह सब उपसर्ग है किसी मूल प्रेरणाका जो धीरे-धीरे उसे अनुप्राणित करती रहती है। वह प्रेरणा उसके हृदयके कोने कोनेको परिप्लावित कर देती है। युवक अनजानमें चाहने लगता है किसी को 'चाहना', उसे आरम्भमें अपनी इस चाहका ज्ञान नहीं होता पर निसर्गत' उसकी उत्पत्ति हो गयी रहती है। उसे अनुभूति होती है कि वह कुछ 'चाहता' है, जीवनमें उसके कोई 'अभाव' है, किसी प्रकारकी शून्यता है, कुछ अतृप्ति है, पर वास्तवमें यह चाह किसके लिए है, किस पदार्थका अभाव खटक रहा है इसका पता उसे नहीं लगता। इस स्थितिमें वह अपनेको कुछ खोया हुआसा पाता है। यह मनः स्थिति उसके जीवनका कठिन काल होता है। वास्तवमें मनकी वह दशा एक चौराहेके समान होती है जहाँ पहुँचकर वह भौचक्का सा हो जाता है। ऐसे समय आवश्यक होता है एक मार्गदर्शक जो सहारा देकर युवकको ठीक पथसे आगे बढ़ा ले जाय। कुछको सहायक मिल जाते हैं पर अधिकतरकी सहायता स्वयं प्रकृति और परिस्थिति कर देती है जो उनके हृदयमें सहज बुद्धि उत्पन्न करके उन्हें अपना उचित पथ स्वयं ढूढ़ लेनेमें समर्थ कर देती है। पर कभी कभी कोई कोई भटक भी जाते हैं। उन्हें जहाँ जाना है उस पथको छोड़कर दूसरा मार्ग भी पकड़ लेते हैं जिसमें भटकते फिरनेका ख़तरा सामने उपस्थित हो जाता है।

मै जानता हूँ कि इस मनोदशामें युवक अपनेको न समझ सकनेके कारण विचित्र पलटे खाता है और अकसर जीवनको दुःखमय बना लेता है। एक अति साधारण दिशा, जिसकी ओर स्वभाव और प्रवृत्तियां उसे प्रेरित कर देती हैं वह है जिसमें विपरीत काम-प्रेरणा का उदय हो जाता है। यदि इसे और स्पष्ट रूपसे समझानेकी चेष्टा करूँ तो शायद अनुचित न होगा। युवक अपने प्राकृतिक विकासके अनुसार जब जीवनकी एक विशेष मंजिल पर पहुँचता है तब उसके हृदममें काम-प्रवृत्ति पैदा होती है। उस प्रवृत्तिका मूर्त रूप होता है उसके हृदयमें एक प्रकारकी चाहका आविर्भाव जो वस्तुतः होता है नारीके प्रति आकर्षण, पर जिसे वह आरम्भमें समझ नहीं पाता। बिल्कुल यही प्रवृत्ति नारीके हृदयमें नरके प्रति होती है।

दोनों चाहते है परस्पर सम्मिलन। एक दूसरेके हृदयसे, शरीरसे, और आत्मासे भी मिलकर एक हो जाना चाहते हैं। दोनों अनुभव करते है जीवनमें शून्यता, अधूरापन, एक प्रकारका गहरा अभाव। यही है उसकी परेशानी जिससे निकलनेमें जीवनके इस युगमें कोई उसकी सहायता नहीं करता। परिणाम यह होता है कि कोई कोई अपनी उत्तेजनाकी स्थितिमें, यह न जानते हुए कि वह क्या चाहता है, उसकी समस्या क्या है और उसे करना क्या चाहिये, भटकने लगता है। विपरीत काम-बुद्धिका प्रादुर्भाव भी इसीका एक परिणाम है। विपरीत काम-बुद्धिसे हमारा तात्पर्य है उन अप्राकृतिक काम-चेष्टाओंमें संलग्न होना जिसकी भरमार

आजके समाजमें दिखाई देती है। युवक चाहने लगता है किसीको 'चाहना' पर किसे चाहना चाहता है यह न जानकर जो सामने आता है उसीपर मँडरा पड़ता है। सजात-प्रेमकी बुराई आज व्यापक रूपसे फैली हुई है। युवक युवकको उस प्रकार चाहने लगते हैं, परस्पर ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे नर-नारीके प्रति करता है। जीवनमें उन घोर अप्राकृतिक काम क्रियाओंका समावेश करते है जिनकी भ्रष्टता और गंदगीकी कल्पना करके रोमाञ्च हो जाता है।

मै ऐसे युवकोंके जीवनके ससर्गमें आया हूँ और उनके इस पतनके नाशकारी स्वरूप तथा प्रभावको देख चुका हूँ। नरका अपने पौरुषका इतना अपमान वास्तवमें घृणित है। युवक युवक को स्त्रीकी भाँति व्यहार करे, मियाँ-बीबीकी तरह वे सयोग और वियोगके सुख और दुखका अभिनय करे, यह वस्तुतः मानवताका घोर हनन है जिससे युवकको अपना जीवन बचाना चाहिये। आजकल यूरोपमें विशेषकर तथा साधारणतः इस देशमें भी सजात प्रेमका विषय न केवल पुरुषोंमें बल्कि स्त्रियोंमें भी फैल गया है। काम-प्रवृत्ति वास्तवमें प्रकृतिकी देन है जिसका जीवनमें अपना स्थान होता है। उसकी एक सीमा स्वयं प्रकृतिने निर्धारित कर दी है। मानव समाजने अपने सांस्कृतिक विकासमें उस सीमाको अधिकाधिक न केवल पुष्ट करनेकी चेष्टा की है बल्कि उस बंधनको उत्तरोत्तर अधिक पवित्र, अधिक कलामय और अधिक व्यवस्थित बनानेका यत्न किया है। फिर इससे बढ़कर

विडंबना और क्या हो सकती है कि मानव काम संबन्धमें उस भ्रष्टता और अस्वाभाविकता, तथा कुरुचिका समावेश करे जिसकी झलक पशु-जीवनमें भी दिखाई नहीं देती। इस कुकर्मका प्रभाव न केवल समाजके नैतिक जीवनपर पड़ता है पर जो इसमें रत होते हैं उनका व्यक्तिगत जीवन भी नष्ट हो जाता है। मनुष्य अस्वाभाविकताका आश्रय ग्रहण करके तरह तरहके रोगोंका शिकार होता है। युवक तो मानवताकी विभूति है जिसमें बल, वीर्य, पौरुष तथा तेजस्विताका निवास होता है। समय आनेके पूर्व अस्वाभाविक काम चेष्टामें प्रवृत्त होकर न जाने कितने युवक बलक्षय और वीर्यक्षय करके अपनेको निस्तेज बना लेते हैं। उनका मानसिक, बौद्धिक तथा शारीरिक ह्रास होता है।

सूखे गाल, धँसी हुई हड्डियाँ तथा केवल ठठरियों वाले तेजहीन और निश्चेष्ट युवकोंकी संख्या हमारे देशमें कम नहीं है। नैतिक दृष्टिसे भ्रष्ट, आध्यात्मिक दृष्टिसे अधः पतित तथा पौरुष और सत्प्रेरणासे हीन युवकोंसे भरा देश क्या कभी उन्नति और उद्धारकी आशा कर सकता है? देश और समाजकी सेवाके लायक तो ये रह ही नहीं जाते पर इनके साथ-साथ अपने जीवनके भी अयोग्य हो जाते हैं। बहुधा इस प्रकार विपरीत काम चेष्टावाले युवक नपुंसक हो जाते हैं जो समय आने पर उस स्वाभाविक काम सुखका उपभोग करनेमें असमर्थ होते हैं जो प्रकृतिकी सबसे बड़ी विभूति है। यदि नर पुरुषत्वहीन होकर नारीके योग्य न रह जाय तो भला उसका नर होना किस कामका ! अतएव यह

भी है कि एक बार इस प्रकारकी आदत पड़ जानेके बाद जीवन-पर्यन्त उससे छुटकारा नहीं मिलता। मैंने युवकोंको ही नहीं वृद्धो और प्रौढ़ोंको भी इस प्रवृत्तिके चक्रमें फँसे देखा है। आज तुम्हारे सामने भी यह खतरा है। तुम्हें सावधान होना है कि कहीं पथसे भटक न जाओ और जीवनको पतनकी ओर न जाने दो। पर यह तो एक प्रकारका खतरा है, एक दुष्प्रवृत्ति है जिसका उदय यौवनमें उदीयमान हुई स्वाभाविक काम-प्रवृत्तिका उचित मार्गकी ओर न लगा देनेके कारण उत्पन्न हो जाता है। ऐसे ही और भी तरह तरहकी गुत्थियाँ जीवनमें उत्पन्न हो जाती है और विचित्र मनःस्थिति उत्पन्न कर देती हैं। कोई कोई तो कामकी आरंभिक झनझनाहट सहन करनेमें असमर्थ होकर स्वयं अपने ही अंगसे क्रीड़ा करने लगते है। इन पागलोंके सम्बन्धमें क्या कहूँ ? अपने भविष्यको नष्ट करनेके लिए इससे बड़ा दूसरा प्रकार हो ही नहीं सकता। सचमुच मैं स्वीकार करता हूँ मेरी समझमें आजतक यह न आया कि किस सुखके लिए और क्यों कोई इस कुकर्मका आश्रय लेता है। हॉ, कामोत्तेजनामें बुद्धि और विवेकको तिलांजलि देकर पागल हो जाना और उसके शमनके लिए विष-पान करने तुल्य इस क्रियामें संलग्न हो जानेके सिवा मुझे और कोई कारण तो नहीं प्रतीत होता। बहुधा जो इस कुटेवमें फँसते है वे आगे चलकर चेष्टा करके भी अपनेको इससे निकाल नहीं पाते। मैंने इसके शिकार हुए युवकोंको आगे चलकर पश्चात्ताप करते, रोते और जीवनसे

निराश होते देखा है। मानसिक विशृंखलता, स्नायविक दौर्बल्य, नपुंसकता आदि बीमारियोंसे ग्रस्त होते और कभी कभी पागल हो जाते भी देखा है। यह सब परिणाम होता है यौवनारम्भमें सहज काम-प्रवृत्तिकी महत्ता न समझकर कुपथकी ओर भटक जानेका जो आगे चलकर सुधारनेकी चेष्टा करने पर भी नहीं सुधरता। जो अवसर खो दिया जाता है उसको फिर पाना संभव नहीं हुआ करता। जीवनमें यौवन बार-बार नहीं आता। जो गया वह सदाके लिए हाथसे गया। आज दृढ़ताके साथ तुम्हें इन बातोंको हृदयंगम कर लेना है।

एक तीसरे प्रकारकी ग्रंथि भी युवकमानसमें कभी कभी पड़ जाती है जिसका स्वरूप दूसरे प्रकारका होता है। यह ग्रंथि यों तो साधारण होती है पर बहुधा उसका अतिरेक होने लगता है जो युवकके लिए हानिकारक होता है। मैं उसे 'आत्म-प्रकाशकी' प्रवृत्ति कह सकता हूँ। यदि सीधे शब्दोंमें कहूँ तो कह सकता हूँ कि कुछ युवकोंमें बननेकी आदत' पड़ जाती है जो कभी कभी उपहास्यकी सीमातक पहुँच जाती है। व्यक्तित्व बोधके साथ हृदयमें उत्पन्न हुई काम-प्रवृत्ति उन्हें किसीके प्रति आकर्षित होने और किसीको अपनी ओर आकर्षित करनेकी सहज प्रेरणाके वशीभूत कर देती है। वे जानते नहीं हैं कि उनकी कायाके भीतर भीतर प्रकृति कौन सा खेल खेल रही है। यदि वे उस खेलका वास्तविक स्वरूप समझ ले तो बहुत कुछ सामंजस्य आपसे आप ही जीवनमें उत्पन्न हो जाय। पर अज्ञानमें पड़ा हुआ युवक

तो नयी लहरियोंमें लहराने लगता है और तदनुकूल व्यवहार करने लगता है। सहज भावसे उसका अचेतन मन उसे अपनेको आकर्षक बनानेकी ओर प्रेरित करता है। कदाचित् उसका आधार यह धारणा होती है कि किसीको आकर्षित करनेके लिए आकर्षक होना आवश्यक है। अवश्य ही यह धारणा अनजानमें, अप्रत्यक्ष रूपमें, युवकोंके स्वभावमें मिलकर उनपर अपना प्रभाव जमा लेती है। बस वे बेचारे बनने लगते है। अपने स्वरूपको संवारने लगते हैं। एकसे एक फैशनेबुल परिधानों तथा वेषभूषाका आश्रय ग्रहण किया जाने लगता है। यह मात्रा दिन दिन बढ़ने लगती है और फिर शौकीनीकी सीमा पार कर जाती है। स्वच्छता, सुन्दर और आकर्षक ढंगसे शरीरको रखना, अपनेको चुस्त और चपल तथा सजीव बनाये रखना तो एक गुण है जो सबमें, चाहे वह युवक हो अथवा प्रौढ़, होना आवश्यक है। आजकी दुनिया सीधा और सरल होनेका अर्थ यह नहीं समझती कि गंदे ढंगसे रहा जाय, चिथड़े लपेटे जायँ तथा सनकियो सा वेश वनाये रखा जाय। वह जमाना लद गया जब इसीमें गुण दिखाई देता था। आज इसे लापरवाही और बोदापन समझा जाता है। फलतः साफ सुथरे रहनेकी बातसे उस प्रवृत्तिको न उलझाना जिसका उल्लेख मै कह रहा हूँ। इसमे सफाई स्वच्छता नही प्रत्युत बनावटकी मात्रा अधिक होती है और वह धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। देश-विदेशके लेवेडरो, सेटो, पाउ-डरोंके विज्ञापन खोजे जाते है, अधिकसे अधिक मूल्यके विदेशी

कपड़ोंकी छानबीन दूकानोंमें की जाती है, बढ़ियासे बढ़िया चमकदार जूते ढूँढे जाते हैं और अपने मनके अनुसार साज-शृंगार करके युवक जब निकलता है तब उसकी ओर देखो। उसकी चालमें एक प्रकारकी बनावट होती है, उसकी चेष्टाओंमें विशेष भाव दिखाई देता है। वह अपने चारों ओरकी दुनियाको खोज भरी दृष्टिसे देखता नजर आता है। खोज यह होती है कि 'देखें' मेरी ओर सब आकर्षित हो रहे हैं कि नहीं।

ऐसे लोग यदि कहीं ऐसे स्थानपर पहुँच जाते हैं जहाँ 'महिला-मंडल' उपस्थित हो तो फिर उनकी हरकतें देखने लायक होती हैं। सब प्रकारसे वे उस स्थानको अपने व्यक्तित्वसे ही छा लेने के लिए अथक यत्न करते हैं। जहाँ वे पहुँचते हैं वहाँ यदि सिल-सिला गपशप और बातचीतका है तो वे सबसे अधिक बड़ बड़ करेंगे और सभी विषयोंमें चंचु-प्रवेश करनेकी चेष्टा करेंगे। यदि मामला हँसी-मजाकका हो तो उनका ठहाका सबसे बढ़कर लगेगा। यदि कोई उत्सव हो रहा हो तो बिना बुलाये और अनधिकार प्रबंध करनेके लिए सबसे अधिक उछलकूद वे ही मचाते दृष्टिगोचर होंगे। आगे चलकर यह आदत मनुष्यमें प्रगल्भता और अपने प्रति महत्ताकी झूठी भावना पैदा कर देती है। उस व्यक्तिके जीवनपर कुरुचिताकी ऐसी छाया पड़ती है जो उसे नीचे ही गिराती है। मुझे जीवनमें ऐसे युवकों-से वास्ता पड़ा है, उनसे बातें करते ही उनके इस स्वभावका पता लग जाता है। नर और नारीके क्षेत्रमें तो वे यह समझने लगते

है कि जगतकी जितनी स्त्रियाँ है सब उन्हींपर अनुरक्त है! अपने प्रति इस ढंगका परिणाम आगे चलकर विघातक होता है। एक दिन आता है जब उनकी आँखे खुलती है और तब वे समझ जाते है कि वे नारी-जातिके मनके हार नहीं उपहासके पात्र रहे है। वह ज्ञान जीवनमें क्षोभ और व्यथाको सृजन कर देता है।

इस प्रकार न जाने कितने टेढ़े-मेढ़े पथ युवकके सामने प्रस्तुत हो जाते हैं जो उसके जीवनमें उलझन पैदा कर देते है। इसके पहले कि मै यह पत्र समाप्त करूँ यौवनकी एक और धाराका उल्लेख कर देना चाहता हूँ। मैं कामशास्त्रके सबन्धमें विशेषज्ञ होनेका दावा नहीं करता। मैने जो कुछ लिखा है वह वही है जो मेरे प्रेक्षणमें, अनुभवमें आया है। समस्याएँ विविध व्यक्तियोके सामने विविध ढगसे उपस्थित होती है और उन व्यक्तियोपर उनकी प्रतिक्रियाएँ भी कदाचित् विभिन्न प्रकारसे होती होगी। जीवनमें घटित होनेवाली घटनाओका जो स्वरूप और प्रभाव मेरे संमुख उपस्थित हुआ है उन्हींकी ओर मैने संकेत किया। केवल इस आशासे कि तुम्हें शायद मेरे अनुभवोसे अपने जीवनके संचालनमें कुछ सहायता मिल जाय। मैने यौवनकी एक और धाराका नाम ऊपर लिया है। उसकी चर्चा इसलिये करना चाहता हूँ कि मै स्वयं उसके प्रवाहमें बह चुका हूँ। जहाँ एक विशेष प्रकारकी ग्रंथियोंका उल्लेख पीछे किया है वहीं यह भी एक ग्रन्थि है जिसका स्वरूप कुछ भिन्न

होता है। आश्चर्य होता है जब मैं यह सोचता हूँ कि यौवनकी काम-प्रवृत्तिसे ऐसी ग्रंथि भी पैदा हो सकती है। ऊपरकी बातोंमें एक धारा है जो यह दिखाती है कि काम-प्रवृत्ति उत्पन्न होने पर कामोपभोगकी ओर युवक बढ़ता है और अनजानमें ऐसे पथ पर चला जाता है जो उसे न केवल स्वाभाविकता और सुखसे विरत कर देता है बल्कि उसके नैतिक अधःपातका भी कारण होता है। पर कभी कभी एक विचित्र मनोवृत्ति युवकमें उत्पन्न होती है जो उसे धोखेमें डालकर एक और प्रकारकी उलझन पैदा कर देती है। यह मनोवृत्ति है विरागकी। युवक हृदयमें अनायास एक प्रकारकी शून्यताकी अनुभूति होने लगती है। उस दशामें उसे ऐसा मालूम होने लगता है जैसे दुनिया में उसका कोई नहीं है। न कोई उसे पूछता है, न कोई उसका अपना है, न किसीको उसके सुख-दुखमें दिलचस्पी है और न कहीं जगत्में कोई रस है और न आकर्षण!

यह प्रवृत्ति क्यों और कैसे उत्पन्न होती है इसका कारण बताना कठिन है पर अपने अनुभव पर मैं यह कह सकता हूँ कि इसका स्रोत भी नवोद्भूत वह काम-वृत्तिकी लहरी है जो उसके अंतस्तलमें लहराती रहती है। यह वृत्ति ही तो युवक हृदयमें न जाने किसकी कामना उत्पन्न करती है। इसीके कारण तो उसे एक अभाव, एक अपूर्णता और अधूरेपनकी मीठी वेदनाका अनुभव होता रहता है। कोई इस वेदनाके परिहारमें उपभोगकी ओर बढ़ जाता है और किसीमें यह वेदना अपने ही रूपमें

बढ़ती चलती है। जगतमें उसे कुछ चाहिये पर वह कुछ मिला नहीं होता अतः उसकी दृष्टिमें सारा सृष्टि प्रपंच जैसे शून्यसा दिखाई देने लगता है। ऐसी प्रतीति होने लगती है मानो उसका कुछ अपना है ही नहीं। जीवनमें छूछेपनका, खोखलेपनका यह भास उसमें विरागका सृजन कर देता है। यहीं से नये प्रकारकी विपरीत बुद्धि और प्रेरणा उत्पन्न होती है। वह बुद्धि उसे यह समझाती है कि वह विरक्त है, दुनिया में कुछ नहीं है, कुछ कर्तव्य भी बाकी नहीं है। बहुधा ऐसे युवकोंको विरक्तिकी, ज्ञानकी, संसार छोड़कर साधु हो जानेकी बात करते पाओगे। बहुतसे पूजा-पाठ और जप-ध्यानमें मग्न होते दिखाई देते हैं। विवाहकी बात होने पर वे जन्म भर ब्रह्मचारी बने रहनेके अपने संकल्पकी घोषणा बड़ी दृढ़ताके साथ करते दिखाई देते हैं। हँसी आती है उस समय जब अप्रौढ तथा अव्यवस्थित चित्तकी दशामें पड़ा हुआ १६, १८ अथवा २० वर्षका युवक अपनेको बुद्धके समान विरक्त समझकर अपने वृद्धजनोंको भी जगत्के मिथ्यात्व तथा जीवनकी नश्वरताका उपदेश देता दिखाई देता है।

ऐसे लोग यदि संभले नहीं तो आगे चलकर उनकी बड़ी दुर्गति होती है। मुझे ऐसे युवक संन्यासी मिले हैं जिन्होंने किसी समय अपनेको विरक्त समझकर घरबार तक छोड़ दिया पर आज वे अतृप्ति और लालसाकी आगमें जलते हुए जीवनको अनायास ही दुःखमय बनाये हुए है। जो किसी समय आजन्म ब्रह्मचर्यके अवतार बननेका दावा करते थे वे आज भोगलिप्साकी तृप्तिके

लिये न जाने कितने उपाय करते हैं और शान्तिके समय बैठकर अपने पतन पर ग्लानिकी आगमें जला करते हैं। मैंने इस परि-स्थितिकी चर्चा इसलिये की कि मैं किसी समय स्वयं इसका शिकार हो चुका था। मेरी स्मृति मूर्तमान होकर मेरे सामने खड़ी है। मेरी वही उमर थी जो तुम्हारी है। नया नया यौवनका उम्माद था पर इसी समय गांधीजीने अहिंसात्मक असहयोगकी शंखध्वनिसे भारतके दिग्तोंको गुंजरित कर दिया था। उनके इस नये मंत्र और नयी दीक्षामें त्याग और तपस्या तथा कष्ट-सहनका आदर्श सजीवरूपसे उपस्थित था। जिस समयका उल्लेख कर रहा हूँ उस समय मैं उपर्युक्त मनः स्थितिमें डूबा हुआ था। मुझे याद है कि मेरे हृदयमें अनायास ही मीठी मीठी वेदनाकी ध्वनि झंकृत होती रहती थी। मैं समझ न पाता था कि मैं चाहता क्या हूँ। जिधर देखता उधर ही कुछ सूनासा, और कुछ असंतोष सा दिखाई देता। अक्सर यह सोचा करता कि दुनियामें मेरे लिये न किसीको दिलचस्पी है और न मेरा कोई है। इसी मनोदशामें था जब गांधीकी पुकार कानोंमें पड़ी। मेरे मनके अनुकूल मार्ग था और मै उधर बढ़ चला। मेरी उस मनोवृत्तिका यह परिणाम तो वांछनीय हुआ कि मैं उस पथपर चल पड़ा जिसपर चलकर आज तोष और गौरवका अनुभव करता हूँ। पर उसे छोड़ दो। मनमें जो धारा थी उसकी बात देखो। मेरे मनमें उस समय क्या क्या नहीं आया। मैं सोचता कि विरक्त हूँ, मुझे संन्यास लेना चाहिये, मैं दुनिया से हटकर

कहीं दूर रहूँगा। यह सोचते सोचते एक प्रकारके अहंकारका उदय हुआ। अपनेको दूसरोंकी अपेक्षा कहीं अधिक पवित्र, ऊँचा और पहुँचा हुआ समझता। मनमें आता कि मेरे सिवा सारा जगत् मूर्ख है। जीवनके अनुभवसे शून्य, मानव मनकी गुत्थियोंसे अपरिचित, अपरिपक्व बुद्धि बालक दस बीस श्लोक गीताके तथा दो चार वाक्य उपनिषदोंके रटकर अजीर्ण हुए अन्नकी भाँति मौके-बेमौके जब होता उगल देता और सबको उपदेश ही करनेकी हिमाकत करता।

आज सोचता हूँ तो अपने ही ऊपर हँसी आती है। सौभाग्यसे मुझे ऐसे सहायक मिल गये थे, ऐसे लोगोंका संग प्राप्त था जो न केवल मुझपर प्रभाव रखते थे, बल्कि युवकके मनकी दशाका स्वरूप समझते थे। यह सहायता मिली मुझे एक संन्यासीसे। उन्होंने मुझे इस धारामें बहने दिया पर उसका अतिरेक होने नहीं दिया। वे जानते थे कि शीघ्र ही मेरे जीवनमें ऐसी घटनाएँ घटेंगी जिनसे सत्यका भास आपसे आप ही हो जायगा। उस समय मैं स्वयं ही समझ जाऊँगा कि यह मेरा विराग वास्तवमें विराग है अथवा घोर प्रवृत्तिकी अतृप्ति तथा हृदयमें अभावकी अनुभूतिका एक पहलू मात्र है। इसी कारण वे कहा करते कि 'तुमने अभी जीवनमें पदार्पण किया है, कुछ वर्षों तक उसके ऊँच-नीचको देखनेके बाद भी यदि यह समझना कि विरक्तिमें ही सुख है तो मुझसे बात करना और फिर मैं मार्ग दिखाऊँगा।' अधिक दिन नहीं बीता और मेरी आँखें खुल गयीं। सहसा मेरा

स्वरूप, मेरा हृदय, मेरे सामने उपस्थित हो गया। स्पष्ट हो गया कि इस विरागके मूलमें क्या था? वह विराग नहीं था अपितु था हृदयका विक्षोभ जो अपना आधार खोजता था पर न पानेके कारण इस दिशामें बह चला था। एक दिन उसके सामने आधार आ गया और फिर अपने संपूर्णसे, अपने समस्त व्यक्तित्वसे मैंने अनुभव किया कि मुझे यही चाहिये और मैं इसीको खोज रहा था।

जानता हूँ और आज भी अनुभव कर रहा हूँ कि मैं विरक्ति नहीं चाहता था पर चाहता था किसीसे प्रेम करना और किसीका प्रेम पाना। हृदयका आदान-प्रदान करना मेरी कामना थी। यह सौदा करना मेरे व्यक्तित्वकी अभिलाषा थी जिसे मैं समझता न था। यह थी अपूर्ति जो अनजानमें वेदना और विरागकी ओर लेकर बढ़ गयी थी। मनुष्यके जीवनमें ऐसा बहुतसा समय व्यतीत हो जाता है जब वह अपने संबन्धमें अँधेरेमें, धोखेमें रहता है। शायद बहुतोंका सारा जीवन इसी प्रकार अपने संबन्धमें धोखेमें ही बीत जाता है। वे भाग्यवान् होते हैं जिनकी आँख सहसा किसी दिन खुल जाती है। इस प्रकारकी घटनाएँ कम नहीं होतीं। मेरी दृष्टिमें ऐसे युवक आये हैं और जब मैंने उनके जीवनमें प्रवेश किया है तब बिलकुल वही बात पायी है, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। मुझे कई घटनाएँ विभिन्न व्यक्तियोंके जीवनकी याद आ रही हैं। एक घटना तो एक बारके मेरे जेल-जीवनकी ही है। आजसे ग्यारह

वर्ष पूर्व मैं सत्याग्रह युद्धके सिलसिलेमें अपनी सजा भुगत रहा था। जेलमें एक युवकपर मेरी दृष्टि पड़ी। मुखपर वेदनाकी गहरी छाया थी। जीवनके ढंग तथा रहन-सहनमें विचित्र विराग था। उस उमरके और लोग जहाँ दिन भर हो-हल्ला मचाते और ऊधम करते रहते वहां उसे मैं वृक्षोंके नीचे अद्भुत चिंतनशील बैठा हुआ देखता रहता। अनायास मैं उसकी ओर आकृष्ट हुआ। बातचीत की तो देखी वही विरक्तिकी पुट! जीवन और जगतके मिथ्यात्वकी ओर वह संकेत करता और मुझसे उसीके सम्बन्धमें विवाद करता। मुझे संदेह हो गया कि हो न हो यौवनकी लीलाकी ही ग्रंथि पड़ गयी हो। धीरे-धीरे उससे मेरी घनिष्ठता बढ़ी। एक दिन मौका पाकर मैंने उसके हृदयको स्पर्श करनेकी चेष्टा की। वह युवक जिस स्थितिमें था उसका अनुभव मुझे हो चुका था। मैंने अपनी ही कहानी और वही अनुभूति उसके सामने ढंगसे रखी। विश्वास करो कि मेरी बाते समाप्त होते होते उस युवककी आँखोंसे आँसूकी धारा बह चली। मेरी बातें उसके अंतस्तलको स्पर्श कर रहीं थी। उन्होंने उसके हृदयपटको उसके ही सामने खोलकर रख दिया। आज भी वह युवक स्वीकार करता है कि उस घटनाने उसके जीवनको प्रकृत बना दिया। अन्यथा वह भटकता ही रहता।

अब मै यह पत्र समाप्त करता हूँ। इसका विस्तार काफी बढ़ गया है। मैंने लिखना इसलिये नहीं रोका कि कहीं मेरे विचारोंके प्रवाहमें रुकावट न आ जाय। सोचा पत्र बढ़ जाता

है तो बढ़ जाने दो। पर अब समाप्त करता हूँ क्योंकि प्रश्नका एक पहलू सामने रख दिया है। यौवनमें जो समस्या सबसे उग्र रूपमें, सबसे प्रभावकर रूपमें, सारे जीवनको उसकी समस्त संपूर्णताके साथ ओतप्रोत करती रहती है, उसकी चर्चा कर दी है और उससे स्वभावमें तथा जीवनमें जो प्रतिक्रिया कभी कभी उत्पन्न होती है उसकी ओर भी इशारा कर दिया है। और बातें अब फिर लिखूँगा। आज यहीं आराम करो।

तुम्हारा
कमलापति।

११

नैनी सेंट्रल जेल

ता०...... ..

प्रिय लालजी,

पिछले पत्रमें मैंने यौवनकी प्रभात-बेलामें हृदयमें लहरानेवाले 'काम' की प्रवृत्तिका उल्लेख किया था। कामेच्छा सजात प्रवृत्ति है जिसे अपने साथ लिये हुए प्राणी उत्पन्न होता है। यौवनमें उसकी अनुभूति अभिनव रूपसे होती है जिसकी प्रति-क्रिया सारे जीवनपर होने लगती है। मनपर उसके प्रभाव पड़ते है पर कभी कभी उस प्रभावका परिणाम जीवनको विचित्र रास्तोंकी ओर ले बढ़ता है। जवानीमें इस उलटे परिणामका खतरा होता है जिसकी ओर संकेत कर दिया है। संकेत इसलिये किया है कि तुम उससे सावधान रहो। जिस युगमें पदार्पण कर रहे हो उसमें ऐसी परिस्थितियाँ और उनका मनपर प्रभाव

पड़ सकता है जो उन्हीं खतरनाक रास्तोंकी ओर ले जानेकी चेष्टा करें। इसलिये आवश्यकता है इस कालमें उनसे सावधान रहनेकी और उनसे अपनेको बचानेकी। काम-प्रवृत्ति यदि जीवनके मूलमें ही वर्तमान है और उसे अपने उदरमें लेकर ही प्राणी आता है तो उसका प्राणीके साथ साथ रहना अनिवार्य है। यौवनमें यदि प्रकृतिकी प्रेरणासे वह प्रवृत्ति अपनी शक्तिके साथ सामने उपस्थित होती है तो मनुष्यका उससे प्रभावित होना भी नितान्त निश्चित है। प्रश्न कर सकते हो कि उसके खतरे तो आपने बताये पर अंततः उठनेवाली इस समस्याका समुचित हल क्या है? प्रकृतिने इस प्रवृत्तिकी पूर्तिका कौनसा उपाय मानवको प्रदान किया है और वे कौनसे पथ हैं जिनपर चलना उचित होगा और जो इस प्रश्नका निबटारा कर सकते हैं? यह सीधा और सरल प्रश्न है जिसका उत्तर पानेका तुम्हें अधिकार है।

यह प्रश्न देखनेमें जितना सरल और सीधा है वास्तवमें उससे कहीं अधिक गंभीर, जटिल और पेचीदा है। आज इस प्रश्नकी समीक्षामें दुनियाके बड़े बड़े विचारकों और मनीषियोंने अपनी सूझ, शोधन और मननकी शक्ति लगा रखी है। महान वैज्ञानिकों और प्रखर दार्शनिकोंने इस प्रश्नको अपने गंभीर अध्ययन और विचारका क्षेत्र बनाया है। संसारके साहित्यमें 'काम विज्ञान' का न केवल प्रमुख स्थान है बल्कि साहित्यका जितना बड़ा अंग उसके रूपमें वर्तमान है उतना कदाचित् किसी दूसरे

विषयका न होगा। जीवनमें संभवतः 'काम साहित्य' का अध्ययन और विवेचन अन्य सभी विषयोंकी अपेक्षा कहीं अधिक हो रहा है। संप्रति इस विज्ञानकी परिधि इतनी व्यापक और विस्तृत हो गयी है कि कुछ लोग जीवन और जगतकी समस्त समस्याओंको उसीके अंदर मानने लगे है। यूरोपके विचारकोंमें जहाँ इसका अध्ययन वैज्ञानिक ढंगपर कई दशकोंसे हो रहा है ऐसे लोगोंका एक समूह है जो यहाँ तक मानते है कि 'प्राणि-जगत्' की काम प्रवृत्ति ही उसके समस्त विकासका मूल है। वे कहते है कि इसी प्रवृत्तिकी अनुप्रेरणासे सारा जीवन और जगत् संचालित है। महती सभ्यताओंका जन्म, महान साहित्योंका निर्माण, अति ऊँची कलाका परिस्फुरण, मानव-समाज और विचारका संमंथन तथा हृदय और जीवनके रहन-सहन, ढंग तथा मनुष्यके स्वभाव और आदतोंका निर्माण अर्थात् जगतका सामूहिक तथा व्यक्तिगत समस्त जीवन मूलतः इसी प्रवृत्तिकी उत्प्रेरणा तथा अभिव्यक्तिका परिणाम है। वे तो यहाँतक कहते है कि जगत्में फैला हुआ विक्षोभ, आजकी अशान्ति और जीवनका दुःख भी इसी कारण है कि इस प्राकृतिक प्रवृत्तिको मानव-समाजने अपने स्वाभाविक ढंगसे प्रवाहित होने नहीं दिया। इन विद्वानोंके मतसे माताका वात्सल्य हो चाहे किसी साधकका विराग, निठल्ले बैठे हुए किसी आदमीका अपने लटकते हुए पैरको हिलाना हो अथवा किसी कलाकारका अपनी कलाको मूर्त करनेमें समाधिस्थ हो जाना, सबमें उसकी काम-प्रवृत्ति ही मूलतः निवास करती है जो

तरह-तरहकी वृत्तियों तथा मानस-विकृतियोंका सृजन किया करती है।

अवश्य ही ऐसे विचारकोंके मतके विरोधी भी अनेक विद्वान् और समूह हैं जो उसी वैज्ञानिक पद्धतिका सहारा लेकर उपर्युक्त धारणाओंको भ्रांत समझते हैं। पर मैं तो यहाँ कामशास्त्रके विविध विचारकोंके मतोंकी विवेचना करने नहीं बैठा हूँ। आज तुम्हें उसकी आवश्यकता भी नहीं है। जैसे-जैसे समझदार होगे और बड़े होगे वैसे वैसे इन प्रश्नोंपर स्वयं विचार करोगे और शायद उस समय विभिन्न मतोंको प्रकट करनेवाले इस संबन्धके साहित्य को पढ़ोगे। आज तो तुम न उन्हें समझ सकते हो और न उनसे तुम्हारा लाभ हो सकता है। मैं तो समझता हूँ कि उससे हानि ही अधिक होगी क्योंकि उसमें प्रवेश करना चाहिये उन लोगोंको जिन्हें प्रौढ विचार करनेकी क्षमता प्राप्त हो गयी हो और जो न केवल परस्पर विरोधी बातोंमेंसे सत्यका निर्णय करनेकी शक्ति रखते हों बल्कि अपने जीवनकी अनुभूतियोंकी कसौटीपर परख कर उनकी सत्यताकी जाँच कर सकते हों। इन बातोंकी चर्चा तो मैंने केवल कामप्रवृत्ति तथा तत् संबन्धी अनेक प्रश्नोंकी गंभीरता और जटिलताकी ओर संकेत करनेके लिए की है। विचार करके देखा जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक युगमें ही नहीं बल्कि मानव-विकासके अति आरंभिक कालसे ही मनुष्यने इस प्रश्नकी महत्ता स्वीकार की है। वह सदा उसके प्रभाव और तज्जन्य समस्याओंका अनुभव करता रहा है। उसने सदा अनुभव

किया है कि जीवनपर इस प्राकृतिक प्रवृत्तिका ऐसा गहरा और व्यापक असर है कि मनुष्य उसकी उपेक्षा कर नहीं सकता। यह कहना अनुचित न होगा कि जीवन-रथमें कामकी प्रवृत्ति वस्तुतः धुरीकी भाँति रही है अतः उसने सदा उसकी शक्तिको बाध्य होकर स्वीकार किया है। भले ही हम इसे स्वीकार न करें कि जीवनकी सारी उत्प्रेरणाके मूलमें वही है पर इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उसका स्थान प्रमुख रहा है और सहस्राब्दियोंसे मानव-समाजने, उसके विचारकों और मनीषियोंने, ऋषियों और तत्त्व द्रष्टाओंने तद्भूत समस्याओंको हल करनेमें अपनी शक्ति लगायी है। समाजका विकास उनकी इस चेष्टा और साधनाका ही परिणाम है।

ऐसे गंभीर विषयपर तुम्हें कुछ बतानेका यत्न करना सचमुच साहस करना है पर किया क्या जाय? उसकी जटिलता और विकटताका एक प्रभाव यह भी है कि जहाँ उसके संबन्धमें कुछ कहना दुश्कर काम है वहीं बिना कहे रहा भी नहीं जा सकता। यदि उन बातोंके संसर्गमें तुम्हें आना है, यदि प्रकृति तुमको उनके संमुख लाकर खड़ा कर देनेवाली है तो फिर यह आवश्यक और अनिवार्य है कि तुम्हें उसके स्वरूपका ज्ञान करा दिया जाय। भला जो प्रश्न बड़े-बड़े विद्वानोंको घपलेमें डाल देता है उसके सामने यदि एक अनुभवहीन और अप्रौढ़ बालक खड़ा कर दिया जाय तो कौन कहेगा कि उसकी सहायता करना उचित नहीं है? फलतः मैं आयास करूँगा कुछ बतानेका जो किसी शास्त्रकी विवे-

चना न होकर होगा मेरी अनुभूतियोंका परिणाम और उन अनुभूतियोंकी प्रतिक्रिया जो मेरे मानस-पटलपर पड़ी है। अब तुम अपने प्रश्नपर जाओ—कामकी प्रवृत्ति यदि सहज है तो फिर प्रकृतिने उसकी पूर्तिका भी कुछ न कुछ उपाय निर्धारित किया होगा? यह उपाय क्या है? इस प्रश्नका उत्तर दो शब्दोंमें यही है कि कामैषणा स्वाभाविक है और उसकी पूर्तिका स्वाभाविक साधन है नर-नारीका सम्मिलन। इसके सिवा दूसरे किसी उपायसे उसका समाधान अप्राकृतिक है, भ्रष्ट है, अनैतिक और विनाशकारी है।

नारी प्रकृतिकी, कलाकी अनुपम रचना और सर्वोत्कृष्ट विभूति है। नर और नारीकी रचना करके प्रकृतिने दोनोंको अलग अलग तत्त्व बना दिया है। परंतु एकके बिना दूसरा अधूरा है। अपनी पूर्णताकी अनुभूति करना जीवनकी आकुल चाह होती है जिसे प्रकृतिने स्वभावतः मानव-हृदयमें उत्पन्न कर रखा है। यही कारण है कि ये दो तत्त्व परस्पर मिलकर एक हो जानेके लिए सदासे उत्सुक रहे हैं। स्थूल दृष्टिसे देखा जाय तो नर नारीके पार्थिव शरीरकी ओर आकृष्ट होता है। इसी प्रकार नारी नरके भौतिक देहकी ओर आकृष्ट होती नजर आती है। साधारण दृष्टिसे उन दोनोंके भौतिक देहको परस्पर मिलते हम देखते हैं। इस सम्मिलनमें काम-प्रवृत्तिकी तृप्ति होती है नरको नारीके रूपमें परम सौंदर्यकी जो छाया झलकती दिखाई देती है। उसका कारण तर्कसे सिद्ध नहीं किया जा सकता। ललनाके लहराते

केशमें और उसकी भृकुटियोमें, उसकी नासिका और उसके कपोलमें, उसके अधरो और ग्रीवामें उसके वक्षस्थल और उसकी भुजामें, उसके समस्त अवयवों और अंग-प्रत्यंगमें नरको सौंदर्य, ऐश्वर्य और कलाका जो चरम रूप विकसित दिखाई देता है वह क्यों दिखाई देता है ; इसका उत्तर शास्त्र और तर्क नहीं दे सकते। नारीकी चालमें, उसके हास और मानमें, उसके क्रोध और स्नेहमें मनुष्य डूबकर जिस तृप्ति और तोषका रसपान करता है उसका कारण क्या है यह बतानेकी क्षमता मुझमें नहीं है। जीवनकी अनुभूति केवल यह बताती है कि नारी वह महा शक्ति है जिसकी उपेक्षा करना संभव नही होता। यौवनका समुद्र जब पूर्ण चन्द्रकी भाँति प्रकृतिके अनन्त अंतरिक्षपर नारीको उदीयमान देखता है तब उसमें वह उफान उठता है जिसकी प्रबल चपेटमें सारा जीवन आमूल आन्दोलित हो जाता है। नारीका वह अति मनोहर रूप अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है अथवा नरकी दृष्टिमें आपेक्षिक है यह कहना भी कठिन है। उसका सौन्दर्य जिस रूपमें नरकी दृष्टिमें भासता है वैसा ही कदाचित किसी दूसरेको प्रति-भासित न होता होगा। जो नारी नर-हृदयको विक्षुब्ध कर देती है, जो उसके सारे जीवनमें छा जाती है, जो उसे चन्द्रमाकी ज्योत्स्नामें, मेघकी विद्युल्लतामें, वसंतके सुरभित समीरमें, तथा प्रकृतिकी समस्त और अपार विभूतिमें अपनी ही छाया झलकाती दिखाई देती है वही नारी अपनी सजाता दूसरी नारीके लिए कदाचित् तत्सम मूल्य नहीं रखती ! निस्संदेह यही

प्रतीत होता है कि उसका रूप, उसका सौन्दर्य, उसकी मनो-हरताका विशेष अस्तित्व नरकी दृष्टिमें ही है। पर हो चाहे जो इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि नरको नारीकी रूपाभामें जीवन-की किसी परम सुखद, कोमल, मधुर तथा अतृप्त चाहकी पूर्तिका साधन स्पष्ट दिखाई देता है जिसकी अनुभूतिके लिए उसके हृदयमें आवेगका तूफान उठ खड़ा होता है।

यही कारण है कि मानव-जीवनमें नारीका अद्भुत तथा विशिष्ट स्थान रहा है। पुरुषके लिए वह उत्प्रेरणा और स्फूर्तिका भी कारण रही है। यह न समझना कि नारी केवल उपभोगका साधन मात्र रही है, जिसके द्वारा पुरुष अपनी प्यास बुझाता रहा है। मानवताके इतिहासमें पुरुषके जीवनको अनुप्राणित करनेमें कदाचित् नारीसे अधिक भाग किसी और तत्त्वका नहीं है। विश्वके रंगमंचपर ऐसे पात्रोंकी कमी नहीं रही है और न आज है जिन्होने विशिष्ट चरित्रोंकी रचना की है, उच्चादर्शोंकी स्थापना की है और महान कार्योंका सम्पादन किया है। पर ऐसा करनेमें उनके पार्श्वमें निवास करती उनकी प्रियतमाका हास, उसकी प्रशंसात्मक दृष्टि, उससे वहनेवाली स्फूर्तिकी धारा और उसका अनमोल अपार प्रेम, उत्प्रेरणाका प्रमुख स्रोत रहा है। उसकी एक एक भ्रूभंगिमा पर कठिनाइयोंके महासमुद्रमें कूद पड़नेमें न हिच-कनेवाले नायकोंकी जगत्में कमी नही रही है। नारीके वियोग-की ज्वालामें विदग्ध हृदयोंसे काव्यकी जो धारा वही है, उसके स्नेहकी अभिलाषामें क्षुब्ध हृदयका जो आवेग शब्दों और भावोंके

रूपमें निर्गत हुआ है वह मानव-समाजके साहित्यका अनमोल और कदाचित् उत्कृष्ट अंग है। उसके विमोहक अंगों और भाव-भंगिमामें कलाकारको उस परम तथा सत्य सौन्दर्यके तलछटका जो सहसा उद्‌बोध होता रहा है वह जगतकी महती कलाकी कृतिके रूपमें मानवताको सुशोभित करता रहा है। मै जब नारीके महान व्यक्तित्वका चिन्तन करता हूॅ तब उसकी अनन्त मोहकतासे अभिभूत हो जाता हूॅ। यही कारण है कि मैने सदा उसे अपार श्रद्धा और अगाध भक्ति तथा अपरिमित प्रेमकी दृष्टिसे देखा है। मै अपने भावको किस प्रकार प्रकट करूॅ। मैं आस्तिक हूॅ और यह विश्वास करता हूॅ कि विश्वके मूलमें कोई अनन्त चेतन धारा है जिसकी अभिव्यक्ति ही यह सृष्टि है। मेरा यह आस्तिक भाव जब मुझे उस असीम-महा-धाराकी कल्पनाके लिए उत्प्रेरित करता है तब सचमुच मै उसकी कल्पना उस महिमामयी, महाशक्ति स्वरूपा चिरंतन नारीके रूपमें ही कर पाता हूँ जो दृश्यादृश्य इस भव-प्रपंचके अणु-परमाणुओंमें पूर्णतः ओतप्रोत है।

फलतः इस नारी तत्त्वसे एक होनेके लिए नर आकृष्ट होता है। मानव-स्वभावकी यह विशेषता है कि वह जब किसी वस्तु पर विमुग्ध होता है तब उसे पानेका उसका आग्रह भी प्रबल हो उठता है। उस आग्रहमें वह अपने वांछनीय पदार्थकी सत्तासे मिल कर एक हो जाना चाहता है। एक हो जानेके इस आग्रहके मूलमें पूर्ण होनेकी उसकी वह चाह वर्तमान रहती है, जो प्रकृतिने जीवनके साथ-साथ प्रदान कर दी है। नारीके बिना वह

अपनी अपूर्णताका, अभावका अनुभव करता रहता है। फलतः उसे पाना और पाकर एक हो जाना उसकी परम आकांक्षा होती है। पर क्या नर-नारीके स्थूल पार्थिव सम्मिलनसे उस आकांक्षा-की तृप्ति पूर्णरूपसे हो जाती है? यह उचित प्रश्न है जिसका उत्तर भी स्पष्ट है। जीवनका अनुभव बताता है कि नर और नारीका क्षणिक भौतिक सम्मिलन क्षण भरके लिए कामकी प्रवृत्ति-का भले ही शमन कर दे, पर जीवनकी सम्पूर्ण चाहकी परितृप्ति केवल उतनेसे नहीं होती। फिर भी क्षणिक परितृप्तिमें भी उस परितृप्तिका स्वाद, उसका आभास, अस्थायी अनुभव प्राप्त हो जाता है, जिसकी खोज जीवन करता रहता है। फलतः मानव-जीवन उसे पानेके लिए बड़े वेग और गतिके साथ उसकी ओर बढ़ता है। नर-नारीके पारस्परिक प्रबलाकर्षण और एक हो जाने-की उग्र आकांक्षाके चरम रूपका नाम ही प्रेम है।

इस प्रेमकी अनुभूति यौवनमें काल पाकर होती है और किसी भी युवकके जीवनमें प्रेमकी यह समस्या उत्पन्न हो सकती है। जब जीवन इस नये भावोद्रेकका अनुभव करता है तब एक विशेष स्थिति उत्पन्न हो जाती है। प्रेमकी व्याख्या और उसके स्वरूपका विशेष वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है। वह एक विशेष प्रकारकी मनःस्थिति है जिसकी अनुभूति ही हो सकती है। यह न समझना कि नारीमात्रकी ओर जो आकर्षण स्वभा-वतः उत्पन्न होता है वही प्रेम है। ऐसा आकर्षण तो राह चलते हो सकता है। आते-जाते कहीं भी मनोरमा रमणीके प्रति, उसके

यौवनके प्रति हृदय आकर्षित हो जाता है और मनुष्यकी दृष्टि उधर चली जाती है। पर यह दृश्य नेत्रके सामने आता है, क्षण भरके लिए मनको आकृष्ट करता है और चला जाता है। जीवन पर उसकी कोई प्रत्यक्ष रेखा भी नहीं रहती। मनुष्यकी इन्द्रियाँ थोड़ी देरके लिए अपने किसी रसकी ओर आकृष्ट हो जाया करती है और बहुधा उनकी तृप्ति करके शान्त हो जाती हैं। इन्द्रियोकी यह वासना-तृप्ति प्रेमका पद नहीं प्राप्त कर सकती। कोई गा रहा हो और उसके ताल तथा लयकी ओर कान चले जायँगे। कोई गंध हो नासिका उसका ग्रहण कर लेगी। पर ये घटनाएँ हो जाती है, इन्द्रियोंका स्वारस्य थोड़ी देरके लिए शमन कर देती है और बिना किसी प्रकारका प्रभाव जीवनपर डाले मिट जाती है। इनका घटित होना कुछ यांत्रिक सा होता है। इसी प्रकार नारीके स्वरूपकी ओर भी आँख उठ जाती है और अपना काम करके शान्त हो जाती है। यह है सहज साधारण आकर्षण पर इतनेको ही प्रेम नहीं कह सकते। प्रेम तो एक प्रकारकी मनःस्थिति है जिसमें व्यक्तित्व अपनी संपूर्णताके साथ अभावका अनुभव करता है और जो नही है उसे पानेके लिए विकल हो जाता है। जो चाहता है उसे पावे और पाकर उसमें तन्मय हो जाय।

इस तन्मयताकी उपलब्धि और प्रेमास्पदके साथ तादात्म्य, यही प्रेमकी चरम साधना है। जीवन जिस पूर्णताकी अनुभूतिके लिए सनातन विकलतासे विकल रहता है उसका शमन तो

इसीमें हो सकता है कि द्रष्टा और दृश्य अपने भिन्न अस्तित्वको खतम करके एकमें ही लय हो जायँ। अवश्य ही इस स्थितिकी प्राप्तिके बाद जीवन असीम स्वतंत्रता, शान्ति और निर्मुक्तिका अनुभव करता होगा। उसके भौतिक बंधनकी कड़ियाँ एक एक करके टूटकर गिर जाती होंगी। मैं नहीं जानता कि यह स्थिति मनुष्यको प्राप्त होती भी है या नहीं। यह केवल कल्पना और आदर्शमें ही निवास करता है अथवा जीवनमें कभी उसकी अनुभूति भी होती है? कहनेवाले तो कहते हैं कि प्रेमका साधक इस सिद्धिको प्राप्त करता है। संभव है ऐसा होता हो पर इतना तो मैं भी कह सकता हूँ कि यह आदर्श चाहे प्राप्त हो अथवा न हो किन्तु जीवन इस दिशाकी ओर ही उन्मुख है, इसमें संदेह नहीं। अपने समस्त बंधनोंके साथ वह प्रकृत्या उस लक्ष्यकी ओर बढ़नेके लिए सतत सचेष्ट रहता है इसका मुझे विश्वास है। यही कारण है कि प्रेमी जिसे प्रेम करता है, उसके सारे व्यक्तित्व-को अपने समस्त व्यक्तित्वके साथ प्रेम करता है। जब तक ऐसा न हो तब तक वह प्रेम प्रेम ही नहीं है। उसे केवल भौतिक इन्द्रियोंका किसीके स्थूल, पार्थिव देहकी ओर वासनाओंकी तृप्तिके लिए प्रबल आकर्षणमात्र समझना चाहिये। पर मैंने बार बार व्यक्तित्वकी चर्चा की है और कहा है कि संपूर्ण व्यक्तित्वके साथ किसीके पूर्ण व्यक्तित्वको चाहना और उसके संयोगकी अनुभूतिकी इच्छा ही प्रेम है। पूछ सकते हो कि यह व्यक्तित्व क्या चीज है जिसकी चर्चा वारवार की जा रही है? यह प्रश्न अत्यन्त

टेढ़ा है जिसका उत्तर देनेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं है। जीवन-का मूल्य अनुभवगम्य आत्मा में है, अतः जीवनकी अनुभूतियाँ तर्क और बुद्धिकी सीमाके क्षेत्रसे कहीं अधिक व्यापक और परे है। व्यक्तित्व कोई ऐसा ही पदार्थ है जिसकी अनुभूति की जा सकती है पर जिसे शब्दोंके अर्थकी सीमामें बताया नहीं जा सकता। किसीको चन्द्रकी चन्द्रिकामें जो अपार सौंदर्य दिखाई देता है वह उसे क्यों दिखाई देता है और वह सौंदर्य कैसा है तथा कैसे अपार है इसे भला तर्कसे कोई कब सिद्ध कर सकता है?

यही कारण है कि 'व्यक्तित्व क्या है' इसका उत्तर शब्दोंमें नहीं दे सकता। विज्ञानके विभिन्न क्षेत्र मनुष्यके विभिन्न अंगोंको लेकर उसकी समीक्षा अवश्य करते है। पर मनुष्यका व्यक्तित्व उन सब छोटे-छोटे अंशोंसे बना हुआ होने पर भी केवल उतना ही नहीं है। उसके व्यक्तित्वकी सीमामें वह सारी विवेचना आ जाती है, उसमें सब अंश समा जाते हैं फिर भी संपूर्ण उन समस्त अंशोंके सम्मिलित योगसे कही अधिक बड़ा और व्यापक है। मनुष्यका हाथ, पैर, मुँह, कान, नाक, आँख आदि इंद्रियाँ है, उसके अंग है, अवयव हैं। इन सबको मिला-जुला रूप मनुष्य के देहका ढाँचा है। फिर इस बच्चेका निर्माण हाड़, चाम, मांस, रक्त, रक्तवाहिनी नलियाँ, स्नायुवो, ग्रंथियों आदिसे हुआ है। शरीर-विज्ञान तुम्हें मनुष्यके रूपका ज्ञान इसीकी व्याख्यामें देगा। पर निश्चित ही मानव-व्यक्तित्व इतना ही नही है। यह

व्याख्या और वर्णन उसके एक अंश पर ही प्रकाश डालता है। रसायनशास्त्रके पंडितसे पूछोगे कि मनुष्य क्या है तो वह उन अनेक तत्त्वों और द्रव्योंकी सूची पेश कर देगा जिनके द्वारा रस, रक्त, मांस, चर्म, हड्डियाँ तथा अवयव और अंग बने हुए हैं। पर यह उत्तर भी मानव-व्यक्तित्वके एक अंशका ही जिक्र करता है, संपूर्णको सामने नहीं लाता। फिर भौतिक शास्त्रीसे पूछो और वह परमाणुओं तथा विद्युत्-कणोंके रूपमें समस्त रासायनिक तत्त्वों और द्रव्योंकी व्याख्या कर देगा और कहेगा कि मानव-शरीर उन विद्युत्-कणोंका पुंजमात्र है। निश्चय ही यह भी मानव-के एक अंशकी ही व्याख्या है। मानव-शास्त्रके विद्वान् अपने विविध मतमतांतरोंको लेकर मानवकी व्याख्या करेंगे और कहेंगे कि मनुष्य आदतोंका पुतला है, सहज और सजात प्रवृत्तियोंसे निर्मित प्राणी है तथा अपने चेतन और अचेतन मनसे उत्पन्न एक जटिल पदार्थमात्र है। तो क्या मनुष्य केवल हाथ, पाँव आदि इंद्रियों और अंगोंका ढाँचा मात्र है। क्या वह केवल रासायनिक तत्त्वों और द्रव्यों अथवा विद्युत्-कणोंका समूह मात्र है या क्या केवल आदतोंका पुतला है? आखिर वह है क्या? वास्तवमें मनुष्य इन सबका जोड़ ही नहीं है। ये सब उसमें समा जाते हैं पर वह इन सबसे कहीं बड़ा है। आजका सारा विज्ञान मानव-के एक-एक अंगको लेकर ही उसका विश्लेषण करता है। इन सब अंशोंको एक साथ जोड़कर रख देनेके बाद जो ढाँचा खड़ा होता है वह भी मानव व्यक्तित्वकी पूर्णताका वर्णन समूचे रूपमें नहीं

कर सकता। मानव इस विभिन्न तथा पृथक अंशों और पह-लुओंसे, जिनकी विवेचना विज्ञान करता है कहीं अधिक बड़ा है। उसमें इन सबका समावेश हो जाता है पर इन सबका सम्मिलित योग भी उस कुलका चित्र सामने नहीं उपस्थित करता। फलतः मानवके व्यक्तित्वमें उसका सम्पूर्ण रूप समाविष्ट है। वह सम्पूर्ण कहीं अधिक विस्तृत और व्यापक है जिसका विश्लेषण मनुष्यकी ससीम बुद्धि नहीं कर पाती। उसका वर्णन और विश्लेषण नहीं किन्तु अनुभव अवश्य होता है। यह वर्णनातीत अनुभूति ही उसकी सत्ताका प्रमाण है।

यही व्यक्तित्व जब आमूल किसी दूसरे व्यक्तित्वको प्रेम करता है तो वह केवल प्रेमास्पदके भौतिक रूपको ही नहीं चाहता। निःसंदेह उसके प्रेममें प्रेमास्पदके रूपका सौंदर्य भी अति ऊँचा ही नहीं बल्कि अतुलनीय स्थान रखता है। प्रेमी प्रेमास्पदके शरीरको चाहता है, उसके रूपको भी चाहता है, उसके हृदयको भी चाहता है। उसे पाकर वह अपने समस्त भौतिक और ऐंद्रिक वासनाकी तृप्ति प्राप्त करता है पर इसके साथ-साथ वह उस व्यक्तित्वको भी चाहता है जिसकी आभा प्रेमीका व्यक्तित्व पा लेता है। इन दोनोंका सम्मिलन वह ऐक्य प्रदान करता है जो वस्तुतः आत्माकी परितृप्तिका कारण बनता है। प्रेमका क्षेत्र अविनश्वर आत्मामें है, इस कारण उसकी अनुभूतिका भांडार अक्षय है। प्रेम छीजना नहीं जानता। वह क्षणस्थायी नहीं होता। उसे प्राप्त करनेके बाद सदा अतृप्त रहनेवाला मानव फिर

कुछ पानेकी इच्छा नहीं रखता। वह जीवनकी समस्त भौतिक और अभौतिक इच्छाओंका पेट भर देता है। मै यह नहीं मानता कि मनुष्यकी इन्द्रियाँ और उसकी वासनाएँ मिथ्या हैं अथवा विशुद्ध रूपसे घृणित है। मेरी दृष्टिमें उनमें भी सत्यांश हैं क्योंकि वे भी मानवकी चेतन आत्माका ही एक पहलू हैं, एक अभिव्यक्ति है। पर इसके साथ मै यह भी मानता हूँ कि वे ही सब कुछ नहीं है। वे वास्तवमें कुलका ही एक छोटा सा अंश हैं।

फलतः केवल उनकी तृप्तिसे कुलकी तृप्ति नही होती पर कुलको तृप्त करनेका साधन उनको अवश्य तृप्त कर देता है। प्रेम कुलको तृप्त करता है। उस कुलकी तृप्तिके साथ-साथ उसके अंग-प्रत्यंग, मूर्त-अमूर्त, स्थूल-सूक्ष्म, पार्थिव अपार्थिव सब तृप्त हो जाते है। पर मैं जानता हूँ कि प्रेमकी साधना दुःसाध्य है। प्रेम अन्तर्मुखी होता है। मनुष्य प्रकृत्या बहिर्मुखी होता है अतः गहराईमें जाना नहीं चाहता। नारीका प्रेम जैसे मानव व्यक्तित्वको. उसके हृदय, शरीर और आत्माको आच्छन्न कर देता है वैसे ही उसके रूपका मोह भी बुद्धि और मनको उद्भ्रान्त बना देता है। प्रेम जैसे अन्तर्मुखी है मोह वैसे ही बहिर्मुखी है। इनमेंसे पहला जैसा विशुद्ध सत्य है वैसा ही दूसरा असत्य है। रूपके मोहकी मदिराका नशा रूपके साथ-साथ अथवा उसके उपभोगसे प्राप्त क्षणिक तृप्तिके साथ-साथ उतर जाता है। रूप, केवल रूप, भौतिक रूप नश्वर होता है। बुद्धने अपने महानिर्वाणके समय जिस अंतिम सत्यका

प्रतिपादन किया था उसमें उन्होंने कहा था कि 'वयधम्मा संखारा'। अर्थात् जगतके पदार्थोंकी आयु होती है। नारीके रूपकी भी आयु है। उसकी समाप्ति अथवा उपभोगके साथ उसका आकर्षण, उसकी चाह और उसका मोह नष्ट हो जाता है। मानव बहिर्मुख होनेके कारण उस तात्विक सत्यमें नही जाता जिसकी आभा नारीके रूपमें झलक जाती है। वह उसकी भौतिक अभिव्यक्तिमें ही फँसकर तृप्त हो जाना चाहता है।

आखिर मनुष्यका वास्तविक रूप भी तो भौतिक बंधनों और ढांचेसे ही घिरा हुआ है। वह करे क्या? सत्यकी छाया उसे झलक अवश्य उठती है, क्षण भरके लिए उसकी अनभूति भी हो जाती है पर तब-तक भौतिकताके ढाँचे में रखे हुए चेतनपर भौतिकता ही हावी हो जाती है। यही कारण है कि मनुष्य काम प्रवृत्ति और नर-नारीके आकर्षणमें परस्परके रूप और उसके उपभोगको ही प्राधान्य देता है। जब नश्वर उपादानको ही प्राधान्य दिया जायगा तब फिर उसके आधारपर खड़े हुए आकर्षणका भवन भी समय आनेपर धराशायी हुए बिना न रहेगा। जीवनमें आज इसीका दृश्य दिखाई देता है। आजका युवक प्रतिदिन अपनी प्रेमिकामें परिवर्तन करता फिरता है। विदेशी शिक्षा-दीक्षासे प्रभावित युवतियाँ भी नये-नये प्रेमी बनाती रहती है। अतृप्ति और सदा अतृप्तिकी आगमें जलते रहना और प्रतिदिन उसकी तृप्तिके लिए नये-नये साधन खोजते फिरना उनके जीवनकी चरम साधना हो गयी है। वे तर्क करते हैं कि हृदयका धर्म

जड़ता नहीं है। वह बदलता रहता है। जिस प्रकार सूखे पुष्प गिर जाते है और नये खिलकर स्थानको भर देते है वैसे ही एक मनमें आता है, जीवन उसका उपयोग करता है और जब वह नीरस हो जाता है तो दूसरा रसदार आकर उसका स्थान ग्रहण कर लेता है।

इस तर्कमें कितनी भ्रांति है इसे वे नहीं देखते। वे अनुभव नहीं करते कि तृप्ति, अतृप्तिकी सत्ता केवल बाहरके भोगमें नही है। उसका संबन्ध है जीवनके मूल स्रोतसे। मानव-जीवन यदि केवल भौतिक होता तो कदाचित् यह तर्क भी उपयुक्त होता। पर भौतिकता उसका एक छोटासा अंशमात्र ही है। उसके व्यक्तित्व की सीमा उससे कहीं अधिक विस्तृत है। अंशकी तृप्तिके साथ सम्पूर्णकी तृप्ति कदापि न होगी। फलतः नर-नारीका सम्मिलन केवल शरीर और रूपके स्तर पर होना मनुष्यकी आवश्यकताकी पूर्ति हर्गिज नहीं कर सकता। उसे कुछ और गहरे जाना ही होगा, अन्यथा जीवन सदा अतृप्त, अधूरा और शून्य रहेगा। यही है परम सत्य जिसका दर्शन प्रेमके उस आराधकने पूर्णरूपसे किया है जिसने अर्द्धनारीश्वरके रूपकी कल्पना की है। शिव शक्तिके विना अधूरा है, अपूर्ण है। शक्तिके संमुख नटराजके अनन्त नृत्यसे एकीभूत हुआ सनातन नर चिरंतन नारीके साथ मिलकर उस अविनश्वर तत्त्वका रूप ग्रहण करता है जिसपर यह सृष्टि आश्रय-भूत हुई है। फिर शिव ही शक्ति होजाता है और शक्ति ही शिव-शक्ति जब अन्तर्मुखी होती है तब शिव हो जाती है और शिव

जब वहिर्मुख होता है तब शक्ति हो जाता है। शिव शक्तिकी यह एकरसता, तादात्म्य, अक्षय संयोग वह परम रहस्यमय सत्य है जिसकी अनुभूतिके बाद जीवन अनन्त निर्मुक्तिका उपभोग करता है।

अब मैं इस पत्रको बढ़ाना नहीं चाहता। मैंने अपनी दृष्टिसे काम-प्रवृत्ति और प्रेमकी तात्विक व्याख्या करनेकी चेष्टा की है। मैं जानता हूँ कि आज इसपत्रकी बहुत सी बातें तुम्हारी समझमें भी न आयेंगी। पर वह समय दूर नहीं है जब वे बाते समझमें आने लगेंगी। आज किशोर हो, च्वार वर्षमें युवक होगे। जीवन-की यह समस्या उस समय सामने आ सकती है। आज नहीं तो उस समय इस पत्रके पन्नोंको उलट कर देखना। शायद अपने मनकी स्थिति और उसके स्वरूपको समझनेमें इससे कुछ सहा-यता मिल जाय। कौनसा मार्ग ग्रहण करना चाहिये, इसका इशारा भी इन पत्रोंमें मिल जायगा। जो कुछ लिखा है वह मेरी अपनी दृष्टि और अनुभूति है। मै नहीं जानता कि समय पाकर इसमेंसे कितना ग्रहण करोगे और कितना न करोगे। पर इतना मै अवश्य जानता हूँ कि जीवन तथा उसकी प्रवृत्तियोको इस दृष्टिसे देख कर मैंने अपनी समस्या हल करनेमें बहुत कुछ सफलता पायी है। इससे मुझे शान्ति भी मिली है। मेरे मार्गका निर्धारण भी हुआ है जिसपर जीवन-रथको हाँकता हुआ आगे बढ़ा हूँ। यह अनुभूति और विचार तुम्हारे अर्पण है। इनसे जो सहायता चाहना लेना। आज विचारकी धाराको यहीं रोकता हूँ।

तुम्हारा

कमलापति।

१२

नैनी सेण्ट्रल जेल

ता०...... ....

प्रिय लालजी,

जीवन रहस्यमय पहेली है। उसकी व्याख्या केवल तर्कसे नहीं हो सकती। उसमें इतनी जटिलता, इतना दाँव-पेंच और इतना रहस्य छिपा हुआ है कि उसे समझना असंभव सा होता है। मानवजीवनकी दशा ही कुछ विचित्र है। मनुष्य यदि केवल पेट और अन्य इन्द्रियोंका गुलाम होता तो कदाचित् उसकी समस्याएँ भी सरल होतीं। अन्य जन्तुओंकी भाँति उस दशामें उसके सामने भी दो ही प्रश्न मुख्य होते—किसी प्रकार वह अपनी उदर-पूर्ति कर लेता और फिर प्रजनन करता। बस इसीमें जीवनके क्षण समाप्त कर डालता। पर मनुष्यके जीवनकी सीमा इतनी परिमित नहीं है। मानव-विकासकी जिस धाराका परिणाम है

उसने इस प्राणीको कहीं अधिक ऊँचा उठा दिया है। विकासने उसकी सर्वांगीण उन्नति की है। उसने न केवल उसके देहके ढाँचेमें परिवर्तन किया है बल्कि प्रकृति प्राणीको जितनी दूसरी विशेषताएँ प्रदान करती है उन सबका विकास मानव-जीवनमें शरीरकी ठठरीके साथ-साथ होता रहा है। प्रवृत्ति और विवेक, भावुकता और अनुभूति, इच्छा और कल्पना, सचेष्टता और संयम, लालसा और उत्सर्ग सभी प्रकृति-प्रदत्त विशेष भावनाएँ हैं जो मानव-जीवनके विकासके साथ-साथ उसमें विकसित होती रही हैं। आज मिली हुई इस विरासतके बोझसे मनुष्य दबा हुआ है।

फलतः विकासने उसके जीवनमें अनेक गुत्थियाँ, अनेक पहलू और अनेक दाँव-पेच उत्पन्न कर दिये है। इन सबने मिल कर उसके जीवनका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत कर दिया है। यह सच है कि पेट-पूजा और प्रजनन उसके जीवनमें जरूरी स्थान रखता है और इन दोनों बातोंका प्रभाव उसपर पड़ता रहता है, फिर भी उसके विस्तारकी सीमा इससे कहीं अधिक आगे है। मनुष्य शब्दके उच्चारण मात्रसे जीवनके संबन्धमें हमारी कल्पना असीम हो उठती है। इसीसे लोग कहते है कि मानव प्रकृतिकी सबसे बड़ी विभूति है। मुझे तो ऐसा लगता है कि प्रकृतिने अनन्त प्रकारकी सृष्टि की पर उसे अपनी कृतिपर संतोष नहीं हुआ। उसने पेड़-पौधोंकी सृष्टि की पर वे जड़ ही रह गये। उसने पशु-पक्षियोंकी सृष्टि की। ये प्राणी चेतन तो थे पर रह गये

अन्ततः पशु ही। संभव है इसने अदृश्य देवोंकी सृष्टि की हो जो चिन्मय रहे होंगे पर वे भी देव ही रह गये। प्रकृतिको इनमेंसे किसीसे भी संतोष नहीं हुआ। उसकी कलाने इन विभिन्न कृतियोंमें केवल एक ही पहलूकी अभिव्यक्ति करनेमें सफलता प्राप्त की। अपनी कलाकी इस अपूर्णतासे कलामयीको तोष नहीं हो सकता था। अन्ततः उसने मानवकी रचना की जिसमें उसकी अनन्त विमोहक कला अपनी चरमताको पहुँच गयी। उपर्युक्त समस्त पहलुओंका समन्वित रूप ही पूर्ण कहला सकता था। इस कमीकी पूर्ति मानव रचनामें हुई। फलतः हम मनुष्यमें सब कुछ देखते हैं। उसमें जड़ता है, उसमें पशुता है, उसमें चेतनता है और उसमें देवत्व है और इन सबका सम्मिलित रूप मानवताके रूपमें परिस्फुरित हुआ है।

वह मनुष्य ही है जो अपने कौड़ी भर स्वार्थके लिए खून तक कर डालनेमें समर्थ होता है। अपनी तुच्छ प्रवृत्तिके वशमें होकर क्रोधके आवेशमें आकर, हिंस्र पशुसे भी भीषण निर्दय कार्यमें प्रवृत्त होनेवाला भी मनुष्य ही होता है। ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, अहंकार तथा स्वपूजामें अपनेको भूलकर निम्नस्तर पर उतरकर कार्य करनेवाला भी मनुष्य ही होता है। धोखा देने, फरेब करने, हत्या और डकैती करनेमें भी न चूकने-वाला वह मनुष्य ही है जो आसमानसे गोले फेंककर दुधमुँहे सुकुमार बच्चो तथा निर्बल और निर्दोष नर-नारियोंको भून डालनेमें जीवनकी परम सार्थकता समझता है। परन्तु वही

मनुष्य है जो फिर अपने पड़ोसीकी प्राणरक्षा करनेमें आगमें कूदता दिखाई देता है। वही मनुष्य विकराल नदीकी तीव्रधारामें बहते तथा आर्तस्वरमें प्राणरक्षाके लिए गुहार करते प्राणीको बचानेके लिए प्राणोका मोह छोड़कर आगे दौड़ पड़ता है। किसीकी सेवा और संतोषके हेतु सर्वस्वको स्वाहा करनेके लिए अग्रसर होनेवाला वह मानव ही है जो ज्ञानके लिए, सत्यके शोधनके लिए अपनेको उत्सर्ग करता दृष्टिगोचर होता है। वह मीलों समुद्रके नीचे चला जाता है, पर्वतकी चोटियोपर चढ़ जाता है, अपने हृदयकी कुल लालसाओंका त्याग कर जगलमें धूनी रमाता है, अपने अकेले प्राणको लिये असरताके अनन्त पथको अपने चरणोंसे नाप लेनेके लिए निकल पड़ता है।

मानवका यह विरोधात्मक रूप ही उसके जीवनकी पहेली है। इसने उसे विशेषता और महत्ता भी प्रदान की है। उसमें इन्द्रियाँ है, इन्द्रियोकी वासना है, बुभुक्षा है, काम है पर इसके साथ ही उसमें हृदय है, भावना है, कला है और पवित्रता है। उसमें मस्तिष्क है और जिज्ञासा है तथा सत्यकी पूजा करनेकी प्रबल इच्छा है। वह पेटके लिए लड़ता है पर अपने हृदयको नहीं भूल सकता। हृदयकी भावनामें बहता है पर अपने मस्तिष्कको, बुद्धिको, विवेकको नहीं भूल पाता। उसका जीवन यदि केवल पशुके समान होता तो उसमें सिर्फ भौतिकता होती। यदि केवल देवके समान होता तो उसमें आध्यात्मिकता ही होती पर मनुष्य इन दोनोसे अधिक है। वह मानव है इसलिये उसका

जीवन भौतिक भी है, आध्यात्मिक भी। यही कारण है कि उसका जीवन अमानुष प्राणियोंसे कहीं टेढा, विकट और जटिल है। उसमें गुत्थियोंमें गुत्थियाँ पड़ी हुई हैं, जो एक दूसरेसे बेतरह उलझी हुई हैं। किसी एककी भी उपेक्षा करना संभव नहीं है क्योंकि उस स्थितिमें मानव मानवतासे गिर जाता है। मानवताकी मर्यादाकी यह माँग है कि जीवनकी, उसकी समस्याएँ ऐसी रहें जिनमें कई पहलू हों। उनका भौतिक पहलू भी होगा, आध्यात्मिक भी होगा, वे प्रवृत्ति-मूलक भी होंगी, विवेक-मूलक भी। यही कारण है कि मानव जीवनकी समस्याको सुलझानेका कोई एक नुस्खा बता देनेमें आज तक जगतका कोई पैगंबर, देवदूत, ऋषि, तत्वद्रष्टा तथा मनीषी सफल नहीं हुआ। मनुष्यको इन तमाम पहलुओंका विचार करते हुए, सबको ध्यानमें रखते हुए, और उन सबको तौलते हुए जीवनका ढंग पकड़ना पड़ता है। उसे अपने विविध रूपमें सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है क्योंकि जीवन नैयाको खेनेका एक मात्र उपाय यही हो सकता है।

जीवनके हर पहलूमें, उसके सभी क्षेत्रोंमें यह स्थिति लागू होती है। कामकी प्रवृत्ति और नारीकी समस्या भी इससे बरी नहीं है। नारीको इसी कारण भौतिक जीवनकी वासनाकी तृप्ति और उपभोगके एक साधन मात्रके रूपमें देखना जीवनके एक अत्यन्त आवश्यक और महत्वपूर्ण पहलूकी उपेक्षा करना है। यह मानवताकी मर्यादाका अपमान करना है और उसके एक ऐसे तथ्यको ठुकराना है जो विकास पथके पथिकके रूपमें मनुष्यको

विरासतमें मिली है। फलतः मैं मानता हूँ कि नारीको एक तात्विक सत्यके रूपमें, जीवनकी महाशक्तिके रूपमें ही देखना और ग्रहण करना होगा। जीवनकी पूर्णता और मानवताकी रक्षा तथा कल्याणके लिए यही एकमात्र उचित दृष्टिकोण हो सकता है। जब तक ऐसा नहीं किया जाता तबतक तृप्ति और सुख तथा शान्तिकी उपलब्धि असंभव है। केवल ऐन्द्रिक और भौतिक परितृप्तिके लिए नारीकी उपयोगितामें विश्वास करना और उसे उस दृष्टिकोणसे देखना न केवल जीवनको सदा अतृप्त और ऊर्ध्वोन्मुख वासनाकी आगमें जलाते रहना है, बल्कि समाज और काम-प्रवृत्तिकी उस समस्याको जन्म देना है जिसका हल कभी मिल ही नहीं सकता। स्मरण रखना चाहिये कि नारी यदि शक्ति है तो उसका दुरुपयोग विघातक हो सकता है। आज समाजमें जो धारा बह रही है, वह काम-प्रवृत्ति और नारीके दुरुपयोगकी ही धारा है। भौतिकताके गिरि-शृङ्गपर मदमें मस्त खड़ा यूरोप मस्तक उठाकर जगत्की ओर तीव्र दृष्टिसे देख रहा है। उसकी आँखोंसे निकली चिनगारियाँ समस्त मानव समाजके हृदयमें पार्थिवताकी लौ जला रही है। यूरोपने जीवनके प्रति जिस विचारधारा और दृष्टिकोणको जन्म दिया है, उसका प्रवाह इस देशमें भी आ रहा है। मै मानता हूँ कि विचारोंके इस प्रवाहका आना अनिवार्य है क्योंकि उसके मार्गका अवरोध न तो किया जा सकता है और न कदाचित करना चाहिये। नये विचारोंका आना और पुरानोंसे उनका संघर्ष होना प्रगति तथा विकासके

लिये आवश्यक होता है। इस संघर्षसे जो गति उत्पन्न होती है वह समाजको सप्राणता प्रदान करती है, उसमें संचलनका सूत्रपात करती है। आखिर यह सजीवता और संचलन ही तो जीवन और विकासका स्रोत है। अत विचारोंके इस नव प्रवाहका मैं स्वागत करता हूँ, पर साथ-साथ यह आवश्यक समझता हूँ कि मनुष्य आँखें खोलकर इस प्रवाहको देखता भी रहे। आँखे मूँद कर प्रवाहमें बह जाना भयावह हुआ करता है क्योंकि वह न जाने कब किस खड्डमें ले जाकर झोंक दे सकता है। फिर प्रवाहके साथ बहुतसा कूड़ा-करकट भी बहता हुआ आता है जिससे अपनेको बचाकर ही मनुष्य संतरण कर सकता है।

यूरोपकी सारी सभ्यता और जीवनके प्रति उसका दृष्टिकोण ऊपरसे नीचेतक भौतिक है। उसकी कमजोरी और उसका दोष यही है कि उसने मनुष्यके केवल एक ही पहलूका दर्शन किया है और उसे ही एकमात्र संपूर्ण सत्य मान लिया है। उसकी दृष्टिमें जीवन केवल कुछ भौतिक द्रव्यों और तत्वोंकी रासायनिक क्रिया-कलापका परिणाम मात्र है, जो सहसा एक अनिश्चित घटनाके रूपमें धरातलपर घटित हो गया है। मानवकी चेतना भौतिक परिस्थितियोंके घात-प्रतिघातसे उद्भूत एक परिणाम है जिसकी अनुभूति मानव-रूपधारी भौतिक पिंड किया करता है। जिस जीवनके प्रति यह दृष्टिकोण हो उसका भला कोई उद्देश्य, कोई लक्ष्य और कोई प्रयोजन हो ही कैसे सकता है? जब जीवन निरुद्देश्य और निष्प्रयोजन है तब फिर जगतका ही कौनसा

प्रयोजन और उद्देश्य हो सकता है ? यूरोपका समस्त सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा नैतिक जीवन आज इसी भावसे आच्छन्न है। सत्यकी शोधके लिए जिस वैज्ञानिक पद्धतिका जन्म हुआ उसने इस भावको ही परिपुष्ट किया। विज्ञान ऐसे किसी पदार्थकी सत्ता स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं है जिसका स्थूल, पार्थिव और दृष्ट स्वरूप न हो। इस दृष्टिकोणने जहाँ अंध-विश्वासों तथा रूढ़ियोंसे ग्रस्त मानवकी मूढ़ताको छिन्न-भिन्न करके उसे सत्यके दर्शनके लिए उत्प्रेरित किया—वहीं उसमें संशय और अविश्वासकी वह आग सुलगा दी जिसमें ससीम मानव-चेतना जलने लगी। आज वह अपनी सीमासे परे किसी सत्यके अस्तित्वको स्वीकार करनेके लिए तैयार ही नहीं होती। फलतः उसकी दृष्टिमें सत्यकी, कल्याणकी, सौन्दर्यकी, कोई स्वतंत्र सत्ता है ही नहीं। जीवनमें किसी आदर्शका कोई मूल्य आंकनेके लिए वह तैयार नहीं है। उसकी दृष्टिमें जीवनको आंकनेकी केवल एक कसौटी है और वह है 'उपयोगितावाद'। जिस क्षण जो बात जीवनकी रक्षा और तृप्तिके लिए उपयोगी ज्ञात हुई वही उस समय वांछनीय, ग्राह्य और सुन्दर है। जिस क्षण आवश्यकताओंने किसी दूसरी बातको उपयोगी बताया उसी समय पहलेको बदलकर दूसरेको ग्रहण कर लेना उचित है।

यूरोपकी इस दृष्टिने मानव जीवनके आध्यात्मिक अंशकी निष्ठुर उपेक्षा की है। अपने प्रकाशसे उसने वह चकाचोंध उत्पन्न कर दी है कि आधुनिक समाज दूसरे पहलूकी ओर देखनेमें

असमर्थ हो गया है। मानवका जीवन और उसकी चेतना भौतिक द्रव्यों तथा विद्युत-कणोंकी उछल कूद तथा परिस्थितियोंके घात-प्रतिघातकी सीमासे कहीं अधिक परे है इसका ज्ञान ही जैसे नहीं रह गया। स्थूल विज्ञानकी सीमा भले ही वहाँ तक न पहुँचती हो पर मानवकी अन्तर्चेतना उसकी अनुभूति करती है। इस अनुभूतिकी उपेक्षा करना भी घोर दुराग्रह और एक प्रकारका अंधविश्वास ही है। पर आज यह अंधविश्वास यूरोपकी सबसे बड़ी देन है जिसे पाकर मानव मस्त हो गया है। सरलतासे समझ सकते हो कि इस दृष्टिकोण और आदर्श पर स्थापित जीवनका स्वरूप कैसा होगा! मानवप्रकृतिमें सन्निहित प्रवृत्तियाँ और वासनाओंको तृप्तिके सिवा जीवनका और कौनसा प्रयोजन बाकी रह गया? भोग और विशुद्ध भोग, एकमात्र लक्ष्य है जिसकी ओर मानवकी समस्त शक्ति, ज्ञान, स्फूर्ति और प्रेरणा लगी रहनी चाहिये। समाजका अस्तित्व, जगतका अस्तित्व, सामाजिक नियमों और नैतिक बंधनोंकी उपयोगिता, मानव ज्ञान और बुद्धिका प्रयोजन सब केवल इसीबातके लिए है कि मानव अपनी लालसाओंकी, आवश्यकताओंकी, अधिकसे अधिक पूर्ति कर सके। जो बातें इसमें सहायक हों वे ही ग्रहणीय है और जो बाधक हों उन्हें तोड़-फोड़ डालना कर्त्तव्य है। कहा जाता है कि यही प्रक्रिया प्रगतिकी जननी है।

भौतिकताकी यह भयानक पुट सारे जीवनको ओतप्रोत कर रही है। जीवनमें जिस लालसाका प्राधान्य जितना ही अधिक

है उसपर उतना ही अधिक इस भावका रंग चढ़ा हुआ है। नारीकी समस्या और कामकी प्रवृत्तिका प्रभाव मनुष्यके जीवनपर निर्विवाद रूपसे सबसे अधिक है। फलतः इस नये विचारने उसे अपेक्षाकृत सबसे अधिक रंगा है। नारीके प्रति आधुनिक दृष्टि घृणित रूपसे भौतिक और बीभत्स हो गयी है। आश्चर्य होता है जब सोचता हूँ कि इस बीभत्सताको किस प्रकार अंधा होकर मनुष्य आज प्रगतिशीलता, सभ्यता और आधुनिकता का नाम प्रदान किये हुए है। 'नारीके अधिकार' 'नारीकी स्वतंत्रता' 'नारीको समान-पद' आदिके जोर दार नारे उठाये जाते हैं और आधुनिकताके नाम पर उसके मोक्षकी गुहार लगायी जाती है। गला फाड़ फाड़कर चिल्लानेवाले ऐसा हल्ला मचाते हैं मानो वे चिरपीड़िता, निर्दलिता, शोषिता और पराधीना, हीना, दीना और मलिना नारीजातिके परम उद्धारक होकर अवतीर्ण हुए हैं। पर इन उद्धारकोंने नारीको प्रदान क्या किया है और उसकी कल्पना किस रूपमें करते हैं इसकी ओर ध्यान तो दीजिये। उन्होंने उसे कौनसा पद प्रदान करनेकी उदारता दिखायी है? थोड़ा गहराईमें उतरकर देखो तो स्पष्ट हो जाता है कि उनकी कल्पनामें नारी मानव लालसाकी पूर्ति और उसके उपभोगकी प्रवृत्तिका पूरक होनेके सिवा और कोई स्थान नहीं रखती। आखिर वे चाहते क्या हैं? वे चाहते हैं नर और नारीको इस प्रकार उन्मुक्त कर देना कि वे अपनी काम-प्रवृत्तियोंकी तृप्ति बंधनहीन होकर कर सकें। दोनो परस्परको अपने उपभोगका साधन समझे और

प्रवृत्तियोंकी परितृप्तिका एक उपादान मानकर तत्सम जीवनका संचालन करें, यही भाव उनकी कल्पनाकी जड़में है।

भूख, प्यास, निद्राकी भाँति काम भी मानवकी सजात प्रवृत्ति है जिसकी तृप्ति सरल भावसे कर लेना जीवनका नैसर्गिक अधिकार माना जाता है। इसमें कैसा बंधन और क्यों रुकावट ? यह अस्वाभाविकता क्यों ? हृदय पत्थरका बना हुआ जड़ पदार्थ नहीं है। उसका धर्म ही है, स्वाभाव ही है बदलते रहना। कोई कारण नहीं कि उस सोतेके नीचे हाथ पसारे पड़े रहें जिसका जल सूख गया हो। जितना जब जहाँसे मिले उतनेको ही सत्य समझकर स्वीकार कर ले और जब रस सूख जाय तो उसे अन्यत्र ढूँढ़ ले। दुनियामें अपना पराया तो कोई है नहीं। पता नहीं इस महोदधिमें लहरोंके सहारे न जाने कौन कहाँसे निकट आ जाता है और फिर उन्हींके प्रवाहमें काल पाकर दूर चला जाता है। फिर इतना बंधन, भले-बुरे, नीति-अनीतिका विवाद क्यों ? क्यों इतनी खीचा-तानी की जाय ? सुखके क्षण जब जहाँ मिलें उन्हें बटोर लेना और फिर अतीतको भूलकर वर्तमान और भविष्य की चिंता करना, यही तो जीवनकी उपादेयता है। इसके विरुद्ध और सारी कल्पना निर्मूल, भ्रांत तथा दुःखका स्रोत है। संक्षेपमें यही है आजका दर्शन जिसके आधारपर नर-नारीका सबन्ध और कामकी प्रवृत्ति आश्रित है। पर इस दर्शनका अर्थ सिवा इसके और क्या हुआ कि नर और नारीने निष्ठुरतापूर्वक परस्परके शोषण, दोहन और उपभोगको ही अपने संबन्धका एक मात्र

आधार बनाया है। नरने नारीको निचोड़ कर उसका रस निकाल लेने और फिर उसे सिट्ठीकी भाँति दूर फेंक देनेके सिवा क्या कुछ दूसरी कल्पना भी की है ? नारीके व्यक्तित्वमें कला, पवित्रता तथा कोमलताकी जो आभा थी उसे विनष्ट करके उसके सौन्दर्य तथा रूपको नग्न सामने ला खड़ा करना और बीभत्स लिप्साकी कसौटीपर कसना क्या उसका घोर अपमान करना नहीं है ? यही नहीं है नारी-मोक्ष, नारी-अधिकार और नारी-स्वातंत्र्यका प्रकृत रूप !

आज नारीको ही अपने इन उद्धारकोंसे अपनी रक्षा करनेके लिए उठ खड़ा होना होगा। जिन्हें सचमुच नारीत्वकी मर्यादाके प्रति श्रद्धा है उन्हें इस प्रवाहको रोकनेकी चेष्टा करनी पड़ेगी। इसलिये नहीं कि वे नारी स्वातन्त्र्य और अधिकारके विरोधी है बल्कि इसलिये कि शब्द जालोंके आवरणमें नारोकी जो छीछा-लेदर की जा रही है वह उन्हें पसन्द नहीं है। नारी जननी है, वह माता है, वह जीवनकी शक्ति और स्फूर्ति है। इस दुःख पूर्ण और अपूर्ण तथा अभावसे भरे हुए जगतमें सुखके जो क्षण पीड़ित मानव जीवनको प्राप्त हो सकते है उनका स्रोत और साधन नारी है, माताके स्वरूपमें हो अथवा पत्नीके, सहचरी और जीवन संगिनीके रूपमें। वही जीवनकी मरुभूमिमें सुख और रसकी धारा बहाकर उसे अभिसिञ्चित करती है। स्नेह, सेवा और ममता उसके अंतःकरणका गूढ रूप है। वह अपने व्यक्तित्वसे भौतिक और अभौतिक, स्थूल और सूक्ष्म, जीवनकी समस्त

ललसाओं और कामनाओंकी पूर्ति करती है। ऐसे तत्त्वको एकमात्र भोगका साधन बनानेकी कुचेष्टा और उसे केवल एक उसी दृष्टिकोणसे देखना अज्ञान और पतनका द्योतक है। नारीका मोक्ष, उसका उद्धार और उसके अधिकार बिलकुल इसके विपरीत दिशामें है। आज तक यदि नरने सदा उसे अपनी लिप्साकी पूर्तिके साधनके रूपमें देखा है तो आज उक्त दृष्टिकोण बदलनेमें ही उसकी मुक्ति और उसका सच्चा आदर है। वह जीवन-रथकी धुरीके रूपमें ग्रहण की जाय, आत्मा और हृदयके एक पहलूके रूपमें स्वीकार की जाय और अपूर्ण जीवनको पूर्णता प्रदान करनेवाले तत्त्वके रूपमें देखी जाय। मनुष्यकी सजात और भौतिक काम-प्रवृत्तिको नियमित और व्यवस्थित करनेवाली महाशक्तिके रूपमें अवतीर्ण हो। उसका यही नैसर्गिक पद है जिसे उसे प्रदान करना चाहिये। समान पद और सच्चा अधिकार-प्रदान इसे ही कह सकते हैं। यही है उसका वास्तविक मोक्ष और उद्धार !

आधुनिकताके पुजारी बड़े गर्वसे कहते है कि यूरोपने नारी समस्या और काम-प्रवृत्तिका प्रश्न हल कर डाला है। समझमें नहीं आता कि इस प्रकारकी घोषणा करनेवालोंका अपनी घोषणासे तात्पर्य क्या है ? नारीकी समस्या और काम-प्रवृत्तिका प्रश्न है क्या ? वास्तवमें यह प्रश्न है मानव प्रकृतिके अन्तर्द्वन्द्वका। एक ओर मनुष्यकी प्रवृत्तियाँ है, इन्द्रियोंकी भोग-लिप्सा है और दूसरी ओर उसका विवेक है, उन्नत और विकसित उत्तमांश

है। एक चाहता है नारीके रूप और सौन्दर्यका भौतिक उपभोग और दूसरा केवल इतने को ही जीवनकी चाहकी पूर्तिके लिए इदमित्थं नहीं समझ पाता। एक अपनी अतृप्तिकी आगमें जलता हुआ जहाँ कहीं भी नारीके शरीरको गन्ध मिले उसे चूसकर भूख मिटाना चाहता है और दूसरा प्रवृत्तिकी इस क्रीड़ाके बंधनहीन हो जानेमें उस कोमल कलामयी पुनीत भावनाका विनाश और भ्रष्टीकरण देखता है जिसकी अनुभूति मानव चेतनता अपने गूढ रूपमें किया करती है। इस सतत, निरतर द्वंद्वमें मनुष्य सामंजस्य कैसे स्थापित करे! यही है नारीकी समस्या और काम प्रवृत्तिका प्रश्न। यूरोपने इसे हल कर दिया है, यह निर्णय वर्तमानका पुजारी प्रदान कर देता है। पर सोचनेकी बात है कि आखिर कौनसा हल यूरोपने उपस्थित किया है। वस्तुतः उसने जीवनके एक पहलूका कपाट बलपूर्वक बन्द कर दिया है और दूसरेको स्वच्छन्द अपना खेल खेलनेके लिए स्वतन्त्र कर दिया है। मानवके उत्तमांशका, उसके विवेकका, निर्दलन करके, उसकी सत्ताके अस्तित्वको भूलकर केवल प्रवृत्तियोंको अबाधगतिसे प्रवाहित होने देना, यही यूरोपका हल है। कामकी प्रवृत्ति स्वाभाविक है अत. उसके बहावको स्वाभाविक और सरल भावसे बहने देना ही उचित और स्वाभाविक ज्ञात होता है। उसके मार्गमें तरह-तरहके बंधन और तरह-तरहकी रुकावटे पैदा करना अप्राकृतिक अतएव हानिकारक और व्यर्थ है। इससे जीवनके सरल प्रवाह, उसके सुख और उसकी शांतिमें

बाधा पड़ती है। अतएव प्रवृत्तियोंकी निर्बन्ध गति स्वीकार कर लेना आजका हल है जिसपर गर्व किया जाता है !

मै पूछता हूँ कि भला यह हल क्या हुआ ? एक मनुष्य है जो आगे बढ़ना चाहता है। पर सामने भारी खड्ड है। चाहता है वह आगे कदम बढ़ाना पर नेत्र कहते है कि पैर बढ़ाया और खड्डमें गिरे। इस समस्यामें पड़ा हुआ मनुष्य उसका हल निकालता है । उसने ऑखे बन्द कर लीं, पैर आगे बढ़ाया और धड़ामसे खड्डमें जा गिरा। अब उस अंधकारावृत गह्वरमें पड़े-पड़े वह अभिमानके साथ घोषणा करता है कि मैंने समस्या हल कर डाली और अपनी इस सूझपर संतोष प्रकट करता है ! यूरोपका हल भी कुछ ऐसा ही हल है। जीवनके एक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण अंशका आपने हनन कर डाला और अर्द्धांशको लेकर उसे ही सम्पूर्ण मान बैठे। अब कहते है कि आपने सारा प्रश्न सुलझा लिया। इसका जो परिणाम हो सकता है वह स्पष्ट है। जीवनपर भोगका इतना साम्राज्य छा गया है कि उसने भ्रष्टताकी सीमा प्राप्त कर ली है। नर-नारी आज परम प्रेमके नामपर परस्पर मिलते हैं और कल दोनों अलग होते हैं और किसी तीसरेके परिरंभणमें नजर आते है ! रास्ते चलते पति-पत्नियोंका वरण किया जाता है और सप्ताहान्त तक सारा मामला खत्म हो जाता है ! काम-प्रवृत्तिका दिग्दर्शन और उसका प्रदर्शन करनेमें बेहयाईकी सीमा पार कर डाली गयी है। उन लोगोंसे पूछिये जो यूरोपकी महानगरियोंके नाइटक्लबों और पानगृहोंका चक्कर काट

आये हैं। यह है समस्याका हल! आश्चर्य तो इस बातमें होता है कि मानव इस दुर्बलताका औचित्य सिद्ध करनेमें बड़े-बड़े सिद्धान्तोंकी रचना बड़ी बुद्धिमानीके साथ करता है। इसे स्वाभाविकताका नाम प्रदान किया जाता है। गतिशीलता कहकर इसकी प्रशंसा की जाती है। यह आधुनिकता है, युग-धर्म है जिसके विपरीत आवाज उठानेवाला दकियानूस और प्रतिगामी है।

आज साहित्यमें भी इस प्रवृत्तिका उदय हो रहा है। यथार्थवाद और गतिवादके नामसे मानवकी तुच्छ प्रवृत्तियों और दुर्बलताओंका औचित्य सिद्ध करना तथा उसे उत्तेजन प्रदान करना आधुनिक अंधमूढ़ताकी पराकाष्ठा है। आखिर प्रगति है क्या? प्रगतिका मेरी दृष्टिमें तो एक ही अर्थ हो सकता है। मनुष्य नामधारी प्राणीने हजारो वर्ष पूर्व विकासकी एक धारा पकड़ी। इस नये पथके यात्री मानवके हृदयमें अपने पूर्वजोंके पशुभाव, पशु-जीवन, पशु-वासना, पशु-संस्कार भरे पड़े थे। तमाम स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ और आकांक्षाएँ उसपर हावी थीं। पर यदि उसने उनके संमुख सिर झुका दिया होता तो वह भी उसी दिशामें बह जाता जिधर उसके मूलस्रोतसे निकली अन्य जन्तुजाति बह गयी। पर उसने कुछ दूसरा ही रास्ता पकड़ा था। उसने उन मौलिक भावोंसे युद्ध ठाना, पद-पदपर उनका सामना किया। उसके लिए यह संभव न था और न है कि अपने मौलिक भावोंका सर्वथा उन्मूलन कर दे पर यह सम्भव अवश्य था और है कि उनका नियमन करे, उन्हें नियंत्रित करे, उनमें व्यवस्था

उत्पन्न करे और यथा संभव उनपर पवित्रता तथा गौरवका रंग चढ़ाये। प्रकृतिने उसे जो विवेक प्रदान किया था वह इस संघर्षका मूल कारण था और वही नैसर्गिक चेतना इस संघर्षके साथ-साथ उत्तरोत्तर जाग्रत होती गयी। इस महान संघर्षका ही परिणाम आजका मानव है। यह संघर्ष ही उसके जीवनकी पुनीत और चरम साधना रही है। इस दिशामें एक-एक कदम उसका आगे बढ़ाना ही प्रगति है। यह प्रगति ही उसके विकास और जीवनका मूलमंत्र है।

फलतः प्रगतिवादका एक ही अथ हो सकता है। मानव मौलिक पशु-प्रवृत्तियोंके प्रभावको यथासंभव कम करते हुए अपने उत्तमांशको जाग्रत करता चले और इस प्रकार महान विकासके मार्गका पथिक होकर एक दिन पूर्णताको प्राप्त करे। उसकी यह यात्रा ही प्रगतिवाद है। जिस साहित्यमें जीवनकी यह प्रवृत्ति परिस्फुटित न हो, जो जीवनके इस आदर्श और सत्यका प्रतिनिधित्व न करे वह प्रगतिवाद नही दुर्गतिवाद है। शिश्न और उदरका प्राधान्य सदा जीवनमें रहा है और रहेगा पर उसे ही सब कुछ मान लेना मानव विकासके पथको कुंठित कर देना है। पर आज दुर्भाग्यसे प्रगतिवादके नाम पर साहित्यमें यह प्रवृत्ति भी उदीयमान होती दिखाई देती है। अपने हृदयकी दुर्वलता, लालसा और भोग-प्रवृत्तिका नियमन करनेके बजाय उसे उत्तेजन प्रदान करना और शब्द-जालोके आवरणमें उसे छिपाकर वड़े वड़े सिद्धान्तोंकी स्थापना करना मानव प्रगतिके

परम पाखंडका द्योतक है जिसकी गतिका अवरोधन आवश्यक है। भारतके युवक और भारतीय युवतियाँ उच्छङ्खलताकी इस धारासे बचें, यह उनके मित्रके नाते मेरी छोटी सी सलाह है। कामकी प्रवृत्ति उठती है तो उसे ग्रहण करो पर उसका जो स्थान जीवनमें है उतना ही उसे प्रदान करो। भौतिक भोग जीवनकी एक आवश्यक चाह है पर इस चाहको अपनी सीमासे परे न जाने दो। नारी और नरके रूपका पारस्परिक आकर्षण और मोह मनुष्यकी नैसर्गिक प्रवृत्ति है जिससे प्रभावित होना अनिवार्य है, पर यह प्रभाव भ्रष्टता और उच्छृङ्खलताकी ओर न ले जाय। इन प्रवृत्तियोंके साथ साथ विशिष्ट मानव जीवनने जिस विवेकको जाग्रत किया है उसकी उपेक्षा न की जाय। नर और नारी जीवनके दो तत्त्व है जो परस्पर मिलकर सारे व्यक्तित्वको परिपूर्ण और परितृप्त करें। केवल एकांशकी पूर्तिके लिए परस्परको यंत्र बनाना मानवताका, जीवनका और नरत्वका तथा नारीत्वका अपमान करना है। आजके युवक और युवतियाँ अपने अतस्तलको टटोलें, अन्तर्मुख होकर तनिक अपनी समीक्षा करे! देखे कि जीवनमें आखिर उन्होंने कुछ आदर्शोंकी स्थापना की है या नहीं? उन्होंने जीवनके मूल्यकी माप और अंकनके लिए किन मापदंडोको स्थिर किया है। रंग बिरंगे सुन्दर परिधानोंसे सुसज्जित आकर्षक तितलियोंकी भाँति चपलता ग्रहण कर आज इस और कल उस युवककी काम-वासनाको उद्दीप्त करनेमें ही यदि उन्होने अपने सारे सौंदर्य और रूपकी शक्ति लगा रखी है तो क्या यह

नारीत्वकी मर्यादाकी रक्षा की जा रही है ? इसी प्रकार यदि युवक आज इस और कल उस युवतीके पाद पद्मोंकी पूजामें बैठना अपना पेशा बनाये हुए है तो क्या वह मानवताको असुंदर, गौरवहीन और भ्रष्ट बनानेमें ही जीवनको सार्थक नहीं समझ रहा है ?

भारतीय नारीको अपनी समीक्षा करके इसके ऊपर उठना होगा। आज जो स्थिति है उसके लिए यूरोपका एक प्रभावशील विचारक समुदाय स्वयं चिंतित है। जो प्रवाह है उसके सामने भारी प्रश्नात्मक चिह्न खड़ा हो गया है। यह प्रगति मानव समाज और संस्कृति तथा कल्याणके मार्गको प्रशस्त कर रही है अथावा कुंठित, यह भारी संदेह और प्रश्न गंभीर विचारकों और मनीषियोंके सम्मुख है। जिसे उच्छ्रृंखलताके वशीभूत होकर प्रतिगामिताका नाम प्रदान किया जाता है उसी दिशामें सोचने और समझने तथा मनन करनेका झुकाव विचारक मंडलीमें उत्पन्न होने लगा है। आधुनिक युवक और युवतीके सामने जीवनकी यह समस्या और मनुष्य होनेका उत्तरदायित्व दोनों उपस्थित हैं। उन्हींमें शक्ति है कि वे अंधमूढ़तासे अपनेको और समाजको वाहर निकाले, फिर वह चाहे आधुनिक मूढता हो या पुरातन ! वस आज इससे अधिक कुछ और नहीं लिखना है। विचार करनेके लिए और मार्ग निर्धारणमें सहायता प्रदान करने के लिए इतना काफी है।

तुम्हार
कमलापति

१३

नैनी सेण्ट्रल जेल
ता०...... ....

प्रिय लालजी,

मानव जीवनमें कामकी प्रवृत्तिकी जो समस्या है उसके संबन्धमें मुझे जो कुछ कहना है वह अभी पूरा नहीं हुआ। यह विषय ही इतना गंभीर है कि चेष्टा करके भी मैं अभीतक जानने योग्य तमाम बाते सम्यक् रूपसे न कह सका। पर जब यह चर्चा चल पड़ी है तो उसे अंततक पहुँचाना भी आवश्यक है। आवश्यक इसलिये भी है कि वह जीवनकी प्रमुख समस्या है जो यौवनारंभमें ही उग्र रूपमें प्राणिमात्रके सामने उपस्थित होती है। मानव सृष्टि और जातिकी धाराको स्थिरता प्रदानके लिए प्रकृतिने अपने विकासकी योजनामें ही मानव हृदयको ऐसे साँचेमें ढाल दिया है कि पुरुषका स्त्रीकी ओर और स्त्रीका पुरुष-

की ओर आकर्षण नितान्त सहज और स्वाभाविक हो गया है। जो प्रवृत्ति जीवनके मूलमें प्रकृति द्वारा अनिवार्य रूपसे निहित कर दी गयी हो उसकी उपेक्षा करनेकी सामर्थ्य भला किसमें है ? प्राणिजगत्के विकास और उत्थानमें इस मूल प्रेरणा और प्रवृत्तिने खास हिस्सा लिया है, इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। पर जैसाकि पूर्वके पृष्ठोंमें कह चुका हूँ मनुष्य प्रकृतिकी विशेष कला और विभूतिसे संपन्न प्राणी है अतः उसका जीवन भी अपेक्षाकृत जटिल और उलझा हुआ है। अन्य प्राणियोंकी भाँति प्रजनन और पेटकी महिमा उसके जीवनपर छायी हुई है पर अन्य जीव जन्तुओंके लिए उसका स्वरूप जितना सरल है उतना मानवके लिए नहीं है। मानवता भौतिकता और आध्यात्मि-कताका समन्वित रूप है, फलतः मनुष्यके व्यक्तित्वमें स्पष्टतः दो पहलू हैं। अपने जीवनके इन दो भिन्न अंगोंमें से वह किसी एककी उपेक्षा करके अपनेको न सुखी बना सकता है, न शान्त, न पूर्ण और न जीवनका सम्यक संचालन कर सकता है। अत-एव चाहे कोई प्रश्न हो, कोई समस्या हो, कोई ग्रंथि हो, सबको उसे उपर्युक्त दोनो दृष्टियोंसे देखना पड़ता है और देखना पड़ेगा। उसे उनको हल करनेके लिए ये दोनों पहलू सामने रखकर उनका संतुलन और उनसे सामंजस्य स्थापित करना होगा। सफल जीवन-संचालनका यही एक मात्र उपाय है।

यह प्रयत्न अत्यन्त कठोर और दुःसाध्य है इसमें संदेह नहीं, फिर भी मानव-जीवनकी यही साधना है। मनुष्यका भी मनुष्य

बनना साधारण काम नहीं है। मानव मानव हो जाय यही उसके अस्तित्व, विकास और जीवनका प्रयोजन तथा एक मात्र लक्ष्य है। यूरोपकी नयी सभ्यता और नव चेतना तथा ज्ञानने जो सबसे बड़ी त्रुटि दिखाई है वह यही है कि इसने मनुष्यके जीवनके एक पहलूकी ऐसी घोर उपेक्षा की है कि उसकी सारी सजीवता, स्फूर्ति. विचारशक्ति और वैज्ञानिक सफलता भी मनुष्यको मनुष्य बनानेमें सफल नहीं हो रही है। उसने मनुष्यको आकाशमें उड़ना अवश्य सिखा दिया और असीम महोदधियोंका संतरण कर जानेकी क्षमता भी अवश्य प्रदान कर दी पर इस धरातलपर रहना कैसे होता है, यह शिक्षा वह न दे सका। फलतः आज यूरोपकी आग न केवल यूरोपकी सभ्यताको बल्कि समस्त मानव जातिको जलाकर राखकी ढेरी वनाया चाहती है। पश्चिमके तत्त्वदर्शियोंके सामने यह प्रश्न नग्न रूपमें उपस्थित हो गया है कि पश्चिमी सिद्धान्त, सामाजिक जीवन, और उसका वैज्ञानिक ज्ञान तथा आर्थिक और राजनीतिक संघटन इस शताब्दिमें ही लुप्त हो जायगा अथवा उसके बचावकी भी कोई आशा की जा सकती है ? अपने समस्त ज्ञान, शक्ति, कला-कौशल, समृद्धि और ऐश्वर्यको लिये हुए यूरोप इस भयावने ज्वालामुखीके शिखरपर अपनेको पहुँचा पा रहा है जिसके विस्फोटकी ज्वालामें भस्मसात् होना अवश्यंभावी हो गया है। यह परिणाम है उस भूलका जो यूरोपने जीवनको ठीक ठीक न समझनेके कारण की है। उसने वास्तविक तथ्यको पूर्ण रूपसे देखा ही नहीं। उसने

यह नहीं समझा कि जीवन केवल भौतिक नहीं है और न केवल भौतिक शक्तियोंपर विजय प्राप्त कर लेना काफी है। जीवन और सभ्यताकी पूर्णताके लिए बाह्य प्राकृतिक शक्तियोंपर विजय प्राप्त करना यदि आवश्यक है तो उससे भी कहीं अधिक आवश्यक आन्तरिक प्राकृतिक प्रवृत्तियों और शक्तियोंपर विजय प्राप्त करना है, इस मौलिक सत्यका साक्षात्कार यूरोप नहीं कर सका।

जब सामूहिक रूपसे सारे जीवनको उसने इसी दृष्टिसे देखा तो फिर नर-नारी और कामकी प्रवृत्तिको भी क्यों न देखता? काम-प्रवृत्ति उच्छृङ्खल होकर और विशुद्ध भौतिक रंगसे अपनेको रंगकर जीवनका सत्यानाश कर सकती है, अतृप्ति और भोगकी बुभुक्षा भी प्रज्वलित कर सकती है तथा समाजमें हाहाकार नचाकर नर और नारीकी विशिष्टता तथा मर्यादाको धूलमें मिला सकती है। जो प्रवृत्ति जीवनमें पूर्णता प्रदान कर सकती है और उसे अनन्त रस, शान्ति और सुखकी लहरोंमें लहरा सकती है उसका दुरुपयोग अंधे होकर करना मानवताके पथको कुंठित कर रहा है, यह अनुभव यूरोपको नहीं हुआ। आज विचारोंकी यह धारा और जीवनका यह ढंग इस देशको भी प्रवाहित कर रहा है। इस खतरेसे तुम जैसे नवयुवकोंको सावधान करनेके लिए ही मैंने इतना लिखा है। पर मैं केवल निषेध मार्गका ही अवलंबन करना नहीं चाहता। यूरोपका दृष्टिकोण अनुचित, एकांगी तथा मिथ्या-ज्ञानसे उद्भूत हुआ है, यह बता देना सरल है पर प्रश्न रह जाता है कि अन्ततः मनुष्य इस संबंधमें कौनसा

मार्ग ग्रहण करे और जीवनके प्रति किस दृष्टिकोणका अवलंबन करे। मैं यदि एक शब्दमें इसका उत्तर देना चाहूँ तो यह कहकर दे सकता हूँ कि मानव मानवीय मार्ग ग्रहण करे और मानवीय दृष्टिकोणसे जीवनको देखे। मानव जीवन जिन विशिष्टताओं, विशेष प्रवृत्तियो और विशेष गुणोंको लेकर मानव हुआ है उन सबके अनुकूल तथा उनकी सर्वांगीण अनुभूतिके आधार पर आश्रित जीवन ही मानवीय कहा जा सकता है। मानवकी उन विशेषताओपर विचार करते हुए अपनी इस एकान्त कोठरीमें मै अतीतके न जाने कितने विशद और असीम अंचलका दर्शन करने लगा हूँ। मै सोचने लगता हूँ कि आँखोके सामने सृष्टिका जो विस्तार विश्वके रूपमें फैला हुआ है उसमें विचरण करनेवाले मानव नामधारी प्राणीकी कहानी कितनी विचित्रतासे भरी हुई है। इस कहानीका आरंभ हुए न जाने कितनी सहस्राब्दियाँ बीत गयीं। सुनता हूँ और विद्वानोंकी लिखी पुस्तकोंमें पढ़ता हूँ कि इस भूमंडलका, जिसमें मानवका निवास है, जन्म हुए दो अरब वर्ष बीत चुके है। तबसे यह पृथ्वी आजतक बिना रुके हुए निश्चित मार्ग पर निश्चित गतिसे सूर्यकी परिक्रमा करती चलती जा रही है। यह भी सुनता हूँ कि इस दुनियामें एक समय ऐसा था जब कोई भी प्राणी नहीं था। उस समय यह गोला, निर्जीव और प्राणहीन होते हुए भी अपना काम करता जा रहा था। पर इन दो अरब वर्षोंके भीतर इस पृथ्वीका स्वरूप न जाने कितनी बार बदल चुका। समय आया होगा जब

धरातल प्राणके संचारके योग्य हुआ होगा। फिर तो उसके गर्भसे न जाने कितने असंख्य जीव जन्तु उत्पन्न हुए होंगे और विनष्ट हो गये होंगे। इन जीवोंकी न जाने कितनी जातियाँ पैदा हुईं जिनका अब पता भी नहीं है क्योंकि वे धरतीसे ही लुप्त हो गयीं। न जाने कितने प्रकारके प्राणियोंकी हड्डियाँ अबतक पहाड़ोंकी हिमावृत चोटियों पर अथवा पृथ्वीके उदरमें न जाने कितने पर्त नीचे तथा समुद्रोंके अंधकाराच्छादित तलमें मिलती है। वे हड्डियाँ ऐसे जन्तुओंकी है जिनका किसी युगमें पृथ्वीपर आतंक रहा होगा पर आज उनकी जातिकी जातिका नाम-निशान भी मिट गया है। वे कभी थे इसका पता भी उनके अवशिष्ट कंकालसे ही लगता है। जो नष्ट हुए उनके स्थानपर दूसरे जीव जंतुओंने जन्म लिया जिनमेंसे भी कुछ नष्ट होते जा रहे हैं और उनका स्थान कुछ नये लेते जा रहे हैं। सृष्टि-विकास-का यह क्रम न जाने किस अतीत कालसे चला आ रहा है और कदाचित इसी प्रकार न जाने कबतक चलता जायगा। विकासके इसी क्रममें एक समय ऐसा आया जब स्तनपायी जन्तुओंकी सृष्टि हुई। मनुष्य भी इन्हीं स्तनपायी जन्तुओंकी जातिका एक प्राणी है। पृथ्वीपर प्रथम मनुष्य कैसा रहा होगा, इसकी कल्पना करना भी कठिन है।

पृथ्वीके विभिन्न स्थानोंमें चट्टानोंके नीचे ऐसे प्राणियोंके कुछ अस्थिपंजर मिले है जिनके अध्ययनसे पंडित लोग तत्कालीन मानवकी कल्पना करते है। इन अस्थिपंजरोंमें आजके मनुष्यके

शरीरकी रचनाका बीज उपस्थित मिलता है। अफ्रिकाकी कुछ चट्टानोंमें, भारतके शिवालिक पहाड़पर, फ्रांस, हंगरी और जावामें ऐसी ठठरियाँ मिली हैं जिनके शरीरकी बनावटमें मानव शरीरके ढाँचेकी झलक दिखाई देती है। पर आजके मनुष्यकी विशेषताओंकी धुँधली छाया दूरसे भी उसपर पड़ी दिखाई नहीं देती। जिस किसी प्राणीका वह कंकाल हो उसे मनुष्यका नाम देना तो दूर रहा, उसमें उसका स्पर्श भी नहीं है। आजके वैज्ञानिक विद्वान् जिज्ञासा और सत्यके शोधकी उत्सुकतामें कल्पना करते हैं कि शायद इसी प्राणीने दो मार्ग पकड़े होंगे। उसकी एक धाराका झुकाव पशुत्वकी ओर हुआ होगा जो कदाचित तरह-तरहके बानरोंकी जातिमें परिणत हो गयी होगी और दूसरी धारा जिसपर विकासके प्रकाशका आलोक झलक उठा होगा, दूसरी गतिमें बह चली। संभवतः विकासकी इस धाराको पकड़नेवाले ही मानव हो चले। मालूम नहीं यह कल्पना सही है अथवा मानवकी रचना किसी चिन्मय विश्वात्माकी अनन्त चेतना और उसकी लीलाकी अभिव्यक्तिके रूपमें सीधे सीधे हुई है। पर मानवकी उत्पत्तिके संबंधमें सत्य चाहे जो हो इतना तो निश्चित ही है कि विकासकी धाराने सबसे उत्तम और महान् जिस प्राणीको बनाया है वह है मनुष्य। इस मनुष्यने न जाने कितनी आफतों और कितने संकटोंको सहते हुए, तूफान, अंधड़ों और प्राकृतिक कठिनाइयोंको झेलते हुए, खूँखार जीवजन्तुओंसे अपनेको बचाते हुए, तरह-तरहकी प्राकृतिक और सामाजिक उथल-

पुथलका सामना करते हुए अपनेको आज उस स्थानपर पहुँचाया है जहाँ वह प्रतिष्ठित है। विचार करता हूँ तो मानवकी महा-यात्रापर अभिभूत हो जाता हूँ। आदि मानवकी कठिनाइयोंकी कल्पना तो करो। भयानक आंधी, तूफान, प्रचंड बरसात और हिमपात, भूकंपन और विस्फोटका सामना करना पड़ा होगा। उसके चारों ओर भयानक जीवजन्तुओंका साम्राज्य रहा होगा। जलमें, थलमें, आकाशमें, और पर्वत तथा जंगलोंमें कैसे कैसे भयानक जन्तु रहते रहे होंगे। इन सबसे उसे अपनी रक्षा करनी पड़ी होगी। पेड़ोंपर और वन-पर्वतकी गुफाओंमें लाखों रात और लाखो दिन उसे काटने पड़े होंगे।

पर इन तमाम कठिनाइयों और परिस्थितियोंका सामना करते हुए मानवजाति आगे बढ़ती चली गयी है। अतीतके किसी सुदूर युगमें विकासकी जो धारा उसने पकड़ी थी वह उसे उत्तरोत्तर पशुतासे दूर किसी ऊँचे स्तरकी ओर लिये चली गयी है। एकके बाद दूसरे प्रकृतिके अनन्त पटोंको उलटते हुए और उसके रहस्यको देखते हुए मानव आज भी आगेकी ओर गतिशील है। कल्पना करो कि विकासकी यह महती यात्रा कितनी आश्चर्य-मय है? पर इस यात्राका कुछ प्रयोजन भी रहा है अथवा प्रकृतिने मनुष्यको विकासका पथिक बननेके लिए निश्प्रयोजन ही उत्प्रेरित किया है? यह प्रश्न ही जीवनके रहस्यको उद्घाटित करता है। स्पष्ट है कि विकासकी इस गतिमें ही उसका प्रयोजन दिखाई देता है। मालूम होता है कि प्रकृतिने जीवनकी सृष्टि इसीलिये की है कि वह

पदे पदे विकसित होता चले, उन्नत होता जाय और आगेकी ओर गतिशील रहे। एक दिन इस गतिके फलस्वरूप वह पूर्णता, विकासकी पूर्णता, जीवनकी पूर्णता प्राप्त करे। इस सत्यका आभास विकासकी गतिके इतिहासमें ही झलक जाता है। हम स्पष्ट देख रहे हैं कि जीवन और उसकी रक्षाके संघर्षका उद्देश्य है विकास, उन्नत पथाभिगमन जो प्रकृतिको वांछनीय है और जो उसका अटूट नियम है। इसी महती उत्प्रेरणाके वशीभूत होकर किसी कालमें किसी प्राणीने मानवताकी ओर कदम उठाया। उसने जीवनके प्रति, आचार और रहन-सहनके प्रति, आचरण और विचारके प्रति नया मानवीय दृष्टिकोण पकड़ा। प्रकृतिने इस प्राणीको अन्य जन्तुओंकी भाँति सहज प्रवृत्तियाँ तो प्रदान की ही थीं पर इसके साथ-साथ उसे अभिनव चेतना, अभूतपूर्व विवेक और विचारकी शक्ति भी प्रदान की थी। उसकी यह विशिष्टता उसी प्रकार उसका स्वाभाविक, सहज और सजात गुण है जिस प्रकार उसकी प्रवृत्तियाँ।

इन तमाम विशेषताओंको लिये हुए मानवने अपनी यात्रा आरंभ की थी। इस कठोर साधनामें उसे तरह-तरहके अनुभव हुए, तरह-तरहकी आवश्यकताएँ प्रतीत हुईं और तरह-तरहके साधनोंको ग्रहण करना पड़ा। अपने अनुभव और अपनी आवश्यकताके अनुसार जीवनमें उसे नये-नये प्रयोग करने पड़े। इन प्रयोगोंके फलस्वरूप उसे नयी अनुभूतियाँ और नया ज्ञान प्राप्त होता गया। स्मरण रखनेकी बात है कि मानव-जीवनकी

साधना थी अपने मूल पशुभाव, पशु-संस्कार तथा पशु-जीवनसे ऊँचे उठकर मानवताकी ओर बढ़ना। उसकी इस प्रगतिके संघर्षमें तरह-तरहकी परिस्थितियाँ सामने उपस्थित होती रही। आखिर सामूहिक रूपसे जगत भी तो विकासशील ही है। जो विकासशील होगा उसमें गति होगी और जिसमें गति होगी उसमें होता रहेगा परिवर्तन। परिवर्तित स्थितिके अनुकूल आवश्यकताएँ भी परिवर्तित होती रहेंगी। फलतः नये-नये प्रयोग करने पड़ेंगे और उसीसे नयी अनुभूतियाँ प्राप्त होंगी। जीवनको मानवताकी ओर ले जानेमें जो बातें सहायक हुई वे ग्राह्य हुई और जो निकम्मी तथा निरुपयोगी दिखाई दीं वे तिरस्कृत और त्याज्य हुई। इन हजारों वर्षोंके संस्कार, परिस्थियोंके घात-प्रतिघात और अनुभूतियोंका परिणाम आजका मानव है। इनके फलस्वरूप समय समय पर उसे जो ज्ञान हुआ, जीवनके जो सत्य दिखाई दिये, उनका जो जो आदर्श फल था उनके आधारपर उसने जीवनके संचालनके नियम बनाये, आचारोंको जन्म दिया, समाजके संघटनकी व्यवस्था बनायी, संस्थाओं और परम्पराओंका निर्माण किया, रहन-सहनका ढंग पकड़ा। युग-युगका उसका यह प्रयत्न और उसकी यह प्रक्रिया ही संस्कृतिके नामसे विख्यात है। मानव विकासकी गति ही संस्कृतिके रूपमें मूर्तमान होकर मानव समाजके इतिहासमें प्रकट होती है।

फलतः स्पष्ट है कि विकासकी ओर जीवनकी गतिकी मूल प्रेरणा है पशुभाव छोड़कर किसी उन्नत मानवीय स्तरकी ओर

बढ़ाव। इसीके लिए मनुष्यने अबतक संघर्ष किया है। प्रवृत्ति मूलक उसके इस संघर्षमें उसका साधन और उसका शस्त्र उसकी विवेकमूलक चेष्टा रही है। यही है आधार जिसपर भव्य सांस्कृतिक भवन निर्मित हुआ है। प्रवृत्तियोंके चपेटमें पड़कर भी मनुष्य अपने विवेकको नहीं भूल सकता। यही मानवताका विशिष्ट गुण है। जन्तुको प्यास सताती है और वह झटसे पानी पीने लगता है। उसके लिए यह प्रश्न ही नहीं है कि जो जल वह ग्रहण कर रहा है वह पेय है अथवा नहीं। यदि पनालेमें पानी बह रहा हो तो पशु उसे बिना किसी संकोचके ग्रहण कर लेगा। उसे केवल दो बातोंका ज्ञान है। प्यासकी अनुभूति और उसकी तृप्तिके लिए जलका साधन। उसके जीवनकी समस्या इतनेसे ही हल हो जाती है। मानवको भी जलकी पिपासा पशुकी भाँति ही सताती है पर उसके सामने केवल जलका प्रश्न नहीं है। उसे यह भी देखना है कि जो जल वह पीने जा रहा है वह ग्राह्य और पेय है अथवा नहीं। पनालेका पानी वह न ग्रहण करेगा चाहे घंटों पिपासासे आकुल होना पड़े। यही मानवीय दृष्टिकोण है और यही है उसका गुण। इस गुणका परित्याग करना मानवतासे नीचे गिरना है। यह स्पष्ट है कि मनुष्यके स्वभावमें आदि प्रवृत्तियाँ भरी पड़ी है। उसमें लालसा है, वासना है, और इन्द्रियों तथा हृदयकी भौतिक-भोग-लिप्सा है। प्रकृति-प्रदत्त इन उपादानोंसे मनुष्य सर्वथा निर्मुक्त हो जाय अथवा इनका समूल उन्मूलन कर सके यह संभव नहीं है। मैं

उन लोगोंमें नहीं हूँ, जो यह मानते है कि इनके सम्पूर्ण दमनमें ही जीवनकी सार्थकता है। मैं इस पथको भ्रान्त तथा अस्वाभाविक समझता हूँ, जो जीवनको अधिक क्षुब्ध और दुखानुशायी बनाये बिना न छोड़ेगा। पर जहाँ इनका अस्तित्व मिटा देना अस्वाभाविक है वहीं उन्हें उच्छृङ्खल होकर नाचने देना स्पष्टतः मनुष्यके लिए अस्वाभाविक है। आँखें मूदकर प्रवृत्तियोंकी पूर्ति, वासनाओंकी तृप्ति अमानवीय है जो उसके सहज गुण विवेककी सत्ताको मिटा देना है। अनावश्यक उस विभूतिका संहार करना जिसे प्रकृतिने प्रदान किया है सदाके लिये जीवन और समाजको पथभ्रष्ट कर देना है।

पर वासनाओंका अभाव भले ही न किया जा सके, मनुष्यका विवेक उनका संतुलन करनेमें निस्संदेह समर्थ है। उसकी यही उपयोगिता है कि वह पशुता और मानवतामें सामंजस्य स्थापित करे। प्रवृत्तियोके खेलको सीमाबद्ध करना और उनपर नियंत्रण तथा अनुशासन स्थापित करना उसकी पुनीत साधना रही है। इस संतुलनके द्वारा वह आदि प्रवृत्तिका दमन नही करता पर जीवनमें सामंजस्य स्थापित करके उसे अधिक सुन्दर, सत्यके अधिक निकट और अधिक कल्याणमय तथा आनन्दप्रद अवश्य वना देता है। जो आचरण, जो ढंग, जीवनको अधिक सुंदर, सत्यके अधिक निकट और अधिक सुखप्रद तथा कल्याणमय वना सके वही नैतिक है और जो विपरीत दिशामें ले जाय वही है अनैतिक। जीवनके मूल्यको आंकनेकी कसौटी यही है क्योंकि

यही उसके विकासके पथको प्रशस्त करती है। प्रवृत्तियोंको सीमा-बद्ध करना मनुष्यकी सतत चेष्टा रही है। यही चेष्टा सभ्यताकी जननी है। कोई कारण नहीं है कि नर-नारीके काम-सम्बन्ध और मानवकी काम-प्रवृत्तिके विषयमें भी यह नियम लागू न किया जाय। विवेकको छोड़कर यदि मनुष्य इस प्रवृत्तिको मनमाना रास रचने दे तो फिर उसके लिए स्वेच्छाचारी बन जानेके सिवा और कौनसा मार्ग रह जायगा? असंयत, विवेकहीन और स्वच्छन्द जीवन यदि मानवताके आचरणका उत्प्रेरक तत्त्व हो जाय तो फिर स्वार्थ-साधनके लिए राक्षसकी भाँति समाजको उद्ध्वस्त करनेमें भी वह संकोच क्यों करेगा?

फिर समाजके सिवा वह मानव व्यक्तित्वको भी नष्ट कर देगा। जो प्राणी प्रवृत्तियोंका आश्रयस्थल होते हुए भी कोमल भावों तथा पुनीत और कलामयी कल्पनाओंका अधिकारी है, जिसमें अनुभूति है, जो सृष्टिके मूलमें निहित सत्य और सौंदर्यकी मोहिनी झलक प्रकृतिके अनन्त विस्तारमें पा लेता है वह यदि, अपने चेतनांशकी निर्दय अवहेलना करके अधांशको ही पकड़ता है तो उसकी विभूति और ऐश्वर्य कहाँ रहा! फलतः दोनोंका समन्वय करना ही है और संयम ही उस समन्वयका प्रतीक है। आजकी दुनियामें विचारकोंका एक समूह है जो इस संयमकी प्रवृत्तिको अप्राकृतिक और अनावश्यक समझता है। पर आज इस विचारकी जड़ हिल गयी है। प्राणि-जगत्‌के विद्वानोंमें ऐसे लोग हैं

जो अपनी खोज और अध्ययनके आधारपर बिल्कुल इसके विपरीत परिणामपर पहुँचे है। उनका कहना है कि संयमकी प्रवृत्ति उन आदिम मनुष्योंमें भी पायी जाती है जिन्हें हम बर्बर कहते है। इस धारणाको कि संमयका उद्भव उस समय हुआ जब मनुष्यने सभ्यता अपनायी वे भ्रांत और निर्मूल समझते हैं। प्रायः सभी आदिम मनुष्य-समाजोंमें नर-नारीका काम-संबंध जटिल बंधनोंसे आबद्ध पाया जाता है और उनमें अनियंत्रणका तो अभाव ही दीखता है। जो पुरुष जब चाहे जिस स्त्रीसे संबंध कर ले, यह स्थिति उनमें नहींके बराबर है। यह हालत आदिम मानव-जातियों तक ही परिमित नहीं है। पशु-समाजका अध्ययन करनेवाले अनेक प्रामाणिक विद्वान् बताते हैं कि पशुओंमें काम-प्रवृत्ति और नर-मादाके संबंधमें संयम नहीं होता, यह विचार भी निराधार है। साधारणतः पशुओंमें देखा गया है कि जो प्राणी सामाजिक हैं, समूहोंमें रहते हैं उनमें काम-संबंध नियंत्रित पाया जाता है। बहुधा यह प्रतीत होता है कि सामाजिक प्रवृत्ति बढ़नेपर क्रमशः नर-मॉदाका संबंध नियमित होता जाता है। वे तो कहते है कि सामाजिकताकी ओर प्रगतिका पहला कदम नियंत्रणकी यह प्रवृत्ति ही होती है। पशु-जीवनमें एक मादाका बहुपुरुषोसे सम्बन्ध कम ही पाया जाता है। बहुतसे पशु और पक्षी भी ऐसे हैं जो एक वार जोड़ा वना लेने पर जीवन-पर्यन्त अपना सम्बन्ध बनाये रहते है। जैसे जैसे सामाजिक प्रवृत्ति बढ़ती है वैसे-वैसे काम-संबंधको स्थायी वनानेकी प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती है।

बंदरोंकी अधिकतर जातियोंमें तो यह स्थायित्व विशेष रूपसे पाया जाता है। गोरिल्ला और शिपाजी आदि बड़े बंदर दलमें रहते हैं। मादा, नर और उसके बच्चे मिलाकर उनके परिवार होते हैं। वे जोड़े अक्सर प्राण रहते एक दूसरेको नहीं छोड़ते। इनमें परस्पर आसक्ति देखी जाती है। यहाँ तक देखा गया है कि यदि इन जोड़ोंको परस्पर अलग कर दिया जाय और यदि महीनों अलग रखनेके बाद छोड़ दिया जाय तो वे फिर एक दूसरेको ढूँढ़ कर मिल जाते हैं। जंगली खरगोशोंमें एक पत्नीव्रत दिखाई देया है। पक्षियोंमें तोते, कबूतर, जंगली बत्तक एक जोड़ा बना लेते हैं तो जीवनपर्यन्त नहीं टूटता। पशु-जीवनका यह अध्ययन मानव-प्रकृतिके रहस्यपर प्रकाश डालता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है अतः संयमकी प्रवृत्ति प्रकृति प्रदत्त है। उसे अस्वाभाविक कहना अपने अज्ञानका परिचय देना हैं। विशुद्ध भौतिकतासे जिनकी दृष्टि मलिन हो गयी है और जो जीवनको एकही संकुचित दृष्टकोणसे देखते है वे मानव-जीवनके इस पहलूपर नजर ही नहीं डाल पाते। उनकी दृष्टिमें जीवनका सारा क्लेश और जगतका सारा असंतोष और उसकी समस्या काम-प्रवृत्तिके संयम और नियमनसे ही उद्भूत हुई है। मै समझता हूँ कि मानव स्वभाव और उसके मूल स्वरूपके सम्बन्धमें उनका ज्ञान अधूरा है।

भारतके उन प्राचीन विचारकोंने, जिन्होंने जीवनमें संयमकी स्थापना की ओर मनुष्यका ध्यान आकृष्ट किया संभवतः मानव प्रकृतिके मौलिक स्वरूपको और उसकी पेचीदगीको अपेक्षाकृत

अधिक समझते थे। भोगोंका संपूर्ण त्याग जितना अस्वाभाविक और असंभव है इनका उच्छृङ्खल उपयोग भी उतना ही अधिक अमानवीय और अनर्थकर है। इन दोनोंके बीचका मार्ग संयमका मार्ग है, जो स्वाभाविक भी है और मानवीय भी। इस सुवर्ण-पथकी ओर संकेत करके उन्होंने मनुष्यके जीवनकी इस समस्याको हल करनेका उचित उपाय और उसको प्रकृतिके सम्बन्धमें अपने वास्तविक ज्ञानका परिचय दिया है। भोगोंकी परितृप्ति और वासनाओंका शमन आँखें मूदकर उपभोग करनेसे नहीं हो सकता। केवल भोग तो भोगकी लिप्साकी आगमें घृत डालनेका ही काम करेगा जो जीवनको सदा जलाता रहेगा। वासनाओंकी तृप्ति केवल बहिर्मुख होनेसे नहीं हो सकती क्योंकि तृप्ति और अतृप्तिका सम्बन्ध कुछ भीतरसे भी है। अत: विवेकपूर्ण उपभोग और प्रवृत्तियोंकी सीमाबद्धता ही धीरे-धीरे उसकी चेतनाको जाग्रत करेगा जो एक दिन जीवनमें उस कला, पवित्रता, सत्य और सौंदर्यकी अनुभूति करेगी जिसकी ओर मानव-विकासकी धारा उत्प्रेरित है। जीवन एक कला ही है पर कलाका ही दूसरा नाम व्यवस्था है। व्यवस्था में ही कलाकी अभिव्यक्ति होती है। स्वरलहरी जब व्यवस्थित होकर प्रवाहित होती है तब वह संगीतके, कलाके रूपमें प्रकट होती है। पर बड़े-बड़े गायक भी अव्यवस्थित ढंगसे गाना आरंभ कर दें तो वह संगीत नहीं कर्णकटु होहल्लाका ही एक रूप होगा। व्यवस्था ही किसी मोहक भवनको कलाका रूप प्रदान करती है अन्यथा वह ईंट

और पत्थरोंके ढूहके सिवा कुछ दूसरा न रहेगा। जीवन भी यदि कला है तो उसमें व्यवस्था होनी चाहिये। यदि उसमें कला नहीं है तो मानव शरीर हाड़-मांसके घृणित लोथड़ेके सिवा और कुछ नहीं है। आज मैं विचारोंकी शृङ्खलाको यहीं तोड़ता हूँ और इन पंक्तियोंको यहीं समाप्त करता हूँ। विश्वास करता हूँ कि इन वाक्योंसे तुम्हारे विचार सजग हो उठेंगे। तबसे कुछ और लिये हुए मैं उपस्थित हो जाऊँगा।

तुम्हारा
कमलापति

१४

नैनी सेण्ट्रलजेल
ता०..........

प्रिय लालजी !

संयम मनुष्यकी उस चेष्टाका नाम है जिसके द्वारा वह अपनी प्रवृत्तियोंको अधिकाधिक परिष्कृत, पुनीत, कलामय और नियंत्रित करनेके लिए अति आरम्भिक कालसे यत्न करता आया है। मानव-समाजके इतिहासपर यों ही उड़ती हुई दृष्टि डालनेपर भी इस मोटे सत्यका आभास सरलतासे मिल जाता है। मानवताके विकासमें एक समय रहा होगा जब आरम्भिक मनुष्य कच्चा मांस खाता रहा होगा, शायद इधर-उधर घूमता फिरता रहा होगा और गुफाओंमें या वृक्षोंकी डालियों पर सोकर और बैठकर अपना जीवन बिताता रहा होगा। पत्थरोंसे उसने अपने अस्त्र शस्त्र बनाये होंगे क्योंकि उसे धातुओंका ज्ञान उस समय नहीं

हुआ था। उन्हीं आयुधोंसे उसने अपने शत्रुओंसे अपनी प्राण-रक्षा की होगी और उन्हींका उपयोग पशुओंका शिकार करनेमें किया होगा जिनका मांस खाकर उसने अपनी उदर-पूर्ति की होगी। उस अति आरम्भिक युगमें भी कामकी वासना उसे सताती रही होगी, क्योंकि मानवजातिके जीवनकी दीप-शिखाको जलाये रखनेके लिए प्रकृतिने उसमें नर-नारीके संयोगकी इच्छा भर दी थी। निस्सदेह उस समय काम-प्रवृत्तिकी पूर्तिके लिए आरम्भिक कालसे स्त्री-पुरुष परस्पर मिल जाते रहे होंगे। शायद उनका सम्मिलन कुछ उसी प्रकारका होता रहा होगा जिस प्रकार पशुओंमें होता है। न विशेष बंधन रहा होगा, न इस प्रवृत्तिको चरितार्थ करने पर किसी प्रकारका आवरण! वह अवस्था विशुद्ध संकरताकी रही होगी। पर समय आया होगा जब इस स्थितिमें परिवर्तन होने लगा होगा। न जाने कितनी बातोंका प्रभाव मनुष्यपर पड़ा होगा।

तत्कालीन मानवमें सामाजिकताकी प्रवृत्ति उत्पन्न हुई होगी। उसने अनुभव किया होगा कि शत्रुओं तथा जीवजन्तुओंके आक्र-मणसे बचनेके लिए अकेले अकेले घूमते फिरते रहनेकी अपेक्षा समूहोंमें रहना अधिक उपयोगी तथा हितकर है। फिर उसकी अपनी आर्थिक समस्याएँ भी उत्पन्न हुई होंगी। उसे अग्निका पता चला होगा। मांसको भूनकर खानेमें और फल मूल एकत्र करके उसे भोज्य बनानेमें उसे अधिक रसका भान हुआ होगा। जीवनोपयोगी भोज्य सामग्रियोंकी प्राप्तिमें उसने श्रम

विभागकी आवश्यकता प्रतीत की होगी। पुरुष शिकार करके और फलमूल बटोर कर लावे, स्त्रियाँ उन्हें आगमें भूनें, समूहमें जो बच्चे हैं उनकी रक्षा और प्रतिपालन करें, इसकी आवश्यकता मालूम हुई होगी। फिर और समय बीता होगा जब मनुष्यको पशुओंके पालनकी युक्ति सूझी होगी। समूहके समूह अपने ढंगरोंको लिये दिये चरागाहोंकी खोजमें इधर-उधर घूमते रहे होंगे। वे इन पशुओंका मांस खाते थे और इन्हींके चमड़े पहन-कर सर्दी गर्मीसे अपनी रक्षा करते रहे होंगे। इनके समूहोंमें स्त्री, पुरुष, बच्चे सब सम्मिलित रहे होंगे। आदि मानवको अपने समाजके इस स्तर तक पहुँचनेमें न जाने कितनी सहस्राब्दियाँ बीत गयी होंगी। स्पष्ट है कि इस कलामें स्त्री-पुरुषके संबंधकी मूल प्रेरणा कामकी प्रवृत्ति ही रही होगी। काम-संबंधमें संभवतः न कोई स्थायित्व रहा होगा और न व्यवस्था। संकरताकी स्थिति पूरी तरह वर्तमान रही होगी। परिवार रहे नहीं होंगे, यद्यपि समूहके समूह एक ही परिवारकी भाँति रहते थे। बच्चोंका पिता कौन है इसका कोई पता न रहा होगा। सब बच्चे समूहके बच्चे थे। उनका पृथक अस्तित्व मासे रहा होगा क्योंकि अबतक पितृमूलक परिवारका उदय नहीं हुआ था।

बहुत-सी बर्बर तथा आदिम मानव-जातियोंमें अबतक कुछ ऐसी ही स्थिति वर्तमान है। यह सच है कि काम-संबंधमें उनमें भी किसी न किसी प्रकारका नियंत्रण देखा जाता है पर उस प्रकारके बंधन और नियम नहीं होते जैसे सभ्य-जातियोंमें मिलते

हैं। बर्बर जातियोंके जीवनका अध्ययन करनेवाले कहते हैं कि कुछमें तो यह प्रथा है कि एक समूहके स्त्री-पुरुषोंमें आपसमें काम-संबंध होता ही नहीं। एक समूहके स्त्री-पुरुष साथ साथ किसी पर्वतकी उपत्यकामें अथवा नदीके तटपर बसे रहते है और वैसा ही दूसरा समूह दूसरी ओर बसा रहता है। वर्षके एक निश्चित समयमें ये समूह परस्पर मिलते है। एक समूहका पुरुष दूसरे समूहकी स्त्रीसे और दूसरे समूहका पुरुष पहले समूहकी स्त्रीसे मिल जाते है। इस मिलनके लिए वे उत्सव रचते है जिसमें स्वच्छन्दता पूर्वक दोनों समुदायोंके स्त्री-पुरुष आते हैं और नाचते-गाते तथा आनन्द मनाते है। इसी समय उनका संबन्ध हो जाता है। ये उत्सव कुछ सप्ताह तक चलते है जिसकी समाप्तिके बाद दोनो समुदाय पुनः अलग हो जाते है। फिर इनका सम्मिलन तबतक नहीं हो सकता जबतक उत्सव का वही समय न आवे। इस बीच यदि कोई स्त्री-पुरुष परस्पर संबन्ध करता मिले तो उसे कड़ा दंड दिया जाता है। इसी प्रकार स्त्रियाँ गर्भ धारण करती है। जो बच्चे होते हैं उनकी माता-का पता तो स्वाभाविक है पर पिता अज्ञात रहता है। सारे बच्चे समुदायकी ही संपत्ति होते है।

कुछ जातियोमें एक हीं समुदायके स्त्री-पुरुषोमें भी संबन्ध होता है पर उसमें भी कड़ा नियंत्रण दिखाई देता है। इन समूहोमें सब स्त्रियों अलग रहती है और सारे पुरुष अलग। जब तक निर्धारित समय न आवे तबतक स्त्री-पुरुष न मिलते है और

न यौन संबन्ध करते हैं। वर्षके किसी समय यह सम्मिलन उत्सवों आदिके रूपमें होता है और जबतक होता है तबतक यह संबन्ध भी चलता है। उसकी समाप्तिके साथ साथ उनका काम-सबन्ध भी समाप्त हो जाता है। स्त्रियों और बच्चोंको एक साथ रखते हैं, जो पुरुषोंसे अलग रहते हैं फिर भी उनकी रक्षा और भरण-पोषणका उत्तरदायित्व समान रूपसे सारे समुदाय पर होता है। फलतः स्त्री-पुरुष जब जिससे चाहें मिलें और काम-सम्बन्ध स्थापित करें यह न होते हुए भी इन जातियोंमें नर-नारीका संयोग एकमात्र कामप्रवृत्तिकी प्रेरणाके ही वशीभूत होकर ही होता है। आदि-मानवकी कुछ ऐसी ही गति रही होगी। संभवतः किसी कालमें पृथ्वीके जिस किसी भागमें मनुष्य रहता था वहाँ कुछ इसी प्रकारकी प्रणालियाँ रही होंगी और मानवकी जाति संकटावस्थामें थी तथा उसकी कामलीला पशुओंकी सरल काम-चेष्टाकी स्थितिमें होती थी। भारतके आर्योंका वैदिक साहित्य संसारके पुरातन साहित्यमें अग्रणी है। वैदिक आर्य वैदिक युगमें आदि मानवकी स्थितिसे कहीं आगे बढ़ गये थे। वे केवल शिकारी और पशुपालक नहीं बल्कि स्थिर समाजके निर्माता और महती संस्कृतिके प्रवर्तक थे। पर वैदिक आर्योंको किसी आदि कालकी स्मृति भूली न थी। वे जानते थे कि एक समय मानव समाजकी यह स्थिति थी जिसका उल्लेख वेदोंमें भी मिलता है।

वेदोंमें भी इस बातका उल्लेख मिलता है कि किसी युगमें

स्त्रियाँ 'अनावृत' रहती थीं और समय पाकर उनका अनावरण हटाया गया। दीर्घतमा ऋषि तथा श्वेतकेतु और औद्धात्मिककी कथाएँ उपनिषदों तथा पुराणोंमें है, जिनसे यह संकेत मिलता है कि इन ऋषियोंने विवाहकी संस्थाको जन्म दिया, उसके नियम बनाये और उनका विकास किया। स्पष्ट है कि मानवजाति एक युगमें प्रायः पशुसा व्यवहार करती थी, पर उसकी चेतना, उसके विवेक और उसके अनुभव तथा उसकी परिस्थितियो ने उसे अपनी आरंभिक प्रवृत्तियोंको परिष्कृत और सुसस्कृत करनेकी ओर प्रेरित किया। भारतमें ही नहीं बल्कि संसार भरमें विवाह-की संस्थाके जन्ममें मूल प्रेरणा यही रही है। मै जानता हूँ कि विवाह-पद्धतिके उदयमें और बाते भी कारण हुई है। मनुष्यके आर्थिक उत्पादनके प्रकारोंने समाजकी रचनापर बड़ा प्रभाव डाला है। समय आया है जब व्यक्तिगत संपत्तिका उदय हुआ है, जब समाजको स्थायी बनानेकी आवश्यकता हुई है और जब इसके लिए परिवारो और कुटुम्बोंकी इकाइयाँ उद्भूत हुई। इन परिस्थितियोने भी वैवाहिक संबंध और पद्धतिकी आवश्यकताकी अनुभूति करायी। पर जहाँ ये कारण थे वहाँ मुख्य कारण मनुष्यकी वह मौलिक तथा नैसर्गिक प्रेरणा भी थी जो सदा आदि प्रवृत्तियोंको अधिक उन्नत और सुंदर तथा गौरवपूर्ण बनानेके लिए सचेष्ट रही है। भारतमें तो इस प्रवृत्तिका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। आज विशेष रूपसे यह कहा जाता है कि विवाहकी प्रथा एक प्रकारका ठहराव मात्र है जो दोनों पक्षोपर

तबतक ही लागू है जबतक ठहरावकी शर्तें दोनों ओरसे पूरी की जा रही है। जिस क्षण किसीकी ओरसे वे शर्तें भंग कर दी जायें उस क्षण विवाहका बंधनभी उद्ध्वस्त मानना चाहिये और दोनों पक्षोंको पूरी स्वतंत्रता मिली समझनी चाहिये। इस प्रकारके विचारके मूलमें भी वही भौतिक दृष्टिकोण है जिसे आजकी सभ्यताने जीवनके प्रति ग्रहण किया है।

भारतके पुराने ऋषियोंकी दृष्टिने इस सत्यका आभास पा लिया था कि मानव-जीवन केवल भौतिक नहीं है। उसने इसी कारण आदि प्रवृत्तियोंको इतना अधिकार देना अस्वीकार कर दिया कि वे सारे जीवनपर अपनी प्रभुता जमा लें। उनका अपना जो स्थान है वह प्रदान किया जाय पर सीमासे परे जाने देना जीवनका हनन करना है। यह अनुभूति उनके प्रबुद्ध चेतनको प्राप्त हो गयी थी। विवाह-प्रथाकी सृष्टि इसी कारण हुई कि मनुष्य कामकी प्रवृत्तिको अधिक पवित्रता तथा उन्नतिकी ओर ले जाय। विवाहको केवल स्त्री-पुरुषके भौतिक नहीं किन्तु आध्यात्मिक संयोगके रूपमें कल्पित करने और उस आदर्शको मानवताके सामने देखनेमें भारतने सबसे प्रथम और सबसे अधिक प्रयत्न किया है। नर और नारी यदि परस्पर मिलकर शारीरिक उपभोगसे अपनी प्रवृत्तिकी पूर्ति करना चाहते है, यदि उनकी यह वासना प्रकृति द्वारा जीवनके मूलमें निहित कर दी गयी है तो उसका शमन करना ही होगा। पर शमनकी एक न एक सीमा भी बाँधनी पड़ेगी। सीमा आवश्यक है इसलिये कि प्रवृत्तियाँ

स्वभावतः उपभोगसे बढ़ती चलती है। यह जीवनकी अनुभूति है जिससे आँखे मूँद लेना दुराग्रह है। यदि नर नारीका यौवन चाहता है, उसका रूप चाहता है तो स्पष्ट है कि एक नारी उसकी तृप्तिके लिए पर्याप्त नहीं हो सकती। फिर स्वभाव नवीनताका आकांक्षी होता है। फलतः यदि कोई सीमा न हो तो आखिर जीवन चला कहाँ जायगा ? प्रवृत्तियोंकी उछल-कूद मानवताको ले कहाँ जायगी ? समाजकी स्थिति क्या हो जायगी ? मानव-स्वभावका यह अध्ययन हमें इस निर्णयपर पहुँचाता है कि प्राकृतिक पुकारके अनुसार नरको नारी और नारीको नर मिलना चाहिये अवश्य पर एक सीमा भी होनी चाहिये जिसके भीतर रहकर वह अपनी कामनाओंकी पूर्ति करे। विवाहकी संस्था उसी सीमाका निर्धारण करनेके लिए आविर्भूत हुई।

हमारे देशके मनीषी जानते थे कि सीमा निर्धारण कर देना एक बात है पर मानवको उसमें आबद्ध रखनेमें सफलता प्राप्त करना दूसरी चीज है। यह तभी संभव है जब उसके उज्ज्वलांशको उज्जीवित किया जाय, उसे उत्प्रेरणा प्रदान की जाय और जीवनमें इतना जाग्रत कर दिया जाय कि वह अपने स्वरूपको समझ कर, अपने गुणोंकी अनुभूति कर और अपनी महत्ता तथा विशिष्टतासे अभिज्ञ होकर प्रवृत्ति और विवेकके अन्तर्द्वन्द्वमें सामंजस्य स्थापित करनेमें समर्थ हो। इसी कारण उन्होंने वैवहिक बंधनको और विवाहित स्त्री-पुरुषके काम-संबन्धको

न केवल एकमात्र उचित बंधन घोषित किया, बल्कि उसमें आध्यात्मिकताका वह रंग भी भरनेकी चेष्टा की जो मानवके विशुद्ध सदांशको ऐसी शक्ति प्रदान करे कि वह प्रवृत्तियोंकी धाराको उन्नत और पवित्र स्तरकी ओर ले जानेमें समर्थ हो। वैवाहिक संस्कारके लिए गृह्य-सूत्रोंमें जिन मंत्रोंकी रचना की गयी है उनकी ओर देखिये तो स्पष्ट हो जायगा कि स्त्री-पुरुषके काम-संबन्धको भी किस प्रकार पवित्र और किस प्रकार आध्यात्मिक स्वरूप देनेकी चेष्टा प्राचीन भारतकी संस्कृतिने की थी। वर-वधू किस प्रकार परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध होते है, आजन्म एक साथ रहकर धर्मका प्रतिपादन करनेका निश्चय करते हैं और शरीरोंका ही नहीं प्रत्युत आत्माओंके सम्मिलनका आयोजन करते हैं। वे दोनों जीवन-रथके दो चक्रके रूपमें अवतीर्ण होते हैं और मिलकर इस भव-प्रपंचसे पार हो जानेका व्यूह रचते हैं।

उन्होंने नारीकी कल्पना केवल उपभोगके पदार्थके रूपमें नहीं की थी। महाभारतके आदि पर्वमें शकुन्तला-दुष्यन्तके उपाख्यानमें नारीके प्रति भारतीय आदर्शका सुंदर चित्र उपस्थित किया गया है। शकुन्तला दुष्यन्तसे कहती है कि विवाह इसीलिये किया जाता है कि स्त्री धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी जड़ है। वह सबसे बड़ा मित्र है। आनन्दमें मित्रके समान, विपत्तिमें माँके समान और मृत्युके बाद भी परलोकमें संगिनीके रूपमें वही मिलती है। क्रोधमें भी पुरुषके लिए यह उचित

नहीं है कि वह अपनी पत्नीका निरादर करे। उपनिषद्* कहता है कि पत्नीसे ही पुरुषकी पूर्णता होती है। यही कारण है कि वैदिक आर्योंने यहाँ तक घोषित किया कि बिना पत्नीके यज्ञादि कर्म अधूरे और निष्फल होते हैं। वेदोंके मंत्रोंमें बार-बार ऋषियोंने पुकार-पुकार कर कहा है कि पत्नी ही घर है, पत्नी ही गृहस्थी है, उसके बिना घर घर नहीं है। ऋषि-पत्नियाँ पतिके साथ मंत्र पढ़ती पढ़ाती थीं, यज्ञ करती थीं, दान देती थीं, सारे धार्मिक कार्योंमें योग देती थीं। एक स्थान पर तो ऋषि इन्द्रको उपदेश देता है कि तुम अब सोमका पान कर चुके, अपने घरकी ओर जाओ क्योंकि घरमें तुम्हारी पत्नी है और वही तुम्हारे लिये आनन्द है। यह है नारीका पद और उसकी मर्यादा जिसे इस देशके ऋषियोंने स्थापित किया था। उन्होने नारीको केवल उपभोग नहीं बल्कि नरके पूरकके रूपमें, उसके जीवनके तत्त्वके रूपमें ग्रहण किया था।

विवाहकी पद्धतियोंके संबन्धमें मानव-बुद्धि जहाँ तक जा सकती थी वहाँतक इस देशके विचारकोंने विचार किया है। आश्वलायन गृह्यसूत्रमें आठ प्रकारके विवाहोंका विभाग मिलता है। बादकी स्मृतियोंने इन आठो विभागोंकी विवेचना की है। ब्राह्म, शौल्क, प्राजापत्य और दैव तथा गांधर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच इन आठ प्रकारकी विवाह-प्रणालियोका उल्लेख मिलता है। इनमें से प्रथम चार धर्म्म तथा बाकी चार अधर्म्म

---

* बृहदारण्यक उपनिषद १।४।१७।

माने जाते रहे हैं। इन आठों पद्धतियोंका भेद भी मनोरंजक है। ब्राह्म विवाह तो वेद मंत्रोंसे होता था जो संस्कारात्मक था। शौल्कमें ठहरावके द्वारा सांकेतिक शुल्क देकर विवाह होता था। प्राजापत्य पद्धतिकी बड़ी महिमा थी। इसकी कल्पनामें संस्कार और शुल्क दोनों था। इस विवाहका लक्ष्य ही था पति-पत्नीका एक होकर धर्माचरण करना। दैव विवाह पुरोहितको कन्या देनेसे होता था। ये चारों तो धर्म्म थे। बाकीमेंसे गांधर्व विवाह युवक-युवतीके पारस्परिक प्रेमके कारण बिना संस्कारके होता था। स्त्रीको दाम देकर खरीदना आसुर विवाह कहलाता था। राक्षस-का दूसरा नाम क्षात्र भी है। युद्धमें हारने पर कोई विजितकी कन्या छीन लाये तो वह राक्षस विवाह था। पैशाच सबसे घृणित माना जाता था। सोती, मूर्छित तथा उन्मत्त स्त्रीको पकड़ लेना और रख लेना पैशाच था। ये चारो अधर्म्म थे, यद्यपि स्त्रियोंकी रक्षाके लिए कानूनने उन्हें वैधानिक मान लिया था। धर्मने, कानूनने उन्हें वैधानिक बनानेके लिए स्त्री-धन निश्चित कर देनेकी माता पिताकी स्वीकृति प्राप्त कर लेनेकी व्यवस्था की है। उसकी व्यवस्था है कि गांधर्व और आसुर विवाहमें निर्धारित स्त्रीधनको यदि पति स्वयं अपने काममें लाये तो सूद सहित स्त्रीधन वापिस करे। राक्षस और पैशाचमें यदि स्त्री-धनमें पति हाथ लगावे तो उसपर चोरीका मुकद्दमा चलानेका आदेश है। मैंने इतनी विवेचना स्त्री-पुरुष सम्बन्धके विषयमें भारतीय विचारकोंकी कल्पनापर प्रकाश डालनेकी दृष्टिसे ही की है। स्पष्ट है कि स्त्रीको

केवल उपभोग्यका पद प्रदान करनेको वे तैयार न थे और न वैवाहिक सम्बन्धको इन्द्रियोंकी तृप्ति तक ही परिमित करना वांछनीय समझते थे। उसपर गौरवका, व्यवस्थाका, नियमन और महत्ताका रंग चढ़ाना उनका लक्ष्य था। जो काम-संबन्ध मूलतः इन्द्रिय-तृप्तिकी प्रेरणामात्रसे स्थापित हो सकता था उसे भी विवाहकी सीमामें रखा गया क्योंकि इसीमें स्त्रीकी रक्षा थी। फिर भी उस संबंधको अधर्म्य अथच न करने योग्य घोषित करके मानव प्रवृत्तिको संयत और उन्नत बनानेकी प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है।

ये बातें इस बातका प्रमाण है कि इस देशने अति आरंभमें ही जीवनके इस मौलिक तत्त्वका आभास पा लिया था कि मानवताकी, उसकी विशेषता और विकास-यात्राकी यह अपेक्षा है कि मनुष्य आदि प्रवृत्तियोंके सम्बन्धमें जीवनमें सामंजस्य स्थापित करे। इस सामंजस्यका एकमात्र मार्ग था सयम अर्थात प्रवृत्तियोको शनैः शनैः अधिक सुंदर बनाना और उनकी धाराको उन्नतिकी ओर ले जाना। भारत ही नहीं बल्कि सामूहिक रूपसे मानव-समाजके इतिहासपर दृष्टिपात करनेपर हम सर्वत्र किसी न किसी रूपमें उसकी इसी चेष्टाका दर्शन करेंगे। काम हो या क्रोध, राग हो या द्वेष, हिंसा हो या स्वार्थ, अहंकी भावना हो या लोभ, जीवनमें उनका निवास निर्विवाद है, पर उनकी उच्छृङ्खलता और शक्तिको यथासभव कुंठित करना मानवके परम लक्ष्यके रूपमें प्रकाशित रहा है। इसके लिए उसने महती तपस्या की है जिस विरासतको लेकर आजका मनुष्य सभ्य होनेका

दावा करता है। मनुष्यने जब-जब इस लक्ष्यके अनुकूल व्यवस्थाएँ बनायी है तब-तब उसने जगत और जीवनको आगे बढ़ाया है और जब जब अपने मोहमें इस पथकी विपरीत दिशामें बढ़ा है तब तब उसका विनाश हुआ है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषणके प्रसिद्ध विद्वान एलडरने पतेकी बात कही है। वे कहते है कि मानव-जातिके इतिहासका अध्ययन करते हुए जो मार्केकी बात दिखाई देती है वह यही है कि जिस किसी युगमें जिस किसी भूभागके लोगोने जब-जब जीवनके ढंगकी मूल भित्ति और अपना दृष्टिकोण ऐसा बनाया जो स्वार्थपूर्ण हो, जिसमें केवल अपने व्यक्तियोंके सुखकी प्राप्तिकी भावना सर्वोपरि रही हो और समाजके सामूहिक हितका भाव दबता गया हो तब तब ऐसे लोग शीघ्र ही ससारसे मिट गये। पर जिन संस्कृतियोने प्रवृत्तियोको, स्वार्थको नियंत्रित करके सामूहिक हितके लिए कुछ प्रदान करना अपना लक्ष्य बना रखा वे अपेक्षाकृत अधिक दिनो तक जीवित रही है।

अभिमान या पक्षपातसे नहीं बल्कि इतिहासके एक विद्यार्थीकी हैसियतसे मैं कहता हूँ कि भारतीय संस्कृतिका इतनी विपत्तियो और आघातोका सामना करते हुए भी अबतक जीवित रहनेका कारण कदाचित् यही है कि उसने केवल भौतिक भोगको अपना लक्ष्य नहीं रहने दिया। मानव विकास-पथका पथिक है। उसकी यात्राका लक्ष्य है, प्रयोजन है और उसतक पहुँचना उसके जीवनकी चेष्टा है। कोई व्यक्ति हो या समष्टि उसके जीवनकी

उपयुक्तता और सार्थकताकी कसौटी इसी बातमें है कि वह मानवताके सामूहिक विकासके लिए उन अक्षुण्ण आदर्शोंकी स्थापना और रचना कर जाता है कि नहीं जो सनातन सत्यके आधारपर आश्रित है। भारतने जीवनके प्रति जो आदर्श स्थिर किया था उसीसे उसने नर-नारीकी समस्याकी ओर भी देखा है। उसने जो हल उपस्थित किया है वह यूरोपका हल नहीं बल्कि मानवकी महान् प्रकृतिके अनुरूप है। भोग ही भोग नहीं बल्कि विवेकपूर्वक भोगमें संयमके द्वारा सौन्दर्य और पवित्रताकी सृष्टिसे ही जीवनकी यह समस्या हल होगी। इसके विपरीत मार्ग पकड़ना मनुष्यके हजारों वर्षकी यात्रा और तपश्चर्यापर हरताल फेरना है। आज आधुनिकताके पुजारीको इस ओर ध्यान देना है और विशेष रूपसे ध्यान देना है। मेरे आधुनिकताके विरोधका यह अर्थ न समझना कि मै उसकी किसी भी बातसे सहमत नहीं हूँ। मेरा विरोध केवल इस बातसे है कि नर और नारीका संमिलन विशुद्ध भौतिक स्तरपर, केवल प्रवृत्तियोकी पूर्ति और वासनाओंकी तृप्तिके आधारपर स्थापित करना जीवनकी समस्याको न हल कर सकता है और न मानवताके उन्नत होनेमें सहायता प्रदान कर सकता है। विपरीत इसके वह हमारी मर्यादा और महत्ताके प्रतिकूल है जिसकी कल्पना भी घृणित तथा तुच्छ है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि नारीके अधिकार या उसके पथका, जिसकी पुकार आज मची हुई है, मै विरोधी हूँ। समाज में, कानूनमें, राजनीतिमें और आर्थिक व्यवस्थामें नारीको

नरके समान पद और अधिकार न प्रदान करना पाप है। जब नर उसे जीवनके एक अंश और पूरकतत्त्वके रूपमें ग्रहण करना चाहता है तो फिर अधिकार-भेद या पद-भेदके लिए गुंजाइश कहाँ रहती है ? यह सच है कि मनुष्य-समाजने इस दिशामें सदा जबर्दस्तीसे काम लिया है। उस भारतमें भी जहाँ किसी समय नारीकी मर्यादाके संबन्धमें ऊँचीसे ऊँची कल्पना की गयी थी, आगे चलकर मनुष्य-समाजने उसके प्रति अपराध करनेमें संकोच नहीं किया। इसी देशमें एक समय पुरुषके साथ स्त्रियाँ समस्त सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रोंमें बराबरीके साथ भाग लेती थीं। मैं इस सम्बन्धमें अनेक प्रमाण देकर पत्रका कलेवर विस्तृत करना नहीं चाहता पर अनेक उदाहरण दिये जा सकते है जिनसे सिद्ध होता है कि प्राचीन कालमें स्त्रियाँ मंत्रद्रष्टा ऋषि हुई हैं जिन्होने वैदिक ऋचाओंकी रचना की है, ब्रह्म-विद्या और तत्त्वचिंतनमें स्त्रियाँ पुरुषोसे कम नहीं रही है, युद्धोंमें पतियोके साथ-साथ शस्त्र-धारण कर लड़ी है और सामाजिक जीवन ही नहीं बल्कि राजकाज तकमें भाग लेती रही हैं। पुराणों और स्मृतियोमें भी नारीकी महिमा गायी गयी है। उसकी पूजाका आदेश दिया गया है, उसे सुखी रखनेका उपदेश है और कहा गया है कि जहाँ वे दुखी रहती है वहाँ धर्म कर्म सब निष्फल हो जाते हैं।

पर समय आया जब नारीके प्रति इस देशके पुरुषने अन्याय किया। जिस देशमें सृष्टि-स्थिति-विनाशकी सनातनी

शक्तिकी कल्पना नारीके रूपमें की गयी थी और जहाँ कहा गया था कि समस्त स्त्रियाँ उसी महादेवीका स्वरूप हैं, वहीं उन्हें चंचला, स्वातंत्र्यके अयोग्य विषमयी और सब दुःखोंकी खान तक बताया गया है। जिस समय इस देशमें निवृत्ति-मार्ग और संसारको परित्याग करके जंगलोंकी शरण लेनेकी लहर उत्पन्न हुई उस समय सबसे अधिक आकर्षक तथा प्रवृत्तियोंको उद्दीप्त करनेवाली नारीपर अपना क्रोध उतारा गया। पर इतनेसे ही मामला हल न हुआ। स्मृतियोंके युगमें जो ईसाकी दूसरी तीसरी शताब्दी पूर्वसे आरंभ होता है उन्हें समाजमें भी स्पष्ट रूपसे पुरुषसे नीचा पद प्रदान करनेकी प्रवृत्ति दिखाई देती है। पत्नीको पतिव्रतका आदेश देना तो अनुचित न था पर पुरुषको बहुपत्नित्वका अधिकार प्रदान करना न्यायकी बात नहीं कही जा सकती। स्मृतियोंकी इस प्रवृत्तिके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। यह ठीक है कि स्मृतियोंकी यह प्रवृत्ति तत्कालीन परिस्थितियोंसे उत्पन्न हुई थी। विदेशी आक्रमण देशपर होने लगे थे। बहुतसी विदेशी और अनार्य जातियोंसे सम्मिश्रण होने लगा था। फलतः वंश और जातिकी शुद्धता-विषयक कल्पनाओंने इन बंधनोंकी सृष्टि करनेकी प्रेरणा प्रदान की। पर कारण चाहे जो रहा हो उनका औचित्य स्वीकार नहीं किया जा सकता। उसीका यह परिणाम है कि आज भारतकी नारी त्रस्त है। किसी समय नारीको जो पद हमने प्रदान किया था और विवाहकी संस्थाको जिन आधारोंपर स्थापित किया

था, वह केवल प्राचीन इतिहासकी सामग्रीके रूपमें रह गयी है। यूरोपसे आनेवाली आधुनिकताका विरोध हम करते हैं पर भारतकी आधुनिकता तो उससे भी अधिक भ्रष्ट हो गयी है। वे नारीको भौतिक स्तरपर भले ही देखें पर उसके साथ साथ कमसे कम उसके व्यक्तित्व, उसके सामाजिक पद और उसके मानवीय अधिकारको तो स्वीकार करते ही हैं। पर हम तो नारीको आज एक ओर जहाँ केवल भोग्य सामग्री समझते हैं वहाँ उसे वह भी प्रदान नहीं करते जो यूरोप प्रदान करना चाहता है। जिस प्रकार हमारे देशमें विवाहका रिवाज हो गया है, स्त्रियोंको समाजमें और घरमें जिस प्रकार रखनेकी परिपाटी चल पड़ी है उसमें तो मानवीय दृष्टिकोणका सर्वथा अभाव दिखाई देता है। जीवनमें उसका स्थान मनुष्यकी काम-प्रवृत्तिकी तृप्ति तथा प्रजननके सिवा दूसरा रह ही नहीं गया है। इस अति स्थूल कार्यक्रममें भी उसे अपने व्यक्तित्वके लिए स्थान नहीं रहा। उसके हृदय और मनोभाव तथा इच्छा और अनिच्छाका कोई प्रश्न नहीं रहता। भोगलिप्सु पुरुष एक पत्नीके हृदयपर दूसरी को लाकर लाद दे सकता है, उसकी उपेक्षा कर दूसरेका प्रेमी बन सकता है और जब चाहे तब उससे अपनी प्रवृत्तिको पूर्ण करनेकी माँग पेश कर सकता है।

असहाय नारीको इन सबको सहन करना पड़ता है और समाजका कठोर हृदय इस पर तनिक भी पसीजता दिखाई नहीं देता। केवल रूप और लावण्यके क्षणिक आकर्षणपर होने-

वाले विवाह, जिन्हें आजकल भ्रान्त होकर प्रेम-विवाह कहा जाता है, अपनी असफलता घोषित कर रहे हैं; क्योंकि उनसे जीवनमें अधिक सुख और रसके संचारकी जो आशा की जाती थी, वह निष्फल सिद्ध हुई है। नश्वर रूप पर आश्रित आकर्षण अनिवार्यतः क्षणिक होगा जो एकका भोग करनेके बाद नयेकी खोजके लिए उत्प्रेरित होगा। यही कारण है कि प्रेम-विवाहोंकी पोल खुल रही है और उनकी उपयोगिता महान रूपसे संदिग्ध हो गयी है। पर इसके साथ ही इस देशमें विवाहकी जो विधि हो गयी है वह भी उससे कम दोषपूर्ण नहीं है। एक दूसरेसे पूर्णतः अपरिचित, यहाँ तक कि परस्परके रूप, गुण और शकल सूरतसे भी अपरिचित वर-वधूको जड़ पदार्थकी भाँति सदाके लिए संस्कारोंमें आबद्ध करके एक करनेकी चेष्टा बहुतसे युवक-युवतियों का दाम्पत्य जीवन विनष्ट कर रहा है। भारतके आर्योंने विवाहको जहाँ केवल भौतिक दृष्टिसे नहीं देखा, जहाँ उसे दो व्यक्तियों का भौतिक मिलन ही नहीं बल्कि आत्माका संमिलन माना, जहाँ स्त्री-प्रसंगका यह संयोग कामकी सजात प्रवृत्तिको सीमा-बद्ध करनेकी दृष्टिसे स्वीकार किया वहीं उसके भौतिक अंगकी उपेक्षा भी नहीं की। वेदोंमें युवकके युवतीके प्रति 'अभ्ययन' 'अभिमनन' के उदाहरण साधारण रूपसे मिलते हैं। नर-नारीका पारस्परिक आकर्षण, उनका रूप, अपना स्थान रखता था। अवश्य ही केवल उतना ही काफी न था। आवश्यक था कि परस्पर आकृष्ट प्रेमी परस्परके व्यक्तित्वको परस्पर लय कर देनेके

लिए विवाहके बंधनमें आबद्ध हों। एक बार इस प्रकार बँधनेके बाद प्रवृत्तियोंका संयम और हृदयके उच्चतर पुनीत भावोंकी विजय के लिए सचेष्ट रहें। दोनों मिलकर पूर्ण हो जायँ और प्रेम अक्षय पद प्राप्त करे, यह आदर्श था। आज इस आदर्शको भारत भी भूल गया है। भारतके सिवा अन्य देशोंमें भी स्त्रीको समाजमें समान अधिकार और पद प्रदान करनेकी चेष्टा रही है। आज भी जो देश सभ्य बनते हैं वहाँ अबतक कुछ न कुछ भेद दिखाई देता है।

इन परिस्थितियोंके विरुद्ध विद्रोह होना चाहिये, यह निर्विवाद है। पर मेरा कहना केवल इतना ही है कि विद्रोह दुतरफा होना चाहिये। एक ओर जहाँ नारीको समस्त सामाजिक, राजनीतिक और कानूनी अधिकारोंसे पुरुषके समान सम्पन्न करना चाहिये वहीं नर-नारीके संबन्धके विषयमें जो घृणित भौतिक दृष्टिकोण है उसे वदलना चाहिये। आधुनिकताके आवरणमें पुरुष और स्त्रीकी पारस्परिक भोगकी दृष्टिकी ज्वाला एक दूसरेको जलाकर नष्ट न करने पावे। एक पत्नीव्रत और पतिव्रतका मजाक भले उड़ाया जाय पर स्पष्ट है कि मानवता उन्हींके द्वारा सुंदर, आदरणीय और गौरवमयी हुई है। इतना ही नहीं वल्कि जीवनकी काम-समस्या भी उनके द्वारा ही अपेक्षाकृत अधिक सरलतासे हल हुई है। यूरोपमें अविवाहितोंके काम-संवन्ध और रोज-रोजके तलाकोंकी भरमारसे सामाजिक जीवन छिन्न-भिन्न हो रहा है। कामकी प्रवृत्तिको

उन्होंने अभूतपूर्व श्रेष्ठता प्रदान कर दी है। इसके विपरीत इस देशमें पति और पत्नीको केवल व्यक्तियोंके रूपमें ही नहीं बल्कि संस्थाके रूपमें भी स्थापित किया गया था। पतित्व और पत्नीत्व का विकास एक आदर्शके रूपमें, भावके रूपमें, हुआ था। राज-पदपर आसीन व्यक्तिका आदर उस व्यक्तिका नहीं बल्कि उस पदका आदर होता है। किसी देव-प्रतिमाका पूजन करते हुए उस पत्थरका पूजन नहीं किया जाता जिसकी प्रतिमा बनी होती है बल्कि उस आदर्श और उस भावकी पूजा की जाती है जिससे वे अनुप्राणित होते हैं। पत्नी पतिसे प्रेम केवल इसलिये नहीं करती कि वह व्यक्ति-विशेष है बल्कि उसका प्रेम उस आदर्श और उस भावके प्रति भी होता है जिसे संस्कारोंने पति पदपर स्थित व्यक्तिमें भर दिया है। प्रवृत्तिका इस प्रकार उच्चतर दिशाकी ओर उन्मुख होना तज्जन्य समस्याको बहुत कुछ हल कर देता है। सीता और सावित्री आज भारतकी लाखों नारियोंके लिए विशिष्ट चरित्रकी महिलाएँ ही नहीं बल्कि एक सजीव संस्था हैं, उज्वल आदर्श हैं जो उन्हें अनुप्राणित करता रहता है।

मै यह नहीं मानता कि भारतकी नारी आज भी पूर्वके किसी युगकी नारीसे किसी भी दृष्टिसे कम है। उसमें अपनी राष्ट्रीय विशेषताकी अलौकिक ज्योति अब भी वर्तमान है। भेद केवल इतना है कि वह युगधर्मसे उसी प्रकार प्रभावित है जिस प्रकार कोई भी दूसरा प्रभावित है। मै मानता हूँ कि उसका इस प्रकार प्रभावित होना बिलकुल स्वाभाविक है। कालात्माकी पुकारने

उसे भी अपने व्यक्तित्वका बोध करा दिया है। जो आज इस सत्यको नहीं समझते अथवा समझ कर उसे दबाने या उसकी उपेक्षा करनेकी चेष्टा करते हैं वे दांपत्य-जीवनमें व्यर्थ ही कटुता, क्षोभ और दुःखकी सृष्टि करते है। आजकी नारी पुरुषको सब कुछ प्रदान करनेके लिए तैयार है। वह अपना पुण्य, अपना सौंदर्य, अपना शरीर, अपना हृदय अर्थात अपना सर्वस्व तक प्रदान करनेके लिए तत्पर है पर इसके एवजमें वह भी कुछ चाहती है। वह चाहती है केवल इतना कि उसके व्यक्तित्वका अस्तित्व स्वीकार किया जाय। वह प्रणयीके व्यक्तित्वमें अपने व्यक्तित्वको लय करके उसका पूरक बननेकी और उसे अपना पूरक बनानेकी कोमल कामना रखती है। इस पारस्परिक आदान-प्रदानमें उसे अपने जीवनकी सार्थकता तथा उसका रस और सौंदर्य दिखाई देता है। परन्तु जब पुरुष इससे संतुष्ट नहीं होता, जब वह अपने पौरुषके अहकारमें उससे मूक आत्मसमर्पणकी मॉग करता है तब नारी-हृदय विद्रोहकी ओर बढ़ता है। आप उसके व्यक्तित्वमें अपनेको और उसे अपनेमें लय करना नहीं चाहते पर चाहते है अपनेको अक्षुण्ण रखते हुए उसका सम्पूर्ण समर्पण ! यही स्तिथि कटुताका कारण होती है। आपके कान उसके मुखसे यह सुननेके लिए उत्सुक रहते हैं कि उसे आपके बिना शान्ति नहीं और सुख नहीं। आप चाहते है कि आपकी भोगलिप्सा हो या कामपिपासा, अथवा और कोई इच्छा वह उसकी पूर्ति संकेत मात्र मिलनेपर कर दे पर आप उसे यह

आभास भी मिलने न दे कि आपके जीवनमें उसका इससे कुछ अधिक स्थान भी है। उसे भी हृदय है, कामना और लालसा है। जिन्हें नारी हृदयका परिचय है वे जानते हैं कि पुरुष-हृदयकी अधिष्ठात्री बननेकी सरल, सहज और पुनीत साधना लेकर ही वह जीवनमें पदार्पण करती है। उसकी इस साधका आदर कीजिये, उसकी पूर्ति कीजिये और फिर देखिये कि भारतकी नारी उन्हीं उज्ज्वल भारतीय आदर्शोंकी सजीव प्रतिमाके रूपमें प्रतिष्ठित होती है, जिसका उल्लेख किया गया है। वह तो उसका युग युगका संस्कार है। वह संस्कार उसके रोम-रोममें ओतप्रोत है। जातियोंके शताब्दियोंके जीवनसे इतिहासका निर्माण होता है और शताब्दियोंका इतिहास संस्कारोंकी रचना करता है। इन संस्कारोंमें जातिकी अनुभूति और साधना भरी हुई होती है। यदि उनमें सत्यांश और तथ्यांश दिखाई दे तो भारतके युवक युवतियोंको उनकी रक्षा करनी चाहिये। कदाचित् पथभ्रष्ट और भ्रांत हुई इस युगकी मानवताको यहींसे प्रकाश मिले जिसके द्वारा मानव-समाजका जीवन अधिक सुखकर और श्रेयस्कर हो जाय।

तुम्हारा

कमलापति

१५

नैनी सेण्ट्रल जेल

ता.......... ·

प्रिय लालजी,

पूर्वके पत्रोंमें मैंने बहुतसी बातें लिखी है जिनका जीवनसे गहरा संबन्ध है। यौवनमें पदार्पण करते ही मानव-हृदयकी जो चाह जीवनपर सबसे अधिक प्रभाव डालती है और जिसका प्रभाव फिर सारे आगत जीवनपर बना रहता है उसके संबन्धमें विस्तारसे लिखना आवश्यक था। नारीको, उसके रूप और सौंदर्यको, उसके प्रति आकर्षण और प्रेमको, जीवनसे उसके संबन्धको मैंने जिस दृष्टिसे देखा है और जिस दृष्टिसे देखना उचित समझता हूँ उसे ही अभिव्यक्त करनेकी चेष्टा की है। कामकी प्रवृत्तिका जो अर्थ मैं समझता हूँ और फिर मानव-जीवनका, उसके व्यक्तित्वका, उसकी विशेषताका और उसके विकास,

प्रयोजन तथा लक्ष्यका जो स्वरूप मेरी दृष्टिमें आया है उसे तुम्हारे सामने रखनेकी चेष्टा की है। प्रवृत्तियों और विवेकसे दो परस्पर दिशाओंमें बलात् आकृष्ट मानव किस प्रकार जीवनका संचालन कर सकता है और जीवनके प्रश्नोंकी ओर उसे कौनसा मौलिक दृष्टिकोण ग्रहण करना चाहिये, इसके संबन्धमें अपने विचार प्रकट कर दिये है। इन विचारोंने मुझे जीवनकी समस्या हल करनेमें सहायता प्रदान की है तथा उनमें मेरी अनुभूतियाँ मिली हुई है। मै साधारण मनुष्य हूँ और मनुष्यकी भाँति हृदयस्थ द्वन्द्वोसे पीड़ित होता रहा हूँ। ईर्ष्या और राग, क्रोध और काम, घृणा तथा द्वेष, लोभ तथा अहं जीवनमें समस्याएँ उत्पन्न करते रहे हैं और करते रहते है। प्रवृत्तियाँ तथा भोगकी लालसा किसे नहीं सताती? फिर जिस किसीको भी हृदय है वह उसकी लीलाका शिकार भी होता रहता है। नारीने अपने समस्त सौंदर्य, मोहकता और मादकताके साथ मेरे जीवनमें भी पदार्पण किया है। मै उसके यौवन और आकर्षणसे प्रभावित हुआ हूँ और होता हूँ। अपने संपूर्ण व्यक्तित्वको लिये दिये मै नारीके प्रेमके दाहमें विदग्ध हो चुका हूँ और उस कालकी मनःस्थितिका अनुभव कर चुका हूँ। उसने मुझे आमूल हिला दिया है, प्रवृत्तियोको उत्तेजित किया है, हृदयके अंतरतमकी कोमल तंत्रियोको झकृत कर दिया है। साथ ही मेरे उत्तमांशको प्रबुद्ध किया है जीवनके स्वरूपको समझनेकी दृष्टि प्रदान की है और किसी उन्नत स्तरपर ले जाकर जगत्को देखनेके लिए उत्प्रेरित किया है। उसने समस्याका रूप

ग्रहण करके हृदयमें ग्रंथि डाल दी है और फिर उसीके द्वारा उद्‌बुद्ध चेतनाने धीरे-धीरे उस गाँठको सुलझानेकी शक्ति और सफलता पायी है।

जीवन और उसके इस संबन्धका मुझे कुछ-कुछ अनुभव है और उसकी शक्तिका ज्ञान पा चुका हूँ। मैं जानता हूँ कि जो मनुष्य है, उसके जीवनमें ये समस्याएँ उत्पन्न होती है और होंगी। मानव अपने आभ्यन्तरिक द्वन्द्वोंसे मुक्त नहीं हो सकता। जिस दिन वह इससे मुक्ति पा जाता है अथवा पा जायगा उस दिन वह मनुष्य न रहेगा अपितु विकास-क्रमका कदाचित कोई दूसरा प्राणी होगा। यौवन आया है तो उसे ग्रहण करो पर तज्जन्य उसकी समस्याओंसे जब कभी भी वे सामने आवे कभी घबराना मत। समस्याओंका हल न उनके प्रति आँखे मूद लेनेसे होता है और न उनसे भयभीत होकर घबरानेसे होता है। ये दोनों प्रवृत्तिया न केवल हानिकर है प्रत्युत मै उन्हें कायरता समझता हूँ। उनसे समस्याका निपटारा तो होता नहीं वे और उलझाकर जीवनको सदाके लिए दुखी अवश्य कर जाती है। उनको सुलझानेका एकमात्र उपाय यही है कि मनुष्यकी तरह हम उनका सामना करे, उनके स्वरूपको समझे, अपने स्वरूपको समझें, विवेक और संयमसे काम लें तथा जीवनमें सामंजस्य और संतुलन स्थापित करनेकी चेष्टा करे। जीवनकी भित्ति ही सामंजस्यपर अवलंवित है। धैर्यपूर्वक इस मार्गका अवलंबन जीवन-रथको पार लगा देता है। मैने जो कुछ लिखा है वह मेरी अनुभूति है

और उसपर मेरे अन्त:करणकी छाप लगी हुई है। यह कोई जरूरी बात नहीं है कि आज या आगे चलकर कभी जब तुम उन बातोंको अच्छी तरह समझने लगो और जब उस प्रकारकी स्थिति तुम्हारे सामने भी आवे तब मेरी सब बातें ही ठीक जचें और प्रत्येकको तुम वेदवाक्यकी तरह ठीक ही समझ लो।

मनुष्यकी अपनी चेतना, मौलिकता और संस्कार उसे विभिन्न दृष्टियाँ प्रदान करते है। संभव है, तुम्हारी दृष्टि भी इससे भिन्न हो। उस स्थितिमें भी परेशान होनेकी बात नहीं है। यही मान लेना कि ये बाते भी एक पहलू हो सकती हैं, एक दृष्टिकोण प्रकट करती हैं जिसपर विचार किया जा सकता है। उन्हें मानना न मानना यह तो अपने उद्बोध, अनुभव और विश्वासकी बात है। यदि इनसे कुछ सहायता मिले तो प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करना, अन्यथा इन्हें यों ही छोड़ जाना। यह सब होते हुए भी एक बातकी ओर तुम्हारा ध्यान पुनः आकृष्ट कर देना चाहता हूँ। इन बातोंको मानो या न मानो पर मुझपर बिना किसी संकोचके सदा विश्वास कर सकते हो। मै सदा प्रत्येक स्थितिमें तुम्हारी सहायता करनेमें प्रसन्नता और संतोषका अनुभव करूँगा। सिद्धान्तों को छोड़ कर केवल व्यावहारिक प्रश्नोको ले तो कह सकते हैं कि तरह तरहकी कठिनाइयाँ सामने आती है जिनको हल करना सरल काम नहीं हुआ करता। ऐसे उदाहरण मुझे जीवनमें मिले है। एक घटना मुझे याद आ रही है। एक युवक था, मेरा मित्र

और मुझपर विश्वास करता था। वह एक युवतीसे प्रेम करता था। उसका स्नेह सच्चा स्नेह था, स्नेहके तमाम अर्थोंके साथ स्नेह था। युवक आदर्शवादी था, सच्चरित्र था। पर दुर्भाग्यसे जिस युवतीसे स्नेह करता था वह रिश्तेमें ऐसी थी जिसके साथ विवाह समाजकी दृष्टियोंमें, धर्म और परम्पराकी दृष्टिमें हो ही नहीं सकता था। युवक-युवती परस्परको सच्चे रूपमें अपनी संपूर्णतासे स्नेह करते थे पर यह ऐसी चट्टान थी जो दोनोंके लिए अलंघ्य थी। फलतः इस समस्याको हल करना कठिन था। उस युवककी पीड़ा और परितापका मुझे अनुभव है, फिर भी उसने इसे सुलझाया। स्नेहकी उसकी प्रवृत्तिमें जहाँ भौतिकता थी वहीं हृदयकी साध अपनी सारी पवित्रता और मधुरिमाके साथ उद्भूत हुई थी। मैं जानता हूँ कि वह उस युवतीको पा न सका पर स्नेहकी धाराने उन्नत पथका अवलंबन कर उसके जीवनको न जाने कितना विकसित किया। जीवनमें पड़ी गांठ न जाने कैसी अकल्पित परिस्थितियाँ और प्रभाव उत्पन्न करती हैं। जिनकी प्रवृत्ति, चाह और लालसाका आश्रय-स्थल लुप्त हो रहा हो उन अभागोंके जीवनका निर्देश किधर होना चाहिये? ऐसे प्रश्नोंका उत्तर देनेकी क्षमता भला किसमें है? पर उत्तर मिलता है और जीवन ही उत्तर देता है। उस युवककी आन्तरिक चिन्मयी प्रेरणाने उसे उत्सर्गकी ओर ही प्रवाहित किया। कोई दूसरा नहीं कह सकता कि इस उत्सर्गमें आनन्द है या नहीं।

तर्क किया जा सकता है कि इस प्रवृत्तिका मूल पूर्णता नहीं अभाव है, शून्यता है। अभावसे उद्भूत आत्मोत्सर्गमें आनन्द कहाँ? तर्क सुनने और देखनेमें प्रौढ ज्ञात होता है पर मानवका हृदय इतना सरल नहीं है कि उसपर एक ही पहलूसे देखकर फैसला दे दिया जाय। जो स्नेह अपनी अभीप्सित वस्तुको न पाकर शून्यताका सृजन करता है वही दूसरी ओर हृदयकी मीठी वेदनामें अनायास वह आनन्द भर देता है जिससे सारा जीवन ओतप्रोत हो जाता है। स्नेहकी वही धारा कदाचित् विराट रूप धारण कर स्नेहीकी दृष्टिमें सारे जगत्में छाती दिखाई देती। फलतः त्याग और विसर्जनमें सिद्धि प्राप्त करके जीवनकी सार्थकताकी संतोषप्रद अनुभूति होने लगती है। इसे वे नहीं समझेंगे और न मानेंगे जो इस जीवनके भोगको ही सत्य समझ बैठे है पर उन्हें इसमें सत्य दिखाई देगा जो अनुभवी हैं और मानवके दूसरे अंशका भी साक्षात्कार किये हुए हैं।

यह कहानी कहनेका मेरा तात्पर्य केवल इतना था कि जीवनमें ऐसे व्यावहारिक प्रश्न उपस्थित होते रहते है, जिनका सिद्धान्तः हल सरल और सीधा होते हुए भी व्यावहारिक सुलझाव नहीं दिखाई देता। कोई नहीं कह सकता किसके जीवनमें कब ऐसे प्रश्न खड़े हो जायें। संभव है कि ऐसे सवाल तुम्हारे सामने आ जायें जो सिद्धान्तकी दृष्टिसे बिलकुल स्पष्ट होते हुए भी व्यवहारके अनुसार परंपरा और संस्कार तथा समाजके अनु-

सार हल न हो सकते हों। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि इस स्थितिमें भी परेशान न होना। धैर्यपूर्वक देखोगे तो जीवन स्वयं उसे हल करता हुआ दिखाई देगा। इसके साथ साथ यदि किसीकी सहायता और सहयोगकी आवश्यकता प्रतीत हो तो विश्वास रखना मुझे उसके लिए सदा उत्सुक, इच्छुक और सजग पाओगे। मेरे अनुभव, विचार और प्रेक्षण सब तुम्हारे लिये अर्पित रहेंगे। मित्रताके यही अर्थ हैं और मैंने आरंभमें ही तुम्हारा मित्र होनेका दावा किया है। अभी मुझे मित्रताके सम्बन्धमें एक पुराना श्लोक याद आ गया है। मैं उसे उद्धृत कर देना उचित समझता हूँ, क्योंकि यौवनमें युवक मित्र भी सरलतासे बनता है। मित्रता भी जीवनका आशीर्वाद है, बड़ी भारी उपलब्धि है पर शर्त यह है कि वह सच्ची हो तथा मैत्रीके सारे अर्थोंसे गर्भित हो। मित्रतामें स्वार्थकी दुर्गन्ध न हो, स्पर्धा और अहंकारका स्पर्श न हो तथा परस्परके लिए त्याग तथा साहाय्य प्रदानका भाव हो तो उससे बढ़कर वांछनीय भला और क्या हो सकता है। खेद यही है कि ऐसी मित्रता होती है बहुत कम। युवक बहुधा भावुक होता है फलतः जीवनकी उमगें उसे जल्दी जल्दी मित्र बनाने और पानेके लिए उत्प्रेरित करती रहती हैं पर प्रायः उनसे सुखके स्थान पर क्षोभ ही अधिक होता है। अतः मैं उस श्लोकको उद्धृत करता हूँ जो इस दिशामें तुम्हारा मार्ग-निर्देशन तो करेगा ही साथ साथ मेरे हृदयकी इच्छा भी प्रकट कर देगा—

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले-
सन्मित्र लक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥

सच्चे मित्रका लक्षण यह है कि वह अपने मित्रको पापसे, अनुचित पथसे, विमुख करनेकी चेष्टा करता है और उसे उसके हितके कल्याणके मार्गकी ओर ले जानेका यत्न करता है। मित्रकी जो बात छिपाने योग्य है उसे छिपाता है और उसके जो गुण प्रकट करने लायक है उनका प्रकटीकरण करता है। यदि मित्र कभी विपत्तिमें फँस जाता है तो उस कालमें उसे छोड़ता नहीं और संकट आने पर जो कुछ देकर उसकी सहायता की जा सकती हो उसे देकर करता है। यह है सच्चे मित्रका लक्षण! इस कसौटी पर कसनेके बाद मुझे चोखा पाओगे इसका विश्वास रखना।

आशय यह है कि जब कभी समस्याएँ उपस्थित हो तब, उनका सामना पुरुषकी भाँति करना। किसीने सच कहा है कि जीवन संघर्ष है। मानवको प्रतिक्षण युद्ध करते ही बीतता है। इस युद्धमें सफलता वही पाता है जो धीरताके साथ कठिनाइयों-का सामना करता है। योद्धाका सबसे बड़ा लक्षण ही है अवि-चल धीरता। पर मनुष्यको सबसे अधिक युद्ध अपनेसे ही करना पड़ता है। वह आगे बढ़ना चाहता है। उसकी यह प्रवृत्ति उसके जीवनके भीतर नैसर्गिक रूपसे वर्तमान है पर इस बढ़ावमें

वह स्वयं ही सबसे बड़ा बाधक है। आगे बढ़नेकी उसकी प्रवृत्ति-का विरोधी तत्त्व भी उसी जीवनमें नैसर्गिक रूपसे उपस्थित है। यह स्थिति बड़ी भारी पहेली है पर पहेली भले ही हो, वास्तविकता यही है। उसने स्वेच्छापूर्वक अपने ऊपर बन्धन लगाये हैं। सामाजिक व्यवस्थाओं, नैतिक नियमों, आचरण-सम्बन्धी तरीकों तथा तरह तरहकी संस्थाओं और परंपराओंको जन्म देकर उसने स्वयं ही अपनेको आबद्ध किया है। पर उसने यह बंधन भी अपने बढ़ावके लिए ही लगाया है। उसने अनुभव किया है कि अपनेको, अपनी प्रवृत्तियोंको आबद्ध करके वह उस शक्तिका उपार्जन करता है और जीवनमें सामंजस्य लाकर वह उस उत्प्रेरणाको प्राप्त करता है जिसका उपयोग नयी दिशामें करके सामूहिक रूपसे अपनी जाति और जगतको अभ्युत्थान तथा निःश्रेयसकी ओर ले जा सकता है। बंधन और बंधनसे बढ़ाव तथा मुक्ति यह क्या स्वयं ही परस्पर-विरोधी तथा रहस्यमय नहीं ज्ञात होता? पर इस विरोधमें जीवनका रहस्य सन्निहित है। फिर भला मानवको संघर्ष न करना पड़े तो आश्चर्य ही है! याद रखना कि इस संघर्षमय जीवनमें उतरनेका प्रथम सोपान वह यौवन ही है। वही शक्तिका स्रोत है। फलतः जीवनको संघर्षमय, रणक्षेत्र और ऊबड़-खाबड़ पथ समझकर उसमें उतरनेके लिए तैयार हो जाओ।

फिर जब जिन्दगीमें रगड़ ही रगड़ है तब जय-पराजय, दुःख-सुख, आशा-निराशा, अंधकार-प्रकाशके दर्शन होते ही रहेंगे। ये चक्रकी भाँति आते और जाते रहते हैं। न कभी सुख

ही स्थायी होता है और न कभी दुःख ही। एक आता है दूसरेको अपने गर्भमें लिये हुए। सबको इनका सामना करना पड़ता है और करना पड़ेगा। जब यही जीवनकी वास्तविकता है तब उससे कभी त्रस्त होनेकी आवश्यकता क्या है? कोई चाहे या न चाहे पर परिस्थितियाँ और जगतकी गति इन्हें मेरे, तुम्हारे और सबके लिए सृजती ही रहेंगी। इस स्थितिमें आवश्यकता होती है मनकी तुलाको ठीक रखनेकी। कभी उसे डगमगाने न देनेमें ही सफलता और सार्थकता है। ये आवेंगे, अनित्य होते हुए भी जीवन पर अपनी छाप छोड़ जायेंगे। और सुख-दुःख, आशा-निराशाके उन क्षणोंकी स्मृति प्रदान कर जायेंगे जो अनन्तमें विलीन होनेके बाद भी सत्यके रूपमें जीवनको प्रभावित करते रहेंगे। यह होते हुए भी मनको अविचल रखना ही मानव-जीवनकी साधना होनी चाहिये क्योंकि यही उसके संचालनका एकमात्र उपाय है। मनकी वह स्थिति बनानेकी चेष्टा सतत करते रहना चाहिये जो सुख दुखोंको छाया-चित्रकी भाँति जीवन पट पर अभिनय करता देखकर भी दोनोंमें संतुलन कर सके, उन्हें समबुद्धिसे देख सके और उन्हें अभिनय ही समझ सके। मानता हूँ कि यह पथ कठोर है, आदर्शतक पहुँचना कठिन है पर इसके लिए सचेष्ट रहना हमारे हाथमें है। इस सचेष्टतामें ही हमारे कर्तव्यकी पूर्ति हो जाती है।

मानवके हाथमें जीवनकी घटनाओंको अपने अनुकूल प्रवाहित करनेकी शक्ति अवश्य ही नहीं है पर कर्तव्यका निर्धारण करके

उसकी पूर्ति करनेका दृढ़ संकल्प करनेकी स्वतंत्रता अवश्य है। संकल्प और इच्छाशक्तिकी यह स्वतंत्रता स्वीकार करनी पड़ती है क्योंकि इससे जीवनको बल और सहारा, ओज तथा स्फूर्ति मिलती है। कर्तव्य-बुद्धिको मलिन करनेवाली परिस्थितियाँ भी जगतमें थोड़ी मात्रामें उद्भूत नहीं होतीं। पदे-पदे उनका अनुभव होता है। मनुष्यकी अपनी प्रवृत्तियाँ, उसका अपना मोह, जगत्‌की अनेक धाराएँ उसके इस पथमें बाधक होती है पर इन वाधाओका संवरण करना भी उसके कर्त्तव्य-क्षेत्रमें ही आता है। फलतः यथासंभव सुख-दुःखोकी चिन्ता और आशा-निराशाके प्रभावसे अपनेको अछूता रखनेकी चेष्टा करते हुए उन कर्तव्योकी पूर्तिमें लगा रहे जिनका निर्धारण मानवकी चेतना जीवनकी पूर्णता, विकास और अभ्युत्थानके लिए आवश्यक समझती है तथा जिसे वह मानवताकी विशिष्टता और महत्ताके अनुरूप तथा अनुकूल अनुभव करती है। यही है आदर्श। जो जीवन आदर्शसे अनुप्राणित और उत्प्रेरित नहीं है वह निकम्मा और निर्जीव है। आदर्श ही जीवनकी उपयोगिता और मूल्यका अकन करते हैं। आदर्शकी ज्योतिसे क्षणभरके लिए भी प्रज्वलित होकर बुझ जानेवाला जीवन उससे कही अच्छा है जो धूमाहत अग्निकी भाँति सिसक-सिसक कर जिन्दा रहता है। 'क्षण प्रज्वलितं श्रेयो, न च धूमायितं चिरम्'।

अब मैं यह पत्र समाप्त करना चाहता हूँ। मेरे मनमें अभी और बहुतसी बाते कहनेके लिए आ रही है। उन्हें पुन.

यथावसर कहूँगा। मानव समाजका प्राणी है। उसपर उत्तर-दायित्वोंका बोझ लदा हुआ है। वह उस विरासतसे दबा हुआ है जो न जाने कितनी सहस्राब्दियोंके इतिहासने उसे प्रदान कर दी है। वह अपनी चेतनाकी प्रेरणाओंसे भी आबद्ध है। हजारो वर्षोंके संस्कारोंसे भी उसका जीवन प्रभावित है। उसका अपना व्यक्तित्व भी दो पहलू रखता है, जो परस्पर विरोधी होते हुए भी परस्पर पूरक हैं। इस स्थितिमें उसके समस्त पहलुओं-की विवेचना नहीं की जा सकती है। जीवनका इतना ज्ञान भी भला किसे हो सकता है ? अनन्त सृष्टिके असीम क्षेत्रमें अपने भौतिक और अभौतिक रूपोंसे विचरण करनेवाला यह ससीम प्राणी प्रकृत्या असीमका उद्‌घाटन करके उसमें अपनी सीमाका अन्त कर देनेपर तुला दिखाई देता है। अतः ऐसे विचित्र जीवनके संबन्धमें रेखा खींचकर सब बातें कह देनेका साहस कोई नहीं कर सकता। फिर भी व्यक्तिकी अपनी अनुभूतियाँ और ज्ञान उसके लिए सत्य ही है। फलतः उन्हें तुम्हारे सामने रख दिया है। अब और जो कुछ कहना होगा उसे आगे कहूँगा। आज यहीं शान्ति विराजे !

तुम्हारा

कमलापति

१६

नैनी सेण्ट्रल जेल

ता०............

प्रिय लालजी !

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसका अपना व्यक्तित्व अलग है और समाजका समूह अलग। पर इस भिन्नताके होते हुए भी दोनों इस प्रकार एक दूसरेसे मिल गये है कि उनकी अलग अलग सीमा बाँधना प्रायः कठिन हुआ करता है। व्यष्टिसे समष्टि बनता है पर समूहसे अलग होकर व्यक्तिका रहना भी असंभव हो जाता है। मानव व्यक्तित्वने कदाचित अपनी आवश्यकताओं और अनेक परिस्थितियोंसे बाध्य होकर तथा अपनी सहज उत्प्रेरणाके वशीभूत होकर ही सामाजिक-जीवन यापन करनेका निश्चय कभी कालान्तरमें किया होगा। निस्संदेह वही समाजका जनक रहा होगा। यह सच है कि व्यक्ति व्यक्तिसे मिलकर

समाज बना होगा पर समाजने मूर्तरूप धारण करनेके बाद फिर मनुष्यके व्यक्तित्वकी सीमाको बहुत बड़े अंशतक अपनेमें लय कर देनेमें सफलता भी अवश्य प्राप्त की होगी। इस विषयमें विद्वानोंमें बड़ा मतभेद रहा है कि समाज बड़ा है अथवा मानव व्यक्तित्व। मनुष्य समाजके लिए है अथवा समाज मनुष्यके लिए? मानवकी उपयोगिता समाजके सुचारु रूपसे संचालनके लिए, उसके विकासके लिए है अथवा समाज साधन है मनुष्यके व्यक्तित्वकी पूर्णता और विकासका? ये प्रश्न ऐसे हैं जिनपर विचारक कभी एक मत न हो सके। कोई कहता है कि उस समाजकी कोई सार्थकता ही नहीं है जो मनुष्यको स्वतंत्रता पूर्वक अपने व्यक्तित्वका विकास करनेका अवसर नहीं देता। वे समझते हैं कि समाजकी रचनाका लक्ष्य ही यह है कि मानव उसके द्वारा अपने अक्षुण्ण व्यक्तित्वको समुन्नत कर सके।

पर दूसरे प्रकारके विचार रखनेवालोंका कहना है कि मानव-जीवनकी प्रवृत्ति ही है कि वह समाजकी सामूहिक उन्नतिका साधक हो। समष्टिमें ही व्यष्टिकी उन्नति हो सकती है। समूहके लिए ही व्यक्तिकी सत्ता है। यदि वह समूहके हितके साधकके रूपमें अपना अस्तित्व नहीं रखता तो उसकी कोई उपयोगिता ही नहीं है। इन दोनो प्रकारोंके विचारोंमें बल है, प्रोढता है पर मै समझता हूँ कि सचाई दोनोके बीचमें है। मनुष्य समाजके लिए है और समाज मनुष्यके लिए। दोनोंका अस्तित्व अन्योन्याश्रय है और दोनो परस्परके हित

और उन्नतिके साधकके रूपमें हैं। समाजको व्यक्तिकी चिंता करनी होगी, उसके विकास और उसकी उन्नतिका आधार बनना होगा और उसके अभ्युदय तथा निश्रेयसका मार्ग प्रशस्त करना अपना लक्ष्य बनाना होगा। जीवनका व्यावहारिक रूप भी यही है। इसी प्रकार व्यक्तिको समाजकी चिंता करनी पड़ेगी, समष्टिमें व्यक्तित्वका लय करना पड़ेगा और सामूहिक रूपसे उसके कल्याण तथा हितको अपने जीवन, आचरण तथा सक्रियता और कर्तव्यका प्रधान लक्ष्य बनाना होगा। समाजकी शक्ति, उसका संघटन, उसका प्रभाव मनुष्यके लिए बंधन और रुकावटका काम करते है पर इसी बंधन, रुकावट और 'ब्रेक'में मनुष्यके विकास और उसकी मुक्ति तकका आयोजन किया गया है। इसी प्रकार समाज व्यक्तियोंके चरित्र, उनकी शक्ति और उनकी मौलिकतासे त्रस्त होता है। व्यक्तियोंकी विशिष्टता उसे कभी कभी जड़से हिला देती है। व्यक्तिविशेष विद्रोहके प्रतीक हुए है, सामाजिक बंधनोंको छिन्न भिन्न करते रहे हैं और उनके स्थापित स्वरूपको मूलसे उलट पुलट देनेके कारण हुए है। पर व्यक्तियोंकी यह अन्तः प्रेरणा और आभ्यन्तरिक शक्ति तथा चेतना समाजके विकासका कारण हुई है। विद्रोहों और क्रान्तियोंने नये तथा अधिकतर विकसित और उन्नत समाजोंको जन्म दिया है जिसके द्वारा मानवता आगे बढ़ी है। उसके विकासका इतिहास स्पष्टतः इसका साक्षी है।

इस प्रकार समाज और व्यक्तित्व ऊपरसे एक दूसरेके विरोधी दिखाई देते हुए भी वस्तुतः परस्परके पूरक रहे है और परस्परका हित तथा कल्याण दोनो करते रहे हैं। मनुष्यने समाजकी रक्षा और हितके लिए अपने व्यक्तिगत स्वातंत्र्यकी सीमाको न केवल परिसीमित क्रिया है बल्कि उसे समाजमें लय कर दिया है। एक प्रसिद्ध कहानी है कि एक सज्जन लंडनकी सड़कोंपर अपनी छड़ी घुमाते हुए टहल रहे थे। उनकी घूमती हुई छड़ी किसी पीछे आनेवालेकी नाकसे लड़ गयी। फलतः उन सज्जनपर अदालतमें मुकदमा चला। अपनी सफाईमें उन्होने यह तर्क उपस्थित किया कि सड़क सार्वजनिक संपत्ति है और मनुष्यकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता कानूनसे सुरक्षित है। फलतः सड़कपर स्वतंत्रतापूर्वक छड़ी घुमाते हुए टहलनेका मुझे अधिकार है। अदालतने अपने फैसलेमें कहा कि किसी मनुष्यकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता वहाँ समाप्त हो जाती है जहाँ दूसरे मनुष्यकी नाकका आरंभ होता है। वास्तवमें इस फैसलेमें मानव और समाजके सारे संबन्धका सच्चा अर्थ भरा हुआ है। मनुष्यने अपनी रक्षा और स्वतंत्रताके लिए ही अपने अधिकारोंका बहुत बड़ा अंश समाजको समर्पित कर रखा है। समाज भी व्यक्तियोंकी रक्षा और स्वतंत्रताके लिए ही व्यक्तिके अधिकारोंकी सीमाको संकुचित करनेके लिए बाध्य हुआ है। यदि ऐसा न हो और सब छड़ी घुमानेकी अपनी स्वतंत्रताका उपयोग करने लगे तो किसी एककी भी नाक सुरक्षित दिखाई न देगी। फलतः अपनी अपनी नाककी रक्षाके

लिए ही अपने अपने अधिकार समाजके चरणोंमें अर्पण कर देने पड़े है।

इस प्रकार यदि विचार करके देखा जाय तो ज्ञात होता है कि समाज और व्यक्तिके अधिकार एक सीमा तक अलग अलग होते हुए भी एक बिन्दुपर जाकर मिल जाते हैं। अपनी नाककी रक्षा करनेका मेरा अधिकार और मेरी नाककी रक्षा करनेका समाजका अधिकार एक स्थानपर परस्परमें ही लय हो जाते है। इसी प्रकार दोनोंके कर्तव्य भी अलग अलग होते हुए एक स्थानपर जाकर मिल जाते हैं। अपनी नाककी रक्षाके लिए दूसरेकी नाककी रक्षा करना आवश्यक देखकर हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम छड़ी घुमानेकी अपनी अक्षुण्ण स्वतंत्रताको परिमित कर दें। वहीं समाजका भी कर्तव्य है कि एक सीमा तक छड़ी घुमानेके हमारे अधिकारकी रक्षा करते हुए भी मेरी नाक बचानेके लिए एक बिन्दुपर मेरे अधिकारकी अक्षुण्णता समाप्त कर दे। फलतः मनुष्यका सारा जीवन न केवल व्यक्तिगत है और न केवल समष्टिगत। वह एक सीमातक व्यक्तिगत है तो उसके बाद दूसरी सीमातक समष्टिगत भी है। दोनोंके समन्वय और सामंजस्यपर ही दोनोंका अस्तित्व है। दोनोंकी उपयोगिता दोनोंके लिए है, दोनों दोनोंका हित साधन करते है और दोनो दोनों के विकास तथा पूर्णताके लिए सचेष्ट रहते है। इसीमें अलग अलग उनकी भी पूर्णता और विकास है। व्यक्तिसे समष्टि और समष्टिसे ही व्यक्ति भी बनता है। ऐसी दशामें मनुष्यका जीवन

कितना उलझा हुआ और जटिल हो जाता है, इसकी कल्पना कर लेना कठिन नहीं है। फिर कैसे संभव है कि मानव जीवनके यापनकी विस्तृत योजना कोई उपस्थित कर सके। उसके कर्तव्योंकी सीमा कितनी विस्तृत हो जाती है? उसका व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और मानवीय जीवन अधिकार और कर्तव्योंके ताने-बानेसे किस पेचीदगीके साथ बुना हुआ है, इसे देखकर बेचारे मनुष्यपर दया आती है। उपर्युक्त छोटे-छोटे विभागोंमें बँटा हुआ होने पर भी उसका जीवन सामूहिक रूपसे एक है। अलग अलग विभागोंके कर्तव्य होते हुए भी यह कोई नहीं कह सकता कि व्यक्तिगत दृष्टिसे उसका कर्तव्य एक है और सामाजिक दृष्टिसे बिलकुल दूसरा। साधारणतः व्यक्तिगत दृष्टिसे भी उसके जिस कर्तव्यका निर्धारण होता है उसपर उसके सामाजिक या मानवीय जीवनकी छाया भी रहती है। इसी प्रकार सामाजिक दृष्टिसे उसके जिस कर्तव्यका निश्चय होता है उससे उसका व्यक्तिगत हिताहित भी संलग्न रहता है।

उदाहरणार्थ मनुष्यका यह कर्तव्य है कि वह नंगा होकर सड़कपर न नाचे। अवश्य ही सड़कपर नग्न नृत्य न करना या करना उसके व्यक्तिगत जीवनसे ही संबन्ध रखता है और यदि उसने न नाचनेका निश्चय किया है तो अपना व्यक्तिगत कर्तव्य समझकर ही किया है पर स्पष्टतः उसपर सामाजिकताकी छाप दिखाई देती है। समाजको उसका यह प्रकार ग्राह्य नहीं है अतः इस कारण भी उसे नंगा होकर न नाचना अपना व्यक्तिगत

कर्तव्य निर्धारित करना पड़ा। चोरी न करो, असत्य न बोलो, व्यभिचार न करो, हत्या न करो आदि जितने भी साधारण कर्तव्य हैं वे मनुष्यके लिए व्यक्तिगत कर्तव्य हैं इसलिये कि चोरी करना अथवा असत्य संभाषण करना अनैतिक है, गौरव-हीन है, भ्रष्ट है, मानव जीवनके विकासका बाधक है और असुंदर है। पर जहाँ ये बातें हैं वहीं यह भी है कि इन कार्योंसे समाज में अव्यवस्था फैलेगी, उसका संघटन छिन्न उठेगा और सामाजिक जीवनका सचालन असंभव हो जायगा। स्पष्ट है कि मनुष्यके व्यक्तिगत कर्तव्यमें भी सामाजिक कर्तव्य अथवा उसकी समाज-बुद्धि मिली-जुली है। इसी प्रकार सामाजिक कर्तव्यका एक उदाहरण भी ले लिया जाय। देशपर शत्रुने आक्रमण कर दिया है। सामाजिक कर्तव्यकी अपेक्षा है कि प्रत्येक व्यक्ति देशकी, समाजकी रक्षाके लिए जीवन तककी आहुति देनेको तैयार हो जाय। पर विचार करो कि क्या इसमें केवल उसकी सामाजिक बुद्धि और सामूहिक चेतना ही एकमात्र कारण है जो उसके कर्तव्याकर्तव्यका निर्धारण कर रही है? क्या शत्रुके आक्रमणसे उसका जीवन संकटापन्न नहीं हो जाता? क्या उनकी रक्षा करनेके लिए उसकी व्यक्तिगत चेतना उसे शत्रुका सामना करनेके लिए कहीं भीतर ही भीतर उत्प्रेरित नहीं कर रही है?

मैं तो विवेचना करने पर स्पष्टतः इस परिणामपर पहुँचता हूँ, मनुष्य कर्तव्यका निर्धारण न केवल व्यक्तिगत दृष्टिसे करता है

और न केवल सामाजिक। अलग अलग क्षेत्रमें उसका बँटवारा नही किया जा सकता। उसके सभी कर्त्तव्य व्यक्तिगत भी है और सामाजिक भी। उसके सारे जीवनपर दोनोंका गहरा रंग हैं जो मिल जुलकर एक हो गये है। उन्हें बिलग करनेकी चेष्टा व्यर्थ है। आजका युवक, जो जीवन और जगतमें प्रवेश करने जा रहा है, यह अच्छी तरह समझ ले कि उसके जटिल जीवनपर कर्तव्योका उलझा हुआ महान बोझ लदा हुआ है। जीवन सबन्धी इस तात्विक बातके सम्यक ज्ञान तथा तदनुकूल आचरणको ही मै चरित्र समझता हूॅ। जिस व्यक्तिमें यह भावना न हो उसे मैं चरित्रहीन मानता हूॅ। कर्तव्याकर्तव्य तथा जीवनके संचालनकी विस्तृत और तफसीलवार योजना भले ही न उपस्थित की जा सकती हो पर स्थूल रूपसे यह सिद्धान्त सरलताके साथ स्थिर किया जा सकता है कि जीवनके पहलुओं को सामने रखकर व्यक्ति जिस क्षण अपनी चेतना और भावुकताके द्वारा कर्तव्यका निर्धारण करता है और दृढता तथा संकल्पके साथ उस कर्तव्यके परिचालनकी चेष्टा करता है उसी क्षण वह अपने बड़े भारी कर्त्तव्यकी ही पूर्ति कर देता है। यही है उसका चरित्र जो उसे मानव बनाता है। सुख-दुःख, जय-पराजय, सफलता-असफलता, आशा-निराशाके प्रभावोंसे यथा संभव अपनेको अछूता रखते हुए अपने कर्तव्यकी पूर्तिपर दृढ़ निश्चयके साथ संलग्न होना मानवका महान चरित्र है जिसकी सृष्टि और उपलब्धि जीवनका सर्वोत्कृष्ट आयोजन है।

कर्तव्यके क्षेत्रमें सुख, दुःख, जय, पराजयकी विवेचनाके लिए गुंजाइश भी नही रहती। कारण यह है कि कर्त्तव्यकी प्रवृत्तिके मूलमें केवल ज्ञान, विवेक अथवा विश्लेषण नहीं है। उसका मूल प्रेरक मानव मनकी भावुकता है। मनुष्यमें विवेक जिस प्रकार अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा अधिक जाग्रत है उसी प्रकार उसकी भावुकता भी अधिक विस्तृत तथा सूक्ष्म है। पशुको यदि कोई पीडित करे तो वह चिल्लाने लगेगा पर कदाचित् अपनेसे इतर किसी दूसरेका क्लेश देखकर उसका कलेजा नहीं रोता। मनुष्य दूसरेके सुख-दुःखकी अनुभूति स्वयं करता है, किसीको भूखा देखकर दुःखी होता है और किसीको सहन करते देखकर उसके नेत्रोंमें जल भर आता है। उसकी यह विशेषता उसकी भावुकताके अधिक विस्तार तथा सूक्ष्मताकी द्योतक है। उसका भावात्मक अंश ही उसे कर्त्तव्यकी ओर प्रेरित करता है।

वे आधार जिनपर मनुष्य कर्तव्योंका निर्माण करता है मूलतः भावात्मक ही होते हैं। मनुष्यको जगत और प्रकृतिके व्यापक विस्तारमें जो सत्य झलकता है, जो सौंदर्यकी आभा उसकी अन्तर्चेतनाको प्रभावित कर जाती है, उच्चता, पवित्रता तथा गौरवके जिस आभासकी अनुभूति उसे हो जाती है वह विवेचनामूलक नहीं भावमूलक ही है। आदर्शोंकी स्थापना इन्हीं अनुभूतियोंपर अवलंबित है। ज्ञान और विवेक तो इस अनुभूतिके गर्भसे ही उद्भूत होते हैं जो उसकी भावुकताको अधिक परिपुष्ट, परिष्कृत

और परिमार्जित बनाते है। फलत: आदर्शोंसे उद्भूत उन्नत भावना और उसमें प्रवृत्त होनेकी इच्छा और चेष्टा ही कर्त्तव्य है जो मनुष्यको उच्चतरकी ओर ले जाती है। जिन राष्ट्रोंमें चरित्रका यह विकास उनके व्यक्तियोंमें सामूहिक रूपसे हुआ है वे फले फूले और गौरवान्वित हुए है। जिनमें इसके अभावके लक्षण प्रकट हुए है वे धीरे धीरे पतनकी ओर अग्रसर हुए है और एक दिन नष्ट हो गये है। मै भारतीय राष्ट्रके पतन और विघटनका एक बड़ा भारी कारण उसमें चरित्रका अभाव समझता हूँ। जबसे यह विकार उत्पन्न हुआ यह देश और हमारा समाज तथा समाज-का एक एक व्यक्ति गिरता गया है।

चरित्रकी यह दुर्बलता व्यापक रूपसे न केवल सामाजिक बल्कि वैयक्तिक जीवनपर कुप्रभाव डालती है। व्यक्तियो या राष्ट्रो-के चरित्रका अभाव केवल बड़ी बड़ी बातोमें नहीं पर जीवन संबन्धी छोटी छोटी बातोमें भी दिखाई देता है। मेरी तो धारणा है कि किसी व्यक्तिके चरित्रको भॉपने या उसे कसौटीपर कसनेके लिए उसके जीवनकी छोटी छोटी और तफसीलकी बातोंकी ओर ही देखना चाहिये। बहुधा लोग इसकी उपेक्षा करते हैं पर वास्तविक जॉच यहींसे हो सकती है। मनुष्य कैसे उठता बैठता है, कैसे रहता है, कैसे अपने सामान रखता है, कैसे दूसरोसे व्यवहार करता है, कैसे अपने आश्रितो, सेवको, मित्रों और कुटुंबी जनोंसे पेश आता है, प्रतिदिनके अपने कार्योंमें किस प्रकारका परिचय देता है आदि बातोपर उसके चरित्रकी छाया पड़ती

रहती है। इस दृष्टिसे भारतके लोगोंके चरित्रपर सामूहिक रूपसे दृष्टिपात करने पर जो जो दृश्य दिखाई देता है वह हमारे चारित्रिक ह्रास और पतनपर प्रकाश डालता है। जो गँवार और अपढ़ कहे जाते हैं, जो शताब्दियों से दलित और शोषित हैं, जिनकी चेतनाको कुंठित कर देनेमें कोई बात उठा नहीं रखी गयीं, उन्हें तो जाने दो पर आज इस देशके पठित समाज और विशेषकर राष्ट्रकी आशाके आधार नवयुवकोंके जीवन पर दृष्टि-पात करो। कहाँ है उनमें आदर्शवादिता और कहाँ है कर्तव्य बुद्धि? और तो और अपने साधारण जीवनको भी वे व्यवस्थित ढंगसे वितानेमें समर्थ नहीं होते। अनुत्तरदायित्व तथा अनि-यंत्रणका ऐसा मूर्त रूप जल्दी दिखाई नहीं देता। निन्दा या शिकायतकी दृष्टिसे मै नहीं कहता पर इस देशमें मानव जीवनकी जो स्थिति हो गयी है उस पर दुःखी होकर कहता हूँ कि युवकोंमें चरित्रका भीषण अभाव देखकर देशके ओर उनके जीवनके संवन्धमें भी निराशा होती है।

जेलमें ही मुझे सुपठित युवकोके साथ रहनेका अवसर मिला है। चौवीस घंटोंके निरंतर साथने स्पष्ट दिखा दिया कि उनमें इन वातोंका कितना कम ज्ञान है। उनकी कोठरियोंमें चले जाइये और वहाँकी अव्यवस्था देख लीजिये। कहीं पुस्तक पड़ी है तो कहीं प्रातःकालके स्नानके समयकी भीगी हुई धोती लपेटी हुई एक कोनेमें अपने भाग्यको रोती हुई सड़ रही है। कहीं पानीका घड़ा लुढका हुआ है तो कहीं चायकी प्याली औंधे

मुँह पड़ी कलप रही है। कहीं बैठकर गप हॉकने लगे तो सारी रात ही बीत गयी। ऊषाकी लालीके साथ साथ सो गये तो बारह बजे उठते दिखाई दिये। भोजनकी घंटी बज गयी तो चट सिरमें तेल पानी लगाकर बाल फेर लिये और भोजनको बैठ गये। इस प्रकारकी स्थिति साधारण रूपसे तुम अपने तथा अपने समुदायके लोगोंके जीवनमें पाओगे। न कार्य करनेकी क्षमता है, न व्यवस्थित जीवन है, न मुक्ताहार विहार है, न मुक्त चेष्टा है और न मुक्त स्वप्न है और न मुक्त आमोद ! किसी कार्यकी जिम्मेदारी हम उठा नहीं सकते। हमपर भरोसा ही नहीं किया जा सकता। किसीको कोई काम दे दिया जाय और उसे उठा ले तब भी यह विश्वास नहीं रहता कि काम हो ही जायगा। कैसे अपने बड़ोंसे व्यवहार करें और कैसा व्यवहार छोटोंसे करें, सामाजिक प्राणी होनेके नाते दूसरोंकी सुविधा असुविधाका ध्यान किस सीमातक रखे और किस प्रकार दूसरोंकी भावनाओंका आदर करें आदि छोटी छोटी बातोंमें जीवनका निकम्मापन स्पष्ट प्रकट दिखाई देता है।

व्यक्तिगत जीवनके इस निकम्मेपनने सारे सामाजिक जीवनमें भ्रष्टता भर दी है। यही कारण तो है कि हम सामाजिक प्राणी होते हुए भी सामाजिकताके गुणोंसे वंचित हैं। रेलके डिब्बेमें बैठे लोगोंको वहीं थूकते देख लो, सड़कोंपर घरभरकी गंदगी बटोर कर फेंकते भी निहार लो। यह ज्ञान ही नहीं रह गया है कि ये ट्रेनें और सड़कें अपनी ही हैं जिन्हें अपने घरकी भाँति ही साफ

सुथरा रखना हमारा काम है। यह ज्ञान हो कैसे ? जब हम अपने मकानोंको गंदा करते फिरते है तो ट्रेन और सड़ककी स्मृति कहॉं रह सकती है ? ऐसी छोटी बातोंको गिनने लगूँ तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ तैयार हो जा सकता है। इनकी ओर संकेत मात्र कर दिया है प्रश्नकी ओर ध्यान आकर्षित करनेके लिए। चरित्रका अभाव वैयक्तिक और सामाजिक जीवनको नष्ट कर देता है। उसकी शून्यताके साथ साथ उचित अनुचित, नैतिक अनैतिक, कर्तव्य अकर्तव्यका विवेक नष्ट हो जाता है। फिर तो 'विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः'। आदर्शोंकी पूजा और कर्तव्योंकी ओर प्रवृत्त होना चरित्रसे ही संभव है। जब वही न हो तो कौन कठिनाइयोंका सामना करते हुए, अपनेको होम कर देनेके लिए तत्पर होकर महान और कठोर कर्मपथकी ओर बढ़नेका साहस और उत्साह प्रकट करेगा ? चरित्रका सृजन ही सुसंस्कृतिका प्रथम सोपान है। उन्नति और विकासका वही साधन है। आदर्शके लिए सत्यके लिए, सद्भाव और औचित्यके लिए कष्ट उठाने तथा आवश्यक हो तो बलि तक चढ़ जानेको प्रेरणा चरित्र ही प्रदान करता है।

जिस शिक्षासे चरित्रका उदय न हो वह शिक्षा भी निकम्मी, निर्जीव और व्यर्थ है। खेद है कि आज हमारे देशकी शिक्षा-पद्धतिमें इसका भारी अभाव दिखाई देता है। कदाचित् जान-बूझकर इसकी उपेक्षा की गयी है क्योंकि चरित्रवानकी पराधीनता, दलन, शोषण और पतन असंभव है। चरित्रशीलमें न दीनता

होगी न दैन्य, न मुफ्तखोरी होगी न आलस्य, न भय होगा न कायरता, न संकुचित स्वार्थके लिए चाटुकारिताकी प्रवृत्ति होगी और न असत्य तथा अनौचित्यको सहनेका घृणित अभ्यास। आजकी शिक्षा फैशनेबुल भले ही बना दे, शौकीनी तथा स्वपूजाकी भावना भले ही भर दे, दिखावट और बननेकी रुचि भले ही प्रदान कर दे, अपने ही सुखके लिए संसारको साधन समझनेकी चाह जरूर पैदा कर दे, उपयोगितावाद और उदरपूर्तिको जीवनका एकमात्र लक्ष्य बनाकर विवेक तथा सद्प्रवृत्तियोंका भले ही संहार कर दे पर इस देशके युवकोंमें तेजस्वी चरित्रका संचार नहीं कर सकती। मैंने समाचारपत्रोंमें कुछ महीने पूर्व एक संवाद पढ़ा था। मलाया प्रायद्वीपके एक नवाब साहब कुछ वर्ष पूर्व इंगलैण्ड गये हुए थे। उस समय युद्ध भीषण रूपसे हो रहा था और लंडनको जर्मन विमान बम-वर्षासे उद्ध्वस्त कर रहे थे। नवाब साहब एक दिन एक होटलमें पहुँचे जहाँ उन्होंने देखा कि दस ग्यारह सालकी एक बालिका 'लिफ्ट' ❀ का संचालन कर रही थी। लिफ्ट संचालनका काम दायित्वपूर्ण समझा जाता है। छोटी सी सुकुमार बालिकाको यह कार्य करते देखकर नवाब साहबको आश्चर्य हुआ। उन्होंने उससे पूछा कि यह काम तुम करती हो या तुम्हारे पिता। बालिकाने उत्तरमें कहा 'काम मेरे पिता करते हैं। पर कल रातकी

❀ बिजलीसे परिचालित एक यंत्र जिसके द्वारा ऊँची इमारतोंमें लोग नीचे ऊपर विना सीढीके उतरते चढ़ते हैं।

लंडन पर जो बम बाजी हुई उससे मेरा मकान नष्ट हो गया। पिताजीकी मृत्यु हो गयी और माँ घायल होकर अस्पतालमें पड़ी है। केवल मैं निरापद् बच गयी। यह सोचकर कि पिताजीकी मृत्युके कारण इस काममें अड़चन होगी मैं प्रातःकाल इसे पूरा करनेके लिए आ गयी।'

बालिकाका उत्तर कितना मार्मिक है। पर यह अंग्रेज जातिके चरित्रका द्योतक है। कर्तव्यके प्रति कैसी निष्ठा, कैसी दृढ़ता, कितना त्याग और कितना बोध भरा हुआ है। यह है चरित्र जिसके बल पर अंग्रेज जाति संसारकी महती शक्तिके रूपमें अवतीर्ण हुई है। हमारे देशमें क्या इसकी कल्पना भी कोई कर सकता है? यह है अभाव जिसका अनुभव युवकको करना चाहिये। उसके परिहारका पुनीत कर्तव्य और चरित्रका विकास अपनेमें तथा देशमें करनेका उत्तरदायित्व युवक पर ही है। सामाजिक जीवनके लिए तो आवश्यक है ही व्यक्तिगत जीवन की सफलता और सौंदर्य भी इसी पर अवलंबित है। चरित्रके क्षेत्रकी सीमा बड़ी विस्तृत है। साधारण रहन-सहन और व्यव-हारसे लेकर सदाचार और उज्ज्वल आदर्शोंके प्रति आस्था तक सब चरित्रकी ही सीमामें आते है। आज जीविकोपार्जनकी समस्या पठित युवकके सामने भारी समस्या हो गयी है। उनकी बेकारी और दरदर की ठोकरें खाना रोमांचक हो गया है। आजके समाजमें जीवनका संघर्ष कठोर हो गया है। इसमें निकम्मे, चरित्रहीन और अयोग्य लोगोंके लिए कोई स्थान नही

है। मैं मानता हूँ कि इस देशमें पराधीनताके कारण जीवनोपाय के साधनोंकी सीमा विघातक रूपसे परिमित हो गयी है पर इसके साथ-साथ मै यह भी समझता हूँ कि जो थोड़े बहुत क्षेत्र हैं उनके लिए योग्य व्यक्तियोंका अभाव भी दिखाई देता है। किसी प्रकार रहकर परीक्षा पास कर लेना अथवा ठाट-बाटके परिधानोंसे अपनेको सुशोभित कर लेना योग्यताका प्रमाण नहीं है। योग्यता वह है जिसमें कार्य करनेकी क्षमताके साथ-साथ उत्तरदायित्वका बोध हो, जो काम उठाया जाय उसमें गौरव तथा आनन्दकी अनुभूति हो और जो किया जाय उसे सुचारु, सुंदर तथा उत्तम ढंगसे करनेकी चेष्टा हो। भीतर भी चेतना प्रबुद्ध हो और जो कर्तव्य समझ कर अंगीकृत किया गया है उसे पूरी शक्तिके साथ संपन्न करनेका यत्न किया जाय। यह है योग्यता जिसका अभाव दिखाई देता है। वास्तवमें इस अयो-ग्यताका कारण चरित्रकी ही कमी है।

कर्ममें कुशलताका ही नाम योग है, यह तो भगवान कृष्णने भी कहा है। कोई काम किया जाय पर कुशलताके साथ सुंदरता तथा आनन्दके साथ किया जाय तो उसमें न केवल सजीवता आ जाती है बल्कि ऐसा करना मनुष्यके उज्ज्वल चरित्रका द्योतक है। मनुष्यकी विशिष्टता और सभ्यता तथा सौंदर्य और महत्ता उसके बाह्य आडबरोंमें नहीं है। कोई कितने ही बहुमूल्य कपड़े बड़ी शानके साथ क्यो न पहिन ले, अपने स्वरूपको सौंदर्य वर्द्धक पदार्थोंसे रंग चुँगकर कितना

भी आकर्षक क्यों न बना ले, कितने बड़े ऐश्वर्य तथा संपत्तिका अधिकारी क्यों न हो तथा पुस्तकोंको पढ़कर कितना बड़ा विद्वान भी क्यों न हो जाय पर यदि उसमें कर्म-कुशलता नहीं है तो वह भ्रष्टचरित्र है। ऐसे व्यक्तिका मूल्य जीवनमें कुछ भी नहीं है। फलतः जीवनके छोटेसे छोटे कार्यसे लेकर महान कर्तव्योंतकमें कुशल होना मनुष्यकी भारी साध होनी चाहिये। यदि परिधान पहनते हो तो उसका बहुमूल्य होना आवश्यक नहीं है पर स्वच्छ, चुस्त और सुरुचिपूर्ण होना कुशलताका द्योतक है। इसी प्रकार कोई भी कार्य क्यों न हो मनुष्यकी योग्यता उसकी इस बातसे प्रकट होती है कि वह उस कार्यको कितनी सफलता, कुशलता और सुदरताके साथ करता है। आज विदेशियोंकी और विशेषकर अंग्रेजोंकी नकल प्रत्येक बातमें करना भारतके वायुमंडलमें छा गया है। इसीमें आधुनिकता और सभ्यता दिखाई देती है। किसी भी विश्वविद्यालयके विद्यार्थीसे बातें करते हुए स्पष्ट हो जाता है कि अधिकतर लोग सभ्यताका अर्थ इस नकलको ही समझते हैं। बात बातमें 'कलचर्ड सोसाइटी'का नाम लिया जाता है। थोड़ी सी जिरह कीजिये और आपको ज्ञात हो जायगा कि अपरि पक्वबुद्धिवाले विचारे युवककी समझमें 'कलचर'का अर्थ है अंग्रेजी रहन सहन, अंग्रेजी वेषभूषा और अंग्रेजी विचारों तथा संस्कारोसे प्रभावित जीवनका ढंग। ऐसे लोगोंको वे 'कलचर्ड सोसाइटी'के लोग समझते है। यदि कोई युवती स्वच्छन्द सिनेमा देखती है, लिप-

स्टिक पाउडर तथा ऊँची एड़ीके जूतोंका उपयोग करती है, अपने शरीरका अधिकांश अंश अनावृत रखकर अवयवोंके लावण्यका प्रदर्शन करती है तथा बिना किसी संकोच और शीलके प्रतिदिन दर्जनों युवकोंसे काम शास्त्रसे लेकर मोक्षशास्त्र तक बातें बेधड़क रूपसे करती है और सबपर यह प्रभाव डाल देती है कि उसका प्रणय उसी व्यक्ति विशेषसे है तो वह युवती 'कलचर्ड' कही जायगी। घरवालोंकी कठिन कमाईको सूट बूट और नेकटाई-में फूंकनेवाले तथा तमाम भारतीय आदर्शों और अपने इतिहास तथा साहित्यसे अनभिज्ञ होते हुए भी उसे गँवारू और दकिया नूस कहनेवाले, मुँहमें चुरट लगाए, टेढे चलने वाले तथा मुंह फुलाकर अपने समान किसीको न सुंदर और न विद्वान समझने वाले नवयुवक 'कलचर्ड' है और दूसरे सब उनकी समझमें बुद्धू तथा लंठ और असभ्य है।

'कलचर' या सभ्यताके संबन्धकी यह भ्रान्त धारणा आजकी शिक्षा पद्धति तथा देशके भयावने चारित्रिक पतनका ही परि-णाम है। युवकोंके समझमें यह मोटीसी बात भी नहीं आती कि अंग्रेज जातिकी महत्ता उसके इन बाह्याडंबरोंमें नहीं है। ये आडंबर तो वस्तुतः पश्चिमके विनाशके कारण हो रहे है। और उसके उस दूषित दृष्टिकोणसे उद्भूत हुए है जो उस भूखडके जीवनका संहार कर रहा है। पर इन आडंबरोंके भीतर पश्चिमकी जातियोंका कुछ गुण छिपा हुआ है जो वास्तवमें उनकी शक्ति और महत्ताका आधार है। वही है उनकी संस्कृतिका सदांश

और उत्तमांश ! यदि उनकी नकल करना ही है तो उस उत्तमांश-की ही नकल करनी चाहिये। अंग्रेजोंकी दृढ़ता, उनकी अनुशासन प्रियता, सामाजिक कर्तव्योंके प्रति उनकी जागरूकता, उनकी निर्भयता और सबसे बढ़कर कर्मकुशलता और कार्यक्षमता उनमें वह शक्ति उत्पन्न करती है जिसके बल पर वे जगतका नेतृत्व करनेकी हिम्मत करते है। इस देशमें मुसलमानी राज्यकी समाप्तिके समय डच आये, पोर्चुगीज आये, फरांसीसी आये और अंग्रेज आये। यहाँके हिन्दू और मुसलमान, जिन्हें अपनी अपनी पुरानी सभ्यताका दंभ था और अतीतके इतिहास पर गर्व था उपस्थित ही थे। पर शासन सत्ता पर अधिकार जमानेके संघर्षमें अंग्रेज बाजी मार ले गये। इस देशके अधिवासी तो मिटे ही पर युरोपकी कुछ जातियाँ भी उनके सामने अखाड़ेमें पछाड़ खा गयीं। तत्कालीन इतिहासका अध्ययन करने पर इसके अनेक कारणोंमें बड़ा भारी कारण यह भी दिखाई देता है कि उन जातियोंमें न अंग्रेजोंके समान अनुशासनप्रियता थी और न थी कार्यकुशलता। उनमें अपने ऊपर आये हुए उत्तर-दायित्वको वहन करने और उसे पूरा करनेका भाव ही नहीं था। परिणामतः वे पराजित हुई।

इस महायुद्धमें जहाँ हिटलरी चरणने बहुतोंके मस्तक पर पदाघात किया है अंग्रेज अपनी नैसर्गिक दृढ़ता और कार्य-क्षमताके बल पर ही बच गये है और संभवतः विजयी भी होते जा रहे है। अपने पड़ोसी जापानके इतिहास पर दृष्टि डालते

ही उसकी उन्नति, उसकी शक्ति और उसकी सफलताका कारण उस राष्ट्रका महान चरित्र ही मालूम होता है। जापानियोंकी उग्र राष्ट्रवादिता तथा साम्राज्यवादी लोलुपताकी जितनी निन्दा की जाय थोड़ी है पर उनकी अनुशासन-प्रियता, कर्तव्य पर डटे रहनेकी भावना और जिसे उचित समझते है उसके लिए मर मिटनेकी चाह श्लाघनीय है जो उनकी महत्ताका रहस्य प्रकट करती है। इसी प्रकार प्राचीन राष्ट्रोंके पतनके इतीहासकी ओर देखो। बहुधा यह सत्य दिखाई देगा कि उनके पतनका कारण उनका चारित्रिक ह्रास भी रहा है। यह सत्य न केवल सामूहिक राष्ट्रीय जीवनपर लागू है बल्कि वैयक्तिक जीवन भी इससे बरी नहीं है। बरी हो भी कैसें सकता है? अंततः व्यक्तियोंसे ही राष्ट्र बनते है। वे ही उसकी विराट कायाके विधायक तत्त्व है। जिस प्रकार शारीरिक तत्त्वोके क्षयके साथ शरीरका नाश होता है उसी प्रकार व्यक्तियोके पतनके साथ-साथ राष्ट्र भहरा कर गिर जाते हैं।

खेद होता है यह देखकर कि उस देशमें चरित्रका यह अभाव दिखाई देता है जिसने कदाचित् मानव जातिमें सबसे प्रथम इसकी ओर ध्यान दिया था और उसके विकासके लिए दृढ़तापूर्वक पहला कदम उठाया था। प्राचीन भारतकी संस्कृतिकी यह बड़ी भारी विशेषता रही है कि उसने विचारोंमें पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की पर आचरणके सबन्धमें, कर्तव्योंके संबन्धमें कठोर बंधन लगाये। ससारका सबसे बड़ा आचार-

प्रधान धर्म बौद्धधर्म इसी देशमें उद्भूत हुआ और कदाचित् उस समय उत्पन्न हुआ जब मानव जातिने पृथ्वीके किसी खंडमें इस ओर इतना अधिक ध्यान नहीं दिया था। भारत कोरा दार्शनिक नहीं रहा है। दुनिया भरके पुराने और आधुनिक दार्शनिकों और दार्शनिक पद्धतियोंसे इस देशके दार्शनिकों और पद्धतिका जो महान अंतर है वह यही है कि यहाँके लोगोंने सत्य और आदर्शका जो स्वरूप निश्चित किया उसे केवल बौद्धिक विलास तथा मानसिक क्षेत्र तक ही परिमित नहीं रखा बल्कि उसे व्यावहारिक जीवनमें ढालनेकी चेष्टा की और जीवनमें उतारनेका यत्न किया। आशय यह है कि इस देशने जीवनके व्यवहार और उसके संचालनकी ओर सदा विशेष रूपसे ध्यान दिया था। यही कारण है कि स्मृतियोंने धर्मकी सीमामें केवल धार्मिक अनुष्ठानको ही नहीं रखा बल्कि मनुष्य किस प्रकार रहे, किस प्रकार समाजमें व्यवहार करे, किस प्रकार उन विविध प्रकारके लोगोंसे जो उसके संपर्कमें आते है वर्ते तथा किस प्रकार उन लोगोंसे पेश आवे जो उसके निकट सबन्धी है आदि बातोंका भी समावेश कर दिया। फलतः देशके चरित्रकी पूर्णतापर पुराने भारतीयोंको इतना अभिमान था कि मनु बड़े गर्वसे कहते है कि—'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः, स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवा'। अर्थात् इस देशमें उत्पन्न अग्र जन्मा लोगोंसे पृथिवीमें सारी मानव-जाति अपना अपना चरित्र सीखे! आज दुर्भाग्यसे हमारे

पास न कुछ गर्व करने लायक है और न हम कुछ सिखानेकी क्षमता रखते हैं।

इस देशको और विशेषकर नवयुवकोंको अपनी समीक्षा करनी होगी और कठोरतापूर्वक करनी होगी। उन्हें देखना होगा कि उनमें जो दुर्बलताएँ आ गयी हैं, मोह आलस्य, तम और अविवेकका जो उदय हो गया है, उसे विनष्ट करनेके लिए वे क्या कर रहे हैं। यह पथ कठिन अवश्य है पर असाध्य नहीं है। जगतमें लेनिन, गांधी, च्याङ्काई शेक और जवाहरलाल ऐसी विभूतियाँ उत्पन्न होती रहती है जो वैयक्तिक गुणो और चरित्रकी महिमा सप्रमाण अकाट्य रूपसे सिद्ध कर देती है। यह सच है कि सब युवक लेनिन, गांधी नहीं हो सकते पर यह भी निर्विवाद है कि सबके सब मनुष्य अवश्य बन सकते है। मेरी आकांक्षा इतनी ही है। मनुष्य जातिमें अवतरित होकर मानव बननेमें सफलता प्राप्त कर लेना मेरी समझमें सबसे महती सिद्धि है। अपने जीवनका निर्माण करना बहुत कुछ मनुष्यके अपने हाथमें ही है। वही अपना सबसे बड़ा शत्रु है और वही सबसे बड़ा मित्र भी है। यह तथ्य समझ लेने पर जीवनयापन करनेका मार्ग बहुत कुछ आपसे आप स्पष्ट हो जाता है। अब मै समझता हूँ कि इस धाराको यहीं रोक देना उचित होगा। आशा करता हूँ कि जीवनका सचालन करनेमें संक्षिप्त और सांकेतिक रूपसे कही गयी ये बाते भी कदाचित् तुम्हारे लिए सहायक सिद्ध होगी।

तुम्हारा

कमलापति

१७

नैनी सेण्ट्रल जेल

ता०...   ..

प्रिय लालजी !

जीवन बिताना अर्थात् रहना बड़ी भारी कला है जिसके ज्ञानका अभाव अधिकतर जीवितोंमें दिखाई देता है। सुख-दुःख, राग-द्वेष, घृणा-ईर्ष्या, काम-क्रोध, आशा-निराशा, लोभ-स्वार्थ तथा मोह और अहंकार आदि मनोविकारोंका यह जीवन आश्रय-स्थल है। इसके सतत घात-प्रतिघातसे मानव-जीवन विताडित रहता है। दूसरी ओर विवेक और जिज्ञासा, सेवा और त्याग, उत्सर्ग तथा समवेदन, सहायता करने तथा कष्ट उठानेकी प्रवृत्ति, निःस्वार्थता तथा उदारता, सत्यपूजा तथा आदर्श वादिता आदि भाव निरंतर जीवनको प्रभावित करते रहते हैं। मनुष्य इन दोनोंकी अनुभूति करता रहता है। ये प्रवृत्तियाँ क्यों, कैसे और

कहाँ उत्पन्न होती रहती है, इनका प्रभाव किसी मनुष्यपर एक प्रकारसे और किसी दूसरेपर भिन्न प्रकारसे क्यों होता रहता है, इनसे प्रभावित होकर एक एक प्रकारसे और दूसरा दूसरे प्रकारसे व्यवहार करता क्यों दिखाई देता है, ये जीवनके मूलमें है या बाहरसे प्रविष्ट हुई है, यदि मूलमें हैं तो इनका संचरण उसमें किस स्रोतसे हुआ है आदि अनेक प्रश्न है जिनका उत्तर अब तक मनुष्यको संतोषप्रद रूपसे नहीं मिला है। नहीं कहा जा सकता कि उत्तर पानेमें कभी वह समर्थ भी होगा या नही। कदाचित् ये अमूर्त मनोवेग भौतिक शरीरके साथ लगे दिखाई देते हुए भी भौतिकताकी सीमासे कहीं पार आश्रित है, जहाँतक मनुष्यकी सीमाबद्ध भौतिक बुद्धि और विवेचनात्मक शक्ति पहुँच ही नहीं पाती। शायद उसका कारण यह भी हो कि इनकी विवेचना करनेवाला मनुष्य और उसका मस्तिष्क अपने ही अंतः-करणका प्रतिबिंब है और वह अंतःकरण इन्ही प्रवृत्तियोंसे बना हुआ पदार्थ है। फिर वह मस्तिष्क जो इस अंतःकरणकी ही छाया है अपनी विवेचना कैसे कर सकता है? विवेचनाके लिए विवे-चनीय पदार्थसे विवेचककी सत्ता भिन्न होनी चाहिये। जब विवेचना, विवेचनीय और विवेचक सब एक ही हो तो फिर यह कार्य असभवप्राय ही हो जायगा। फलतः मनुष्य अपने स्वरूपके सबन्धमें अज्ञानमें ही है और कदाचित पूर्ण ज्ञान उसे कभी न होगा। पर अज्ञानमें रहना मनुष्यकी ही विशेषता नहीं है। दूसरे जीव-जन्तु अपेक्षाकृत उससे अधिक अज्ञानमें है। हाँ, मनुष्यकी

विशेषता यह अवश्य है कि वह अपने अज्ञानका ज्ञान रखता है और उससे परिचित है।

फलतः यह देखते हुए कि इन प्रवृत्तियोंके स्वरूप और उद्भवकी जानकारी मनुष्यको पूर्वरूपसे नहीं है और यह जानते हुए कि उनकी जो शास्त्रीय विवेचना अब तक हुई है उससे जीवनपर पड़नेवाले उनके प्रभावमें कोई फर्क नहीं पड़ता। उन्हें जहाँकी तहाँ छोड़कर इतना मान लेना ही उचित है कि मनुष्य उनके द्वारा आकृष्ट, विताड़ित और संचालित है। एक कदम और आगे जाकर यह भी मान लेना चाहिये कि मनुष्य इन सद् और असद् वृत्तियोंके संयोगका ही पुतला है। वह भले-बुरे, अंधकार प्रकाश, दोनोंसे निर्मित जीव है और दोनों धाराएँ उसके जीवनको अपनी लहरोंपर लहराती रहती है। दो परस्पर विरोधी धाराओंमें बहनेवालेका अपने जीवनको संचालित करना कितना कठिन और कितना दुःसाध्य है इसकी कल्पना कर लेना सरल है। इस स्थितिमें भी उसकी गतिका निर्वाह करना, जीवनको ढंगसे ले चलना और रहना, बड़ी भारी कला नहीं तो और क्या है? इस कलासे अधिकतर लोग अपरिचित हो तो इसमें आश्चर्य नही। पूछा जा सकता है कि आखिर वह कला है क्या? जीवनकी कला इस बातमें है कि इन अनिवार्य द्वन्द्वोंसे आहत होते हुए भी मनुष्य अपने जीवनको अधिक सुखकर, शान्त, सुरुचिपूर्ण तथा सुंदर बनानेमें सफल हो। मानता हूँ कि अपनी समस्त परिस्थितियों, प्रवृत्तियो तथा घटनाओके प्रवाहको नियंत्रित करना

मनुष्यके हाथमें दिखाई नहीं देता। न जाने कितनी दृष्ट तथा अदृष्ट शक्तियाँ अपनी चपेटमें उसे गेंदकी भाँति इधर-उधर ढुलकाया करती है। जीवनका अनुभव बताता है कि बहुधा संयोग ऐसा आ पड़ता है जब मनुष्य अनिच्छा रखते हुए भी और प्रयत्न करते हुए भी बलात् स्थिति-विशेषमें नियोजित कर दिया जाता है। उस समय यही मालूम होता है कि नियतिका कोई चक्र है जो अपने वेगमें मनुष्यके धुर्रे उड़ाये दे रहा है। ऐसा भी अनुभव हुआ है कि विवेक द्वारा यह समझते हुए कि अमुक कर्ममें प्रवृत्त न होना चाहिये मनुष्य उसमें प्रवृत्त हो जाता है। जीवनकी ऐसी घटनाएँ निराशाका सृजन कर देती है पर जहाँ ये बाते देखता हूँ वहाँ भिन्न प्रकारकी अनुभूति भी हुई है।

यह पाता हूँ कि मनुष्यमें संकल्प और प्रयत्न करनेकी स्वतन्त्रता प्रकृतिने प्रदान कर दी है और दृढ़तापूर्वक उसके निमित्त संघर्ष करते रहनेसे और शनैः शनैः अभ्याससे मनुष्य बड़ी सीमा तक अपने सद् असद् रूपमें सामंजस्य स्थापित कर लेता है। अनुभव बताता है कि मनुष्य यदि चाहे तो जीवनमें बहुत कुछ रसका, सुखका, शान्तिका संचार स्वयं कर सकता है। जीवनके उचित ढंग, व्यवहार तथा विवेकके द्वारा वह परिस्थियोंसे, ऐसी परिस्थितियोंसे भी जो प्रतिकूल दृष्टिगोचर होती है—एक सीमा तक समझौता करनेमें समर्थ हो जाता है। अपने व्यवहार, ढग और सकल्पसे जहाँ वह जीवनको सरल बना सकता है वहीं गलत ढंग, गलत व्यवहार और संकल्पकी दुर्बलता तथा प्रयत्नकी

कर्मीके कारण अनायास बहुतसा बखेड़ा, दुःख, क्षोभ और अशान्ति भी पैदा कर लेता है। समाजमें रहकर तो परिस्थितियोंसे मेल-मिलाप बढ़ाये बिना जीवनका संचालन दुश्कर ही है। अकसर तो मनुष्यको परिस्थितियोंके वशीभूत होकर असत्यसे भी समझौता करना पड़ता है। जिसे हम साधारण रूपमें सभ्यता कहते हैं और सौजन्यके नामसे पुकारते हैं उसपर विचार कर देखा जाय तो वह विशुद्ध पाखंडके सिवा कुछ नहीं है। अपने वास्तविक स्वरूपको जो जितनी सफलता और सरलताके साथ छिपा सके वह उतना ही बड़ा सभ्य समझा जाता है। यदि मेरे हृदयमें किसी आदमीके प्रति घृणा है और वह व्यक्ति मेरे पास आता है तो सचाईकी माँग तो यह है कि मै उसपर अपना मनोभाव प्रकट कर दूँ और कह दूँ कि मुझे आपकी सूरतसे भी नफरत है। जिसे आजका संसार गँवार कहता है, जो अधिक पढ़े-लिखे नहीं है वे प्रायः सचाईका ही आश्रय लेते हैं क्योंकि पाखंड रचनेकी कला उनमें नहीं है। वे उस व्यक्ति पर अपने व्यवहारसे अपना भाव प्रकट कर देंगे और तत्सम व्यवहार भी करेंगे। पर ऐसा करनेके कारण ही वह उजड्ड तथा गँवार कहा जायगा। सौजन्य, सभ्यता और भलमंसी तो यह समझी जाती है कि किसी व्यक्तिसे घृणा करते हुए, किसी पर क्रोध रखते हुए हम अपने इन भावोंको प्रकट न होने दें और वह व्यक्ति सामने आवे तो ऐसा ही व्यहार करें मानो हम उसके परम मित्र है और उसका आदर करते हैं। 'आइये, आइये, आपने बड़ी कृपा की,

कहिये क्या आज्ञा है, यथासंभव आपकी आज्ञाका पालन करनेकी चेष्टा करूँगा' आदिसे ही उसका अभिवादन करना चाहिये क्योंकि यही सभ्यता समझी जाती है।

हम जो कह रहे है उसमें कुछ भी सचाई भले ही न हो और हम भीतर ही भीतर उससे जल रहे हों और चाहते हो कि किसी प्रकार यह यहॉसे जाय, फिर भी व्यवहार उपर्युक्त ढंगसे ही करेंगे। विचार करो कि क्या यह पाखंड नहीं है? क्या असत्यसे ही मनुष्य समझौता नहीं करता? पर पाखंड हो या हो असत्य इस कलाको अपनाना ही सभ्यताका लक्षण माना जाता है। यदि गहराईमें उतर कर देखा जाय तो जीवनका अधिकतर समय इसी प्रकार असत्य आचरणमें ही बीतता है। जिसे सौजन्य और व्यवहारकुशलता कहते है उसमें अधिकतर पाखड ही होता है। एक दृष्टिसे विचार किया जाय तो मानव-जीवन हिमाञ्चलकी भॉति अति विशाल और महती असफलताके सिवा और कुछ नहीं है। मनुष्यने अब तक जिन आदर्शोकी स्थापना अपने लिए की है, जिन बड़े-बड़े सिद्धान्तोका प्रतिपादन किया है, जिन विशाल और पवित्र विचार पद्धतियोको जन्म दिया है उनकी कसौटी पर यदि साधारण रूपसे उसके जीवनको कसा जाय तो उससे बढ़कर खोटा और निकम्मा तथा नकली पदार्थ दूसरा जगत्में.नहीं मिल सकता। ऐसा मालूम होता है कि इन सिद्धान्तोका जन्म समय समय पर आविर्भूत होनेवाली दैवी विभूतियोके जाग्रत और प्रबुद्ध व्यक्तियोके उत्तमांशसे हो

जाता है जिनके प्रति साधारण मानवकी भक्ति और श्रद्धा बन जाती है। उनके प्रति आदर हो जाता है और मनुष्यके व्यक्तित्व का एक अंश इन उन्नत सिद्धान्तोंकी पवित्रता, महत्ता तथा वांछनीयताका भी अनुभव कर लेता है पर इससे अधिक उसका कोई प्रभाव नहीं होता। मनुष्यका व्यावहारिक स्वरूप बहुत कुछ वही रह जाता है जो अबतक रहता आया है। यही कारण है कि संस्कृतिकी गति और उसके विकासकी तुलनामें मानव-जीवनकी व्यावहारिक गति और विकासको हम कहीं अधिक पिछड़ा हुआ पाते हैं। जिसे संस्कृति कहते हैं उसके और जीवन के बीचकी इस खाईका मुख्य कारण कदाचित मनुष्यका वास्तविक स्वरूप ही है जो भला भी है, बुरा भी है। शायद बुराई और असद्की मात्रा ही उसमें अधिक है।

पर अपने इस स्वरूपका दर्शन हो जाने पर भी मुझे निराशा नहीं होती। इसका कारण यह है कि जीवनकी धारामें मुझे एक बड़ा भारी सत्य स्पष्ट दिखाई देता है। वह सत्य यह है कि सद् असद्से निर्मित मानवके अंतरमें चेतनकी एक ऐसी अखंड और अक्षय ज्योति जलती दिखाई देती है जो इन तमाम कठिनाइयोंके रहते हुए भी मानवके सत्को असत्पर विजय प्राप्त करनेके लिए उत्प्रेरित करती रही है। यह संघर्ष और चेतनोत्प्रेरण, यह प्रयत्न ही मनुष्यका सौंदर्य है जो हमारी आशाका आधार स्तंभ है। इसीके आधार पर यह कहनेका साहस होता है कि मनुष्य परिस्थितियोंपर काबू न रखते हुए भी अपने संकल्प और अपनी

अन्तर्शक्तिके द्वारा ऐसा ढंग अपना सकता है जिसकी भित्तिपर वह जीवनको सुरुचिपूर्ण, सुसंस्कृत और सरल बना ले सकता है। मेरा विश्वास है कि मनुष्यमें यह शक्ति है कि जीवनके प्रति समुचित दृष्टिकोण और भाव ग्रहण कर सके। जैसा कि पहले किसी स्थान पर कह चुका हूँ मनुष्यकी दुनिया बहुत कुछ उसके भावोकी दुनिया है। कोई भी पदार्थ क्यो न हो और उसका स्वरूप भी चाहे कुछ भी क्यों न हो, व्यक्ति-विशेषको वह जिस रूपमें दिखाई देता है वह रूप बहुत कुछ उस व्यक्तिके भावोंके रंगसे ही रंगा होता है। नेत्रोपर जिस रंगका ऐनक होगा दुनिया उसी रंगमें रंगी नजर आयेगी। फलतः जीवनके प्रति भी जो भाव ग्रहण किया जायगा वह उसीसे भावित दृष्टिगोचर होगा। यदि हम अपना भाव उदार, शान्त, सहानुभूतिपूर्ण रखे तो जीवनमें अधिक रस और सुख तथा शान्ति दिखाई देगी। विपरीत दृष्टिकोण अपनाया जाय तो शोक, दुःख और निराशाका साम्राज्य छा जायगा। मै अपने मंतव्यको और स्पष्ट करना चाहता हूँ। जैसा कि कह चुका हूँ मनुष्यमें भलाई और बुराई दोनो दिखाई देती हैं। इस विचारे प्राणीका यह प्रकृत रूप ही है। मुझे ऐसा भी भासता है कि बुराईकी मात्रा अपेक्षाकृत अधिक है। ऐसी स्थितिमें मनुष्यका विकृत रूप ही अधिकतर सामने आता रहता है।

झूठ, पाखड, क्रोध, स्वार्थ, ईर्ष्या, लिप्सा, अहकार आदिका अनुभव जितना हम करते है तथा अपने सपर्कमें आनेवाले

लोगोंको हम मनोविकारोंसे प्रेरित काम करते जितना पाते है उतना संवेदना, स्नेह, त्याग, तपस्या और उत्सर्ग तथा सेवाका प्रभाव दिखाई नहीं देता । हम देखते है कि अधिकतर लोग हमें धोखा देते हैं, अपना काम निकालनेके लिए ठगनेका यत्न करते है, अनुत्तरदायी होते हैं, गलतियाँ करते रहते हैं। तात्पर्य यह कि असद् प्रवृत्तियोंका नर्तन और उनका प्रभाव जगत्में अपेक्षाकृत कहीं अधिक दिखाई देता है। जीवनके इस रूपके प्रति हम दो में से एक दृष्टिकोण ग्रहण कर सकते हैं। यदि हम यह मान लें कि मनुष्य बुरा है और जीवन बुराईसे ही ओतप्रोत है तो उसका क्या परिणाम हमारे लिये होगा ? इस प्रकारके दृष्टिकोणवालोंको मैने अपने जीवनको अशान्त, नीरस और क्षुब्ध करते देखा है। उनमें एक प्रकारकी सर्वव्यापिनी घृणा और द्रोहका भाव उत्पन्न हो जाता है। वे जिधर देखते है उधर बुराई दिखाई देती है, फलतः असंतोषकी भयावनी आग कलेजेमें धधकने लगती है। सब पर संदेह और अविश्वास करना उन्हें स्वय अशान्त बना देता है। जब देखो तब दुनियाके ढंगपर रोते रहनेके सिवा उनके जीवनका कोई दूसरा कार्यक्रम रह ही नहीं जाता। यह स्थिति उनके हृदयमें विश्व-द्रोह या नर-द्रोहका सृजन कर देती है। फिर द्रोहसे ही कलेजा भर उठे तो कहाँ शान्ति और जब अशांति हो तो 'कुतः सुखम्'। जीवनके प्रति इस प्रकारका भाव ग्रहण करनेवाले संसारमें कम नहीं है। अपने कुभावके कारण ही वे अपना सारा जीवन दुःखमय बना लेते

है। वे परिस्थितियोसे सामंजस्य स्थापित करनेमें असमर्थ होते हैं, फलतः सारा जगत उन्हें मानो काट खानेके लिए दौड़ता दिखाई देता है।

पर एक और दृष्टिकोण भी है जिसका आश्रय लिया जा सकता है। मनुष्य यदि असद् है और बुरा है तो उसमें सद् भी है और भलाई भी है। अपने कुअंशके वशीभूत होकर वह बुराई कर जाता है। पर उसकी दुर्बलताओं, उसके अपराधों, उसकी त्रुटियोंकी ओर क्षोभ और घृणाकी अपेक्षा क्षमा और उदारताका भाव क्यों न रखा जाय? यह भाव यदि अपना लिया जाय तो सारा दृष्टि कोण ही बदल जाता है। अपराधी, कमजोर तथा त्रुटिपूर्ण मानव जीवनकी ओर सहज ही मनमें सहानुभूति और क्षमाका उदार भाव लहराने लगता है। फिर घृणा, द्रोह और शिकायतके लिए अधिक स्थान नहीं रहता। फलतः जीवन बहुत कुछ अशान्ति, असंतोष और क्षोभसे बच जाता है। उसमें अधिक सुन्दरता और मानवताका प्रादुर्भाव होता है। मनुष्यके स्वरूपको वास्तविक रूपमें समझ लेनेके कारण परिस्थितियोसे भी बहुत बड़े अंशमें सामजस्य स्थापित करनेमें सहायता मिलती है। ऐसे दृष्टिकोणको अपनाना न केवल संभव है प्रत्युत मेरी समझमें उचित भी है। मनुष्यका स्वभाव होता है कि वह अपनेको बड़ी सरलता और आसानीके साथ क्षमा कर दे। जो भूले मुझसे होती है उन्हें मै उदारतापूर्वक क्षमा कर देता हूँ। पर वही भूले और वही त्रुटि दूसरेमें देखकर मै रुष्ट हो जाता हूँ।

एक कहावत है कि अपनी आँखकी शहतीर नहीं दिखाई देती पर दूसरेके नेत्रका तिनका भी स्पष्ट झलकता है। कोई कारण नहीं है कि मनुष्य अपनेको क्षमा करता जाय पर दूसरेको दंड देनेके लिए उतावला रहे। वही उदरता दूसरेके प्रति भी व्यवहृत की जा सकती है। फिर यह भी अनुभवकी बात है कि मनुष्य न केवल बुरा होता है और न केवल भला। निर्दोष पदार्थकी सत्ता जगत्में कदाचित नहीं है। यह मोटीसी बात है। संभवतः सभीमें कुछ न कुछ दोष अवश्य है।

मनुष्य भी इस नियमका अपवाद नहीं है। यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखे तो ज्ञात होता है कि एक व्यक्ति जो एक स्थान पर राक्षसके तुल्य व्यवहार करता है, वही दूसरे स्थान पर देव सदृश दिखाई देता है। जो चोर है उसमें भी सावका अंश वर्तमान है और जो साव है वह भी कही न कहीं चोरी करता दिखाई देता है। जेल-जीवनमें तो इसका अनुभव बड़ी सरलतासे होता है। उन व्यक्तियोको जो बाहर डकैत रहे है, दो दो, चार चार खून कर चुके है और आजन्म कारावासका दंड भोग रहे है, यहाँ मानवताके सुंदर प्रतीकके रूपमें देखता हूँ। ऐसे अनेक बंदी है जो जघन्य अपराधोके अपराधी होते हुए भी अपने सहबंदियोके साथ ऐसी दया, ममता और उदारताका व्यवहार करते हैं कि आश्चर्य होता है। देखा है उनमेंसे किसी किसीको कि रुग्णबंदियोंकी सेवामें उन्होंने माताकी भाँति रातको रात और दिनको दिन नहीं माना है। सोचता हूँ कि यही हृदय तो है

जिसने हत्या करनेमें भी संकोच नहीं किया। जगत्का यही स्वरूप है। जीवनकी गहराईमें उतर कर विवेचना करने पर यह बात स्पष्ट झलक जायगी। एक ओर एक मनुष्य उत्कट व्यभिचारी दिखाई देता है पर दूसरी ओर वही ऐसा निःस्वार्थ त्याग करता प्रकट होता है कि बड़े बड़े भले लोग भी उसकी तुलनामें नहीं टिकते। इस स्थितिमें सिवा इसके और कोई उचित भाव हो ही नहीं सकता कि हम मानव जीवनकी ओर उदार दृष्टि रखे और हमारे हृदयका झुकाव यथासंभव क्षमाकी ओर ही हो। इसके द्वारा हम जीवनके उस पाखंड और असत्यकी मात्राको भी कम नहीं तो बहुत कुछ परिष्कृत कर सकेंगे जिसकी चर्चा पूर्वके पृष्ठोमें की गयी है। व्यक्तिगत जीवनमें इसका प्रभाव उसे अधिकाधिक सरल और आनन्दमय बनानेकी ओर ही होता। धीरे-धीरे मनुष्य सद् प्रवृत्तियोंकी लीला अलिमा भावसे देखनेमें समर्थ होता है और क्रमश: उनसे ऊँचे उठकर अपने अहंकी सीमाके बधनको खुलता हुआ अनुभव करने लगता है।

फलतः जीवन-यापनके निमित्त और दूसरोंके प्रति अपने व्यवहारके लिए एक स्थूलसा सिद्धान्त यह अपनाया जा सकता है कि जीवनकी ओर हम भरसक उदार दृष्टि रखनेकी चेष्टा करे। इसी प्रकारके एक और सिद्धान्तका उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ। सामाजिक जीवनमें जो बात सबसे अधिक प्रमुख और प्रधान होती है वह यह है कि हम दूसरोंके साथ बर्ताव कैसा करते है। व्यवहारकी महिमा ऐसी है कि जीवनकी बहुत

कुछ सफलता या असफलता उस पर अवलम्बित है। मनुष्यकी योग्यता, चतुरता, बौद्धिकता तथा धन और ऐश्वर्य भी सामाजिक जीवनमें वह सफलता प्रदान करनेमें समर्थ नहीं होते जो मनुष्य की अपनी व्यवहार–कुशलता प्रदान करती है। पर व्यवहारके लिए क्या कोई नियम है जिनके अनुकूल आचरण करनेमें ही कुशलता है? सौजन्य और सदाचरणके लिए समाजमें प्रचलित और स्वीकृत ढंग तो हैं ही, इसके सिवा इस देशमें तो उसे धर्म शास्त्रियोंने अपनी स्मृतियों तकमें स्थान प्रदान किया है और इस प्रकार उसे धर्मका अंग बना दिया है। पर मैं इन सबको छोड़-कर केवल एक सिद्धान्तका उल्लेख कर देना चाहता हूँ जो मेरी दृष्टिमें आचरणका मार्ग बहुत दूर तक प्रदर्शित करता है। इतना ही नहीं बल्कि उससे जीवनकी बहुत-सी छोटी मोटी समस्याएँ भी हल हो जाती है। महाभारतमें एक श्लोक है :—

'श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चारयावधार्यतां
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'।

व्यासदेव कहते हैं कि धर्मका सार सुन लो और सुनकर दृढ़ताके साथ इसे धारण कर लो। जो बात अपनेको अपने प्रति-कूल मालूम होती हो वैसा व्यवहार किसी दूसरेके साथ नहीं करना चाहिये।

बात इतनी स्पष्ट और सीधी है कि अधिक व्याख्याकी आव-श्यकता दिखाई नहीं देती। यदि मुझे यह पसन्द नहीं है कि कोई मुझसे असत्य संभाषण करे, मुझे ठगनेकी चेष्टा करे, मुझसे

घृणा करे, मेरा अपमान करे, मुझसे असौजन्य और उद्दण्डतासे पेश आवे तो मुझे भी चाहिये कि मैं दूसरेके प्रति ऐसा व्यवहार कभी न करूँ। मैं देखता हूँ कि यह सिद्धान्त बहुत दूरतक बहुतसी समस्याओंको हल कर देता है। शिष्टाचरण, सज्जनता और व्यवहारकुशलताके लिए दूरतक मार्ग निर्देश भी कर देता है। उपर्युक्त जिन दो साधारण सी बातोंकी ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है उन्हें मै अपनी दृष्टिसे जीवन-यापनके लिए दो व्यापक सिद्धान्तोंके रूपमें देखता हूँ। मै यह नहीं कहता कि जीवन ऐसी जटिल और उलझी हुई ग्रंथिको सुलझानेका उपाय इन दो बातोंसे ही मिल जा सकता है। मानव सृष्टिका अकिंचन प्राणी होते हुए भी व्यापक और विशाल है। वह न जाने कितनी दृष्ट और अदृष्ट शक्तियोंकी क्रीड़ा-भूमि और उनकी लीलाका रंगस्थल है। यद्यपि वह समस्त जड़ जगत् तथा अन्यान्य चेतन प्राणियोंसे भिन्न दिखाई देता है, फिर भी उसके चतुर्दिकका वातावरण उसकी स्थितिसे पूर्णतः संबन्धित दृष्टिगोचर होता है। उनके अभावमें मानो उसका अस्तित्व ही नही रह सकता। उसकी विशिष्टता यह कही जाती है कि वह इस नियमित भव-प्रपंचपर आश्रित होते हुए भी अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है। वह इसकी सीमासे पार अनन्त विश्वात्मामें अपनेको लय कर देनेकी शक्ति रखनेका दावा करता है। उसकी भौतिक और अभौतिक सीमाएँ कहाँ हैं, इसका पता पाना कठिन होता है। उसका व्यक्तित्व उसके शरीरके स्थूल भौतिक द्रव्योंसे और उसकी

सीमासे कहीं अधिक विस्तृत समझा जाता है। त्वचा और रक्त-मांसके बन्धनोंमें आबद्ध उसकी चेतनाकी गति अकल्पित है। अपने अमूर्त रूपमें सारी पृथ्वीकी परिक्रमा क्षणमात्रमें कर आनेवाले इस प्राणीके सामने दिक् और कालकी जैसे कोई बिसात ही नहीं रहती। फलतः मनुष्य भी स्वयं मनुष्यके लिए समस्त समस्याओंका एक हल और जीवनके निर्देशका एक मार्ग बतानेमें असफल है। अपनी विशालतामें ही वह अपनी लघुता-का अनुभव भी कदाचित करता रहता है।

अतः केवल दो बातें पेश करके कोई भी "इंदमित्थं" कह देने का दावा नहीं कर सकता, मेरा आशय ही यह रहा है। मेरा तात्पर्य तो केवल इतना है कि मैं अपने जीवनमें इन दो दृष्टि-कोणोंको जीवनयापनके लिए अत्यधिक सहायक और निदर्शक पाता रहा हूँ। इन्हें सम्पूर्ण रूपसे जीवनमें ढाल लेनेमें असमर्थ होते हुए भी उसके लिए अपनी शक्तिपर यत्न करते रहनेमें मुझे न केवल तथ्य दिखाई पड़ा है बल्कि बहुधा मार्गावलंबन करनेके लिए कर्त्तव्यका निर्धारण करनेके लिए प्रकाश भी मिलता रहा है। इस अपने भाव तथा तज्जन्य अनुभूतिको मैंने तुम्हारे सामने इस आशा और विश्वासके साथ रख दिया है कि इनसे जीवन-संघर्षमें तुम्हे सहायता मिलेगी। मेरी यह कामना कि जीवनमें तुम्हें सफलता मिले और उसके आवर्तोंसे तुम सफलतापूर्वक निकल जाओ, इन पंक्तियोंके लिखनेकी मूल उत्प्रेरिका यही है। पर मै जानता हूँ कि केवल दूसरोंका लिखना

और बताना ही जीवनके प्रश्नको हल नहीं करता। मनुष्यका अपना अनुभव उसका सबसे बड़ा गुरु, सहायक और पथ-प्रदर्शक होता है। अनुभूतियोंके साँचेमें ही हमारा जीवन ढलता है। उसके द्वारा मनुष्यका व्यक्तित्व अपनेको संपन्न करता है। अनुभवोंसे मिली शिक्षा जीवनकी सबसे सजीव और तेजस्वी शिक्षा होती है। जैसे-जैसे जीवनकी यात्रामें बढ़ोगे वैसे-वैसे अनुभव प्राप्त करोगे और वही आगेका मार्ग बहुत कुछ प्रशस्त करता जायगा। पर अनुभवकी प्राप्तिके लिए मनुष्यको अनेक कठिनाइयों और कष्टोंके बीचसे पार होना पड़ता है। यथा-संभव इन कष्टोंसे तुम बच सको, यह मेरी स्वाभाविक और सहज इच्छा होगी जिसके लिए ही अपने अनुभव सामने रख देना मेरे हृदयकी पुकार थी। जीवनमें कठिनाइयोंका तार तो बँधा ही रहता है। बहुधा वे ऐसे समय आ धमकती हैं, जब उनके आनेका रत्तीभर भी भान नहीं रहता। विचित्र और विभिन्न परिस्थितियोंमें विचित्र और विभिन्न प्रकारसे उनका आगमन हो जाता है। विभिन्न समस्याओंका उपचार विभिन्न ढंगसे मनुष्यको अपने विवेक और अनुभवके प्रकाशमें करना पड़ता है।

स्मरण रखना कि जीवनकी घटनाओं और समस्याओंका सामना दृढ़ता और धीरताके साथ करना ही एकमात्र उपाय है। कभी कभी कठिनाइयाँ मनुष्यके सारे जीवनको अपने अंधकारसे आच्छन्न करती दिखाई देती हैं। कुछ लोग उनके

बोझके सामने घुटने टेक देते हैं और गौरवहीन ढंगसे व्यवहार करने लगते हैं। जिनमें साहस नहीं है, जिनमें आदर्शवादिता नहीं है और जिनके स्नायुतन्तु तथा जिनका हृदय दुर्बल है वे पस्त होते दिखाई देते है। पर यदि वे थोड़ी धीरता, साहस और शान्त मनसे काम लेते तो निश्चय ही उन कठिनाइयोंके भंवरसे जीवन नैयाको सफलताके साथ निकाल ले जाते। मेरा यही आग्रह है कि इस सत्यको सदा स्मरण रखना कि जहाँ मनुष्य है, वहाँ कठिनाइयाँ है और दोनोंका द्वन्द्व जीवनका अनिवार्य धर्म है। जो जीवनके इस रहस्यमय रूपको समझते है वे दृढ़ संकल्पके बलपर इन कठिनाइयोंके विरुद्ध वीरताके साथ युद्ध करते रहते हैं। मानव-जीवनका यही गौरवपूर्ण तथ्य है जो हमारी विरासत है। कहते है कि अर्जुनकी दो प्रतिज्ञाएँ थीं 'न दैन्यं न पालयनं'। न दीनता और न पलायन, बल्कि वीरताके साथ उनसे जूझना। यही तत्त्वकी बात है। मै समझता हूँ कि अब यह पत्र समाप्त कर देना चाहिये अधिक—विस्तार बढ़ाना अपनेको और तुमको भी थका देना है। बस !

तुम्हारा—

कमलापति

१८

नैनी सेण्ट्रल जेल

ता०.........

प्रिय लालजी,

मेरे सामने भारतके युवकोंके लिए सजीव और उज्ज्वल रूपसे एक आदर्श उपस्थित है। मेरे जीवनको उस आदर्शने प्रभावित किया है और मैने प्रसन्नतापूर्वक उस प्रभावका अंगीकार किया है। मुझे उस आदर्शमें आस्था है, उसके प्रति भक्ति है और गहरी निष्ठा है। इसी कारण मै मानता हूँ कि इस देशके युवक समुदायके सामने सामूहिक रूपसे वह उपस्थित है जिसकी ओर बढ़ना और जिससे अनुप्राणित होना उनका कर्त्तव्य है। उस आदर्शकी सफलताके लिए भारतीय युवकोंमें चरित्रका बल होना चाहिये, नैतिकता तथा मानवता होनी चाहिये तथा जीवनके प्रति उचित दृष्टिकोण और भाव होना चाहिये।

मै समझता हूँ कि तभी उनमें उस शक्तिका सृजन होगा जो मेरे कल्पित आदर्श तक उन्हें ले जा सकेगी। उनके व्यक्तिगत जीवनके साथ-साथ महान मानव समुदायका एक अंश होनेके कारण उनकी सामाजिक सत्ता भी है। उन दोनोंकी सार्थकता मै इसीमें देख रहा हूँ। भारतीय युवकके सामने एक आदर्श है, उसके जीवनका एक विशेष लक्ष्य है, उसके सिरपर भारतीय होनेके नाते विशेष उत्तरदायित्व है; इसकी कल्पना करके मैं इस निष्प्राण स्थानमें भी रोमांचित हो उठता हूँ। आज मेरा मन वार-वार कह रहा है कि मै अपने हृदयकी कल्पनाको तुम्हारे सामने चित्रित करके रख देनेकी चेष्टा करूँ। मुझे ऐसा भास होता है कि मानवताके विकासके इतिहासमें वह युग आ गया है जब उसे अपने ज्ञान, विवेक और अनुभूतियोंके आधार पर अपनी दुनियाकी नयी रचना करनी पड़ेगी। समय समय पर मनुष्य जातिकी प्रगतिके प्रवाहमें ऐसे क्षण आये है जब उन्होंने युगान्तर उपस्थित कर दिया है। उस कालमें इस प्राणीने नयी अनुभूतियों और उपार्जित ज्ञानके आधारपर नये जगत् और नव जीवनकी रचना की है। मानवता इसी गतिसे आगे बढ़ती गयी है। जगतके सामने आज पुनः वैसा ही क्षण उपस्थित हुआ चाहता है। आज जिन भावो और दृष्टिकोणोंको लेकर यह भूमंडल अपनी गतिपर जा रहा है वह अब उसके विकासके पथको कुंठित कर रहा है। मनुष्यको आगे बढ़ानेके बजाय वे उसका पैर पकड़कर उसे रोक रहे हैं। मनुष्यकी नैसर्गिक प्रेरणा

इस स्थितिको सहन नहीं कर सकती। गति उसका स्वभाव है। इस स्थितिमें उसे उन तत्त्वोंकी खोज करनी पड़ेगी जिनके अभाव-के फलस्वरूप मनुष्य बढ़नेमें असमर्थ हो रहा है।

विचारशील व्यक्ति देख रहे हैं कि उन तत्त्वोंकी खोज उग्र रूपसे होने भी लगी है। मानव धीरे-धीरे अनुभव कर रहा है कि यदि वह इस शोधमें सफल न हुआ तो उसकी सारी जाति धरातलसे लुप्त हो जायगी। उसकी सफलतापर ही नया जीवन और नयी दुनियाका निर्माण निर्भर करता है, जो विकास-की यात्राके अनुकूल होगा। भारतके सामने आज प्रश्न यह है कि क्या भारत उन तत्त्वोंका दर्शन मनुष्यताको करानेमें जगत्का कुछ सहायक हो सकता है जिसे पाना उसके अस्तित्वके लिए अनिवार्य रूपसे आवश्यक हो गया है? मेरा कल्पनाशील हृदय कहता है कि इस देशकी शक्ति-मंजूषामें वे अनमोल रत्न पड़े हैं जिन्हें प्रदान कर हम जगत्की वर्तमान आवश्यकता पूर्ण करनेमें गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकते हैं। कदाचित् जगतके आजके महारोगकी ओषधि प्रदान करना भारतकी शक्तिसे परे नहीं है। फलतः मेरे सामने जो आदर्श उपस्थित होता है वह यही है कि नयी दुनियाके निर्माणमें तथा मानवताको एक कदम और उच्च स्तरकी ओर ले जानेमें भारतको अपना गौरवपूर्ण प्रयास करना है। यह महान उत्तरदायित्व विशेष रूपसे इस देशके नवयुवकोंपर है क्योंकि वे ही भविष्यके अग्रदूत हैं। उन्हींमें ओज, स्फूर्ति और प्राण है, उन्हींमें कल्पना, उत्प्रेरणा और भावु-

कता है, उन्हींमें सृजनकी शक्ति है और जो सड़ा-गला, पुराना तथा भ्रष्ट और निकम्मा है उसे विचूर्ण करके धूलमें मिला देनेकी सामर्थ्य है। संभव है, कोई मेरी इस कल्पनाको आकाश-कुसुम समझे, कोई कहे कि यह हवामें किले बनाना है और कोई इसे 'छोटे मुँह बड़ी बात' बतावे। जो ऐसा करें उन्हें मैं दोष भी नहीं दे सकता क्योंकि शताब्दियोंसे पतित, चरित्रहीन और विदेशियोंका चरण चाटनेवाले भारतके संबन्धमें सिवा इसके दूसरी कल्पना करना किसीके लिए भी कठिन है। पर इस स्थितिके रहते हुए भी मुझे अपने देशके भविष्यमें विश्वास है। भविष्यके सिवा मुझे उसके अतीतमें भी विश्वास है जिसपर मैं जब दृष्टिपात करता हूँ तब अपने भविष्य और अपनी शक्तिके संबन्धमें अपनी कल्पनाको परिपुष्ट होता पाता हूँ। यहाँकी एकांत घड़ियोंमें पड़े पड़े जब पीछेकी ओर मुड़कर देखता हूँ तो अपने अतीतके विस्तृत अंचलकी उज्ज्वल किंतु झिल मिल आभा-पर मुग्ध हो जाता हूँ। यह सच है कि जो बीत गया सो मृतक हो गया अतः उसके कंकालसे प्रेम करना मूढ़ता समझी जाती है। अवश्य ही अतीत यदि अनागतका मार्गावरोधन करे, कंकालसे चिपटे रहनेकी ओर झुकाव पैदा करे तो उसकी प्रेत-छायासे बचनेकी चेष्टामें ही कल्याण है पर अतीत यदि स्फुरण और प्रेरणा-का साधन हो, यदि अपने गौरव तथा महत्तासे मार्गका निदर्शन कर रहा हो तो उसका निरादर अतीत कहकर करना उससे भी बड़ी मूढ़ता है। अतीतसे हमारा प्रेम उससे चिपटे रहनेके लिए

नहीं, बल्कि इसलिये है कि उसमें भारतकी वह ओजस्विनी तपस्या सजीव रूपसे मूर्त हुई है जिसपर कोई भी राष्ट्र गर्व कर सकता है। मनुष्य यद्यपि वर्तमानमें ही रहता है, फिर भी वह अतीत और अनागतसे संबद्ध है। मनुष्यके शरीरमें प्राण संचार करनेवाले जीवाणु उसके शरीरमें आनेके पूर्व उसके माता-पिता-के शरीरमें निवास करते रहते हैं। इस प्रकार हमारे रक्तमें किसी सुदूरयुगके हमारे पूर्वजका जीवन आज भी प्रवाहित है, इसे प्राणिशास्त्रका विद्वान् स्वीकार करता है फलतः अविच्छेद्य और सजीव रूपसे हम अपने अतीतपर आश्रित हैं। अपने पूर्वजोंके शरीरांशसे ही नहीं वल्कि उनकी विशेषताओ, गुणो, दुर्बलताओ और संस्कारोंसे हमारा निर्माण हुआ है, जो युग युगसे उनके रक्तकी धाराके साथ हमारी धमनियोंमे बहता आ रहा है। इतिहासकी परम्परा और उसके भारकी उपेक्षा नही की जा सकती। होना केवल इतना चाहिये कि हम अतीतका उपयोग उससे चिपटे रहनेके लिए नही बल्कि अपने भविष्यकी कल्पना, निर्धारण और निर्माणके लिए कर सके।

आज जब मानवताके नव-निर्माण और उसके विकाशका प्रश्न हमारे सामने है तब हमारी दृष्टि अनायास अपने अतीत पर चली जाती है। देखता हूँ भारतकी प्राचीन पुण्यभूमिको जिसे हजारो वर्षोंतक मानवताका सफल नेतृत्व करनेका गौरव प्राप्त हो चुका है। उसने उसके विकासमें जो सहायता प्रदान की थी उसके लिए मानव समुदाय उसका चिर ऋणी रहेगा। समस्त

मानव जाति किसी आरंभिक युगमें शिकारी और फिरंदर जातिके रूपमें रही होगी। उस समय आखेट करके पशुओंको मार लाना और उनके मांससे अपनी भूख शांत करना उसका पेशा रहा होगा। पशुओंसा जीवन, शिकारोंकी खोजमें इधर उधर घूमना और गुफाओंमें निवास उसके जीवनका ढंग रहा होगा। न जाने कितनी शताब्दियाँ इसी रूपमें बीत गयी होंगी। बादमें समय आया जब वह पशुपालक बना। पशुओंको पालना, उनका मांस खाना, उनके चरागाहोंकी खोज करना अब उसने जीवनोपाय बनाया होगा। शताब्दियोंके बाद जंगली पेड़-पौधोंको घरेलू बना लेनेकी कलाका ज्ञान उसमें उदय हुआ। उस समय वह शिकारी और फिरंदरी युससे बहुत दूर निकल गया। वह तब कृषक बना होगा। खेतीके साथ-साथ उसने पशुपालन भी जारी रखा। पशुपालककी अवस्थामें पशुओंके रूपमें जंगल-संपत्तिका जन्म तो हो ही गया होगा पर जब मनुष्य कृषक बना होगा तब स्थावर संपत्ति उदय हुई होगी। संपत्तिके इस उदयसे समाजमें स्थिरता आयी होगी। मनुष्य समूहके साथ उर्वर प्रदेशोंमें बसने लगा होगा। उसने नदियोंके तटकी खोज की होगी। साथ मिल कर खेती करता रहा होगा। समाजके स्थिर होने पर व्यवस्थाकी आवश्यकता होती है। व्यवस्थासे ही स्थिरता दृढ़ होती है। आवश्यक हुआ होगा कि अराजकताकी स्थिति-समाप्त की जाय। लोग अपनी संपत्तिकी रक्षा कर सकें। सबल निर्बलको इस प्रकार न निगल जाय जैसे बड़ा मत्स्य छोटी मछलियोंका भक्षण कर

जाता है। फलतः आरंभिक व्यवस्थाके लिए आरंभिक राज्य व्यवस्थाकी उत्पत्ति हुई होगी। अब मनुष्य ऊँचे स्तरपर पहुँच गया था। फलतः उसके बाद क्रमशः सभ्यताका विशेष विकास हुआ होगा।

मानवके आरंभिक इतिहासके संबंधमें इसी प्रकारकी कल्पना की जाती है। विद्वानोंके मतसे मनुष्यकी अति आरंभिक व्यवस्था और सभ्यताका उदय हुए भी सात-आठ हजार वर्षसे अधिक न हुआ होगा। यही उसकी आयु है और इन छः सहस्राब्दियोंकी तपस्या और साधनाके बलपर आज मानव वहाँ पहुँचा है जहाँ स्थित दिखाई देता है। इन छः सहस्र वर्षोंमें भारतने जो अभिनय किया है उसकी ओर देख कर कौन मुग्ध न होगा और कौन आदरके साथ उसके संमुख सिर न झुकावेगा? फिर भारतीय होनेके नाते यदि हमारे हृदयमें गौरवकी अनुभूति हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? इस देशमें किसी आरंभिक कालमें जब भूखडके अधिकतर भागोंके मानव निवासी अपनी आदिम स्थितिमें पड़े हुए थे, महती संस्कृतिका विकास हुआ। इस मूल स्रोतसे सांस्कृतिक गंगाकी अजस्रधारा सहस्राब्दियों तक प्रवाहित होती रही है, जो धरातलको अपनी पुनीत जल-कणिकासे पावन करती रही है। गंगा और सिंधुके दुकूलोंमें पहले पहल मानव चेतना ओजस्विनी होकर सभ्यताका प्रजनन करनेमें सफल हुई। इन नदियोंके बीचके मैदान जगत्के उर्वर प्रदेशोंमें है, जहाँ निवास करनेवाली एक जातिने विकासकी ओर

पहला कदम उठा कर मानवताका पथ-प्रदर्शन किया। यह घटना अति पुरानी है। ईसाके जन्मसे कमसे कम तीन सहस्र बर्ष पूर्व और आजसे प्रायः पांच हजार वर्ष पहले भारतके अंतरिक्षपर विकासके अरुणोदयकी जीवनदायिनी सुंदर आभा झलक उठी। समूचे जगत्में उसका सामना करनेवाले और उसकी तुलनामें टिकनेवाले केवल तीन प्रदेश अब तक मिले हैं। ऐसा मालूम होता है कि सभ्यताका उदय पहले पहल नदियोंके सुंदर तटोंपर ही होता रहा है। गंगा और सिंधुके तटके समान फारसकी खाड़ीमें गिरनेवाली दजला और फरात नदियोंके मध्यवर्ती प्रदेशमें भी उस समय एक उच्च संस्कृति विकसित हो रही थी। उसी कालमें मिश्रकी नील नदीके तट पर भी एक सभ्यता अंकुरित होकर पुष्पित और पल्लवित हो रही थी। उसी युगमें चीनकी होयां हो और यांगच्येक्यांगके तट और मैदानमें भी विकासका पथ प्रशस्त करनेमें एक समूह संलग्न था।

कहते है कि फारसकी खाड़ीके उत्तर दजला और फरात नदियोंके तटवर्त्ती प्रदेशोमें आजसे प्रायः साढ़े पॉच हजार वर्ष पहले मानव सभ्यताका सूत्रपात हुआ। वहाँके निवासी अब सुमेर या अक्कादीके नामसे कहे जाते है, जिनकी दो प्रसिद्ध वस्तियॉ कॅगि और उरके नामसे विख्यात थीं। सुमेर कौन थे, यह अबतक निश्चित नही हो सका पर आज भू गर्भसे उनकी सभ्यताके जो अवशेष मिले है उनसे ज्ञात होता है कि वे सभ्य थे, अच्छे शिल्पी थे, उनकी नारियॉ सुंदर थीं, भव्य

भवन बनाना वे जानते थे, व्यवस्थित समाज था, व्यापार और उद्योग था। इसी समय मिश्रकी नीलके तट पर हामी वंश नामक मानव जाति सभ्यताका विकास कर रही थी। जिस समय उधर यह घटना घटित हो रही थी उसी समय इस देशमें मनुष्य वंशकी आर्य नामक जाति महती सभ्यताका निर्माण करनेमें लगी हुई थी। ईसासे तीन सहस्र वर्ष पूर्व तो भारतीय आर्योंके दो शाख अर्थात् मनुका मानव वंश और पुरुरवाका ऐल वंश साथ-साथ इस देशमें राज्य कर रहा था जो इस बातका प्रमाण है कि उसके शताब्दियों पूर्वसे भारतकी आर्य जाति विकासके उच्चस्तरपर पहुँच चुकी थी। तबसे अर्थात् ईसाके जन्मसे तीन सहस्र वर्ष पूर्वसे लेकर कमसे कम उनके जन्मकी ६ शताब्दि बाद तक इस देशसे उज्वल सांस्कृतिक धारा बहती रही है जिसने समस्त मानवताके विकासके अंकुरका अपेक्षाकृत सबसे अधिक सिंचन किया है। छत्तीस सौ वर्षोंके इस इतिहास की कहानी हमारे उज्ज्वल अतीतकी गाथा है। उसके विस्तारमें जाना इन पंक्तियोंका लक्ष्य नहीं हो सकता। उसका न यहाँ स्थल है और न वह संगत ही है। पर उसकी उपेक्षा ऐसे समय मैं न कर सका जब जगत्की आजकी स्थितिकी ओर देखता हूँ। और जब अनुभव करता हूँ कि नव विश्वके निर्माणमें भारतको अपना भाग पूरा करना है।

भारतमें किसी समय जिस जीवनका विकास हुआ था वह कहीं कुंठित नहीं हो गया। उस जीवनने संस्कृतिके जिस स्तरको

प्राप्त किया, जिन आदर्शोंकी स्थापना की और मानवताके सामने जो दृष्टिकोण रखा, वह सहस्रों वर्षोंतक दुनियाका नमन करनेके बाद भी आज भारतीयताको और एशियाके अधिकतर निवासियोंको प्रभावित कर रहा है। दूसरी किसी जातिने उतने प्राचीन कालमें किसी वाङ्मय और साहित्यकी रचना नहीं की जब आर्य ऋषियोंके हृदयसे पहले पहल उन्नत, ललित भावपूर्ण और कवितामयी वाक्धारा बह निकली। ऋग्वेद आज जगत्का सबसे प्राचीन ग्रंथ है जिसके सूक्तोंमें सुसंस्कृत, भावुक तथा विचार और विवेकसे पूर्ण हृदयोंकी अनुभूतियाँ मूर्त हुई हैं। आर्योंने उज्ज्वल साहित्यका निर्माण किया, उन्नत समाजकी रचना की, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक संघटनोंका न केवल उद्भव किया बल्कि उनके शास्त्रको ऐसा वैज्ञानिक रूप प्रदान किया जिसकी उतनी पुरानी मिशाल आज भी जगत्में प्राप्त नहीं है। उन्होंने ईसाके डेढ़ हजार वर्ष पूर्व उस वैज्ञानिक, समुन्नत और सर्वांगीण वर्णमालाको जन्म प्रदान किया जो आज भी संसारकी सबसे पूर्ण वर्णमाला मानी जाती है। वर्ण-विज्ञानको उन्होंने शास्त्रका रूप प्रदान किया जिसका पठन-पाठन उन्नत ढंगसे होता था। हमारी वर्णमालामें एक ध्वनिका एक ही चिह्न है और एक चिह्नकी एक ही ध्वनि। दूसरे किसी देशकी वर्णमाला आज भी वैसी पूर्ण नहीं। जगत्में उस वर्णमालाका प्रभाव आज भी देखने योग्य है। भारतकी अनेक प्रान्तीय भाषाओंमें तो वह अक्षुण्ण रूपसे बैठी हुई है ही पर भारतके बाहर भी उसकी

सत्ता छायी हुई है। यहाँकी नागरी, गुजराती, बँगला, शारदा और उड़िया तथा द्राविड़ी भाषाओंकी तामिल, तेलगू, कनाड़ी और मलयालम आदिकी वर्णमाला समान है। पर भारतके बाहर सिहली, बर्मी, कंवुजी और कंवुजीसे निकली, केचंग, कवि, लचोंग, बत्तक, बुगि मकस्सर आदि लिपियों और भाषाओंकी वर्णमाला भी वही है। इन सबके सब वर्ण एकसे हैं स्वरोंका क्रम और व्यंजनोंका विभाग तथा स्वरोंकी मात्रा बनानेका नियम भी सब समान है। जो भेद है वह नाम मात्रका। किसी समय अफगानिस्तान, मध्य एशिया, चीनके सिमकियांग प्रान्त तथा मलाया प्रायद्वीपके समूचे भू-खंडोंमें आर्योंकी प्रतिभासे उत्पन्न इस वर्णमालाका राज्य छाया हुआ था।

इस वर्णमालाने भारतीय विचार और दृष्टिकोण तथा आदर्शों-को अपने गर्भमें लेकर भारतकी सीमाके बाहर निवास करनेवाली मानव-जातिको संस्कृति और विकासका संदेश प्रदान किया था। हिंदी, बंगला, गुजराती मराठी आदिको तो छोड़ दो क्योंकि ये सस्कृतसे जो आर्योंकी भाषा थी निकली ही हैं। उनके सिवा द्रविड़ भाषामें तेलगू, कनाड़ी, मलयालय आदि भी संस्कृतकी शरण लेती हैं और इनका साहित्य आधेसे अधिक संस्कृत शब्दों-से गर्भित है। पर भारतकी सीमाके बाहर सिहलकी सिहली सस्कृत और पालीसे परिपूर्ण है। स्यामी, बर्मी और कंबुजी भाषाओंने संस्कृतसे ही शब्दोंको लिया है। तिब्बतीका समूचा साहित्य संस्कृतका अनूदित साहित्य है। मंगोल भाषाने यद्यपि

भारतीय वर्णमाला नहीं अपनायी पर उसका प्राचीन साहित्य भारतीय साहित्यका अनुवाद है, और उसकी भाषामें संस्कृत शब्दोंकी भरमार है। फ़लतः न केवल भारतकी अनार्य जातियों-को बल्कि भारतके बाहरका मानव समुदाय इस देशकी वर्णमाला के द्वारा आर्य संस्कृति, साहित्य, विचार, भाव और दृष्टिकोणसे प्रभावित हुआ। भारतकी वर्णमाला और भारतकी लिपि ऐसी वस्तु थी जिसे आर्य प्रवासी सब जगह ले जाते, जिसके द्वारा असभ्य जातियोंमें जीवनकी नवीन ज्योति पहुँचाते। असभ्य जातियाँ इस नये ज्ञानसे दीक्षित होतीं, उनकी भाषामें वाङमय-का विकास होता और धीरे-धीरे वे जातियाँ और उनकी भाषा सभ्य हो जाती, जिसपर भारतीयताकी छाप झलकती दिखाई देती। पाश्चात्य विद्वानोंका मत है कि भारतकी ब्राह्मी लिपि जगत्की सबसे पूर्ण और विज्ञानसंमत लिपि है। आज विद्वानोंका यह मत है कि ब्राह्मी लिपि अति प्राचीन कालसे चली आती है और ईसासे कमसे कम डेढ़ सहस्र वर्ष पूर्वसे अवश्य वर्तमान रही है। जायसवाल ऐसे प्राचीन भारत और उसकी सभ्यताके विद्वानका तो यह कहना है कि वह वैदिक कालसे चली आती है और इसके लिए वे वेदोंके प्रमाण उपस्थित करते हैं। संसारकी किसी सभ्य या असभ्य जातिने जब लिखनेकी कलाका आविष्कार नहीं किया था उस समय भी भारतके आर्योंने समुन्नत लिपिको जन्म दिया था। पश्चिमी एशियाकी प्राचीन सभी लिपि और उसकी शाखाएँ शेबाई तथा

नीजकी लिपियोंका उद्भव ब्राह्मीसे माना जाने लगा है। ये लिपियाँ जगत्की पुरातनतम लिपियोमें हैं जिनका उद्भव ईसासे हजार वर्ष पूर्व अवश्य हो चुका था।

भारतके आर्योंके पास जगत्को देनेके लिए संदेश था। उनकी उन्नत भाषाने इस जीवन और इस जगत्के स्वरूपकी अनुभूति की थी और उसके संबंधका आभास प्राप्त किया था। मानव-जीवन-का लक्ष्य, उसकी सृष्टि करनेमें प्रकृतिके प्रयोजनकी झलक कदाचित् उनके सामने चमक उठी थी। उन्हें सृष्टिके आधारमें उस चिरंतन चेतनकी सत्ताका आभास मिला था जिसकी अभिव्यक्ति ही इस जीवन और जगत्के रूपमें मूर्त हुई है। उसके सत्य, शिव और सुदर रूपका दर्शन आर्योंकी प्रबुद्ध आत्मा करनेमें समर्थ हुई थी। मानव और गतिशील मानव उसी चेतनका अश है जिसका साक्षात्कार करके अपनेको परम सौंदर्य, परम सत्य और परम कल्याणमें लय कर देना उसके जीवनकी सार्थकता है। तत्त्व-चिंतनकी इस लहरका दिग्दर्शन उपनिषदोंमें होता है जो सारी भारतीय सभ्यता और उसके विकास तथा उसके जीवनकी बुनियादके रूपमें सहस्राब्दियोंसे वर्तमान है। इन आदर्शोंकी भित्तिपर ही भारतीय सभ्यताके शिल्पियोने अपने भव्य भवनको गढ़कर निर्मित किया था। भारतके सारे जीवनके अगप्रत्यंगपर इसकी छाया रही है। इन आदर्शोंकी ज्योतिमें ही उसने जीवन और जगत्की ओर देखा। फलतः उसकी सारी प्रवृत्तिके मूलमें यही प्रेरणात्मिका भावना काम करती गयी है।

यही कारण है कि भारत जीवनको केवल भौतिक दृष्टिसे नहीं देख सका। उसने उसे केवल अभौतिक दृष्टिसे, आध्यात्मिक दृष्टिसे भी नहीं देखा। उसकी विशेषता यह रही है कि उसने मानवताके और जगत्के तात्विक रूपको समझा कि सृष्टिके मूलमें जो चेतन है उसीकी अभिव्यक्ति यह भौतिक जगत् है। एक ही तत्त्वका यह भी एक पहलू है। सत्य सत्य है ही पर सत्यका पहलू भी अपने पहलूके रूपमें सत्य ही होगा, असत्य नहीं। फलतः मानव न केवल भौतिक है और न केवल अभौतिक पर दोनों है और दोनोंका सामंजस्य ही और दोनोंको एक ही पदार्थके दो पहलूके रूपमें देखना तत्त्वका वास्तविक साक्षात्कार है।

सक्षेपमें प्राचीन आर्य दृष्टिकोण यही था और यही था सन्देश। इसीके आधारपर आर्य सभ्यता विकसित हुई। उसके साहित्यके निर्माणमें, उसकी कला और कवितामें, उसके दर्शन और ज्ञानमें, जीवन संबंधी उसके आचार और विचारमें, समाजके संघटन और विकासमें, उसके आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक जीवनमें मूल धारा यही बहती रही है। इस धारासे उसने अपने जीवनको ओतप्रोत कर देनेकी चेष्टा की। इस चेतनाको और इसके साथ उदीयमान हुई अपनी संस्कृतिको लेकर इस देशके धरातलको संदेश सुनानेकी चेष्टा की। उत्तर भारतसे आर्य ऋषियों और प्रचारकों तथा नेताओंका दल पहले भारतकी समस्त आर्येतर जातियोंको सभ्य बनानेके लिए बढ़ा।

दक्षिणमें आर्योंने अपने उपनिवेश बनाये और राज्योंका स्थापन किया। यह क्रिया एक दिनमें पूर्ण नहीं हुई। सहस्राब्दियाँ इस प्रयत्नमें गुजर गयी। आर्योंके उपनिवेश बसानेके ढंग घृणित ढंग न थे जो आज पश्चिमकी श्वेत जातियाँ बरत रही हैं। वे भी सभ्यता और ईसाई धर्मके बहाने पृथ्वीकी अश्वेत जातियोंमें घुसती है पर उसके पीछे-पीछे उनकी निष्ठुरता और स्वार्थपरता चलती जाती है। जिन भू-खडोंमें वे गयीं वहाँकी मूल जातिको समूल नष्ट कर देनेमें उन्हें संकोच न हुआ। अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका आदिकी अश्वेत नस्लोंको समाप्त कर देनेमें उन्होने कुछ न उठा रखा। प्राचीन आर्योंका ढंग यह घृणित ढंग न था। उन्होंने उपनिवेश बसाये, मूल जातियोंमें अपना संदेश फैलाया, उन्हें उन्नत और विकसित तथा सभ्य बनाया। सारे भारतको अपना सदेश देकर वे इस देशकी सीमाके बाहर निकले। आज भारतके इतिहासका पट जब धीरे धीरे ऐतिहासिक खोजों और शोधोंके द्वारा खुल रहा है तब हम यह पाते है कि लंका और वर्मा, मलाया प्रायद्वीप और स्याम, जावा और सुमात्रा तथा इधर तिब्बत और चीन तथा मगोलिया, अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक भारतीय प्रचारक गये, वहाँ उपनिवेश बसाये अथवा सदेशका प्रचार किया और असभ्य तथा आर्येतर जातियोंको सस्कृति तथा जीवनके निर्माणमें सहायता प्रदान की। ईसवी सन्‌की पहिली और दूसरी शतीतक तो भारतीय महासागर और मलायाके द्वीपपुज भारतीय उपनिवेशोसे ढँक गये

थे और भारतीय बन चुके थे। सुमात्रा, जावा, अनाम आदिमें सुदृढ़ भारतीय औपनिवेशक राज्य स्थापित हो गये थे।

इधर मध्य एशिया तक भारतीय बस्तियाँ बसीं, वहाँसे सुदूर चीन और पश्चिमी एशिया, यूनान, मिश्र, रोम तक भारतीय स्वतंत्रताका संदेश पहुँच रहा था। भारतने जगत्के सबसे महान और लोकोत्तर पुरुषको ईसाके जन्मके ६ सौ वर्ष पूर्व अपने गर्भसे उत्पन्न किया था। बुद्धने जिस आचार-प्रधान धर्मकी शिक्षा मानवताको दी थी उससे एक समय जगत्का बड़ा भूभाग प्रभावित हुआ। इस धर्मकी धाराको पकड़कर अशोकने एक बार उस यूनान और मिश्रको भी प्रभावित किया जो आज यूरोपकी सभ्यताका जनक समझा जाता है। भारतकी सभ्यताका वह आकर्षण था जिसने मिश्रके यूनानी राजा टालेमी फिलाडेल्फसको भारतीय ग्रंथोंका अनुवाद कराने और उसे लिकदरियाके जगत्-प्रसिद्ध पुस्तकालयमें रखवानेके लिए उत्सुकता प्रदान की थी। फिलिस्तीनके जूड़िया नगरमें बौद्ध थेरोंका विहार था जहाँ रहकर वे धर्मका प्रचार करते थे। उस समय फिलिस्तीन में यहूदी धर्मका प्रसार था। बौद्ध थेरोंका निवास फिलिस्तीनमें अशोकके समयसे ही आरंभ हुआ था। वहीं ढ़ाई सौ वर्ष बाद ईसाका जन्म हुआ। ईसाके जीवन और धर्मपर बौद्ध धर्मकी गहरी छाप पड़ी थी, इसे साधारण रूपसे आज स्वीकार किया जाता है। ईसाई धर्मकी जन्मभूमिमें उसके जन्मके ढ़ाई सौ वर्ष पूर्व बौद्धधर्मका प्रभाव और प्रकाश पहुँच चुका था। भारतीय

व्यापारियोंका पश्चिमकी ओर आना-जाना निर्विवाद रूपसे सिद्ध हो रहा है। वेबिलोन और मिश्रकी सभ्यतासे भारतीय आर्यों-का संपर्क तो था ही पर रोमन साम्राज्यके समय इस देशके व्यापारी जलमार्गसे भूमध्य सागर पार कर अतलांतक तक निकल जाते थे। जर्मनीके तटतक उनकी पहुँच हो गयी थी। कुछ विद्वान् कहते है कि वे अमेरिका और नार्वे तक चक्कर लगा आते थे। आज इतिहास साक्षी है कि भूमध्य सागरसे लेकर जापान तक और साइबेरियासे लेकर जावा सुमात्रातक कोई देश नहीं है जिसपर प्राचीन भारतीय धर्म, साहित्य या कलाका प्रभाव न पड़ा हो।

यह तमाम प्रयास था इस देशका जगत्के विकासके लिए। जब मनुष्य अंधकारमें था, जब उसे अपने जीवनकी महत्ताका भान नहीं हुआ था पर जब प्रकृतिकी विकासधारा उसकी जाग्रति और चेतनाकी अपेक्षा कर रही थी, जब आवश्यक था इस भूतलको मानवतासे परिप्लावित करके युगान्तर उपस्थित कर देना, उस युगमें सहस्राब्दियोंतक इस बूढ़े भारतने मनुष्यकी सेवा की, उसका मार्ग-प्रदर्शन किया। उदारता और सहिष्णुता उसके अस्त्र थे जिनके द्वारा उसने ज्ञात जगतपर ज्ञान-विजय और धर्म-विजय करनेकी चेष्टा की। जिस यूनानकी सभ्यतापर यूरोप गर्व करता है उसका जब उदय भी नहीं हुआ था, उसके प्रसिद्ध और आदरणीय दार्शनिकोंका पता भी नहीं था, उस समय सिकन्दरसे तीन सौ वर्ष पूर्व जगत्का प्रथम दार्शनिक कपिल

इस देशमें उत्पन्न हुआ और जगत्‌के सबसे बड़े धार्मिक महा मानव बुद्धका उदय हुआ। जब यूनानके 'स्वतंत्र नगरों' की स्थापना भी नहीं हुई थी, तब भारतमें राजाहीन गणतंत्रोंकी संख्या एक दो नहीं दर्जनों थी, जिन्होंने आक्रमणके समय छक्के छुड़ा दिये थे और जिनसे विकल हो सिकन्दरको भागना पड़ा। पर इस देशने शस्त्रके बलपर न कभी धर्म फैलाया और न सभ्यता। उसने प्राण-संहारके द्वारा भौतिक ऐश्वर्यकी प्राप्तिकी चेष्टा ही कभी न की। उसमें सहिष्णुता थी जिसके बलपर बाहरसे आनेवाली जातियोंका भी आर्यीकरण कर डाला। यूनानी और पल्लव आये, ऋपक और तुखार आये, शक और हूण आये पर कौन आर्य-धारासे बच सके? जो लुटेरे और विजेता बननेके लिए आये थे वे भी इस देशकी महत्ता और संस्कृतिके संमुख नत मस्तक होकर उसके चरणोंमें लोटने लगे। इन लोगोने भारतकी संस्कृतिको, उसके जीवन और ढंगको, उसके धर्म और विचारको अपना कर विशुद्ध भारतीयताका बाना पहिना।

आज अतीतकी इस उज्ज्वलताका दर्शन मैं अपनी कोठरीमें पड़े-पड़े कर रहा हूँ। मैं अतीतका प्रेमी इसलिये नहीं हूँ कि मै उसे वापस लाना चाहता हूँ। जो बीत गया सो सदाके लिए बीत गया प्रकृतिके नियमके अनुसार! वय धर्म विकासके सिद्धान्तका द्योतक है और वह धर्म ही जीवन तथा जगत्‌का मूल स्वभाव है। हमारे अतीतमें सब दोषहीन ही था, यह दृष्टि प्रतिगामी तथा मूढ़तापूर्ण है। कोई भी मत मतान्तर हो या

सिद्धान्त, अच्छे या बुरे होते हैं अपने गुणसे। केवल पुराना होना किसीके गुणका द्योतक नहीं है। पुरानापन तो कालका धर्म है जिससे अच्छाई या बुराईका कोई सबन्ध नहीं है। कूड़ा-करकट सदा रहता है और सदा रहेगा। फलतः मुझे अतीत-को वापस बुलाना नहीं है पर उसके द्वारा जो स्फूर्ति और प्रेरणा तथा आत्म-विश्वास प्राप्त होता है उसे ग्रहण क्यों न करूँ? आज उसपर दृष्टि डालनेसे यह विश्वास तो जगता है कि जिस देशने एक दिन जगत्का नेतृत्व करनेकी क्षमता दिखायी थी वह अपना तथा ससारका नेतृत्व करनेकी शक्ति पुनः प्रदर्शित कर सकता है। हमारे सामने उस शक्तिकी उपलब्धि और प्रदर्शन करना आजके आदर्शके रूपमें उपस्थित है। विश्वको अपनी गोदमें रखनेवाले वातावरणमें आज युगान्तरकी गन्ध मिल रही है। जगत्की स्थिति भावी महाक्रान्तिका संकेत करा रही है। मानवता अपनी ही व्यवस्था, अपने बधन और अपने वर्तमान आदर्शसे उत्पीड़ित है। उसे नया मार्ग और नयी व्यवस्थाकी खोज बाध्य होकर करनी पड़ेगी, अन्यथा वह पृथ्वी परसे मिट जायगी। जिन्हें उसके भविष्यमें विश्वास है वे विश्वास करते हैं कि इस विकलताकी आगमें उसका वर्तमान कलुष भस्म हो जायगा और वह तपेतपाये सोनेकी भाँति उसमेंसे विशुद्ध होकर बाहर निकलेगी। युगान्तरके इस संकेतमें भारतके सौभाग्यकी भी सूचना है। संप्रति इस देशसे अधिक पतित और उत्पीड़ित, शोषित और विकल दूसरा कौन है? अपने उज्ज्वल अतीतसे

हम जैसे परिचित हैं वैसे ही अपने भ्रष्ट और जघन्य वर्तमानसे भी परिचित हैं। जानते हैं कि अतीतकी सारी उज्ज्वलता लिये हुए भी हम ऐसे गिरे कि शताब्दियोंसे धरतीकी धूल चाट रहे हैं।

अच्छी तरह मालूम है कि एक युग आया जब भारतकी पुरानी सजीवता और चेतना तथा जागरुकता नष्ट हो गयी। ज्ञान और प्राणकी जो धारा उसके सांस्कृतिक जीवनमें प्रवाहित थी उसका प्रवाह धीरे-धीरे रुक गया। जातीय जीवन इस रस-मयी धारके रुकनेसे सूखने लगा और सूखकर जड़ हो गया। अपने उज्ज्वल आदर्शसे हम भ्रष्ट हुए। जिस तेजस्विताने हमें भारतकी भौगोलिक सीमाके बाहर भेजकर सांस्कृतिक दूत बनने-का श्रेय प्रदान किया था, जिस चेतनाने जीवन और जगत्के तात्विक रूपको उद्घाटित करने और समझनेमें सफलता प्राप्त की थी, जिस कुशलताने सामाजिक जीवनको गढ़नेकी क्षमता दिखायी थी वह सब उक्त प्रवाहके रुकनेसे मर मिटी। फिर तो प्राणको छोड़कर हम कङ्कालसे चिपटे। रूढ़ियों और अंध-विश्वासों का उदय हुआ। आचार-विचार और संस्कारोंके भीतर जो भावात्मक और सप्राण दृष्टिकोण था उसे तो भूल गये पर उनके बन्धनोंको पकड़े रहने और कठोर करनेमें लग गये। राष्ट्रीय देह सड़ गया। हमारा गौरव मिटा सो मिटा, अब तो अस्तित्व भी खतरे में है। इस स्थितिमें युगान्तरके आगमनके संकेतमें हमारे सौभाग्यकी सूचना भी दिखाई देती है बशर्ते कि हम आनेवाले युगके अनुकूल बननेकी क्षमताका विकास समय रहते

कर ले। विश्वक्रान्तिसे निर्मित नव जगत्में भारतको स्थान प्राप्त करना है और प्राप्त कराना है, न केवल अपने उद्धारके लिए बल्कि सामूहिक रूपसे मानव विकासमें साहाय्य प्रदान करनेके लिए जिसमें मनुष्यका जीवन अधिक मानवीय और अधिक योग्यतम हो सके जिसे लेकर वह अपने प्रयोजनको सिद्ध कर सके।

भारत और विशेषकर उसका युवक इस महान् पथका पथिक होनेकी शक्ति रखता है अथवा नहीं, इसका उत्तर उसे देना है। आज इस देशके यौवनकी परीक्षाका समय है। यूरोपकी नकल करनेका और उसीकी धारामें बहनेका समय बीत गया। समय था जब इस देशके चारित्रिक पतनकी सीमा पहुँच गयी थी, जब एक ओर हममेंसे कुछ अतीतको लेकर उसे ही वापस लानेके नामको रो रहे थे और दूसरे, विशेष कर युवक, जो कुछ भी पुराना था उसे भ्रष्ट, गदा और बर्बर समझकर यूरोपसे जो आवे उसे ऑख मूँदकर ग्रहण कर लेनेमें अपना उद्धार समझते थे। दोनो ऐसे थे जो आत्मविश्वाससे शून्य थे। एक समझता था कि सारे ज्ञान और समस्त आदर्शों, तथा तत्त्वोका जो भी अंतिम निदर्शन हो सकता था वह पहले ही हो चुका है। मनुष्यकी चेतना और विकासकी अंतिम घड़ी कदाचित् चार हजार वर्ष पूर्व ही समाप्त हो चुकी थी। ऐसे लोगोको न अपनेमें विश्वास था, न वर्त्तमान और न भविष्यमें। विश्वास था और जड़ विश्वास था अतीतके शवमें

जिसे सप्राण करना असंभव था। दूसरे वे थे जो उनसे कम अंधविश्वासी न थे। अपनेपनको भूले हुए, सहस्राब्दियोंके अपने इतिहास और संस्कारकी उपेक्षा करनेवाले यह समझ बैठे थे कि पश्चिमको ही प्रकृतिने बुद्धि और ज्ञानका ठेका प्रदान कर दिया है। ऑखें मूँदकर वहाँसे आनेवाले रत्न और कूड़े करकटको, अमृत और विषको, समान रूपसे उदरस्थ करते चलो। उनकी अपनी चेतना, अपनी मौलिकताके लिए कोई स्थान न था। आजका युवक शेली और कीट्स, कांट और हेगलके बारेमें अधूरा और थोथा ज्ञान भले रखता हो पर उसे कालिदास और भवभूति, कपिल और शंकरके बारेमें कुछ भी पता नहीं है। अंग्रेजी लेखकों द्वारा लिखी जब वह कालिदासकी प्रशसात्मक आलोचना पढ़ता है तब इतना जान लेता है कि कालिदास भी किसी जन्तुका नाम था जो भारतमें उत्पन्न हुआ था। दूसरोंकी चिल्लूसे पानी पीनेवाले इन प्राणियोंसे भारत और जगत्का कौनसा कल्याण हो सकता था।

पर आज वह युग समाप्त हो रहा है। न पूर्वके अतीतका ज्ञान पूर्णरूपसे केवल गड़ेरियोंका ही ज्ञान था और न पश्चिमका विज्ञान संपूर्ण रूपेण दिव्य-दृष्टि तथा केवल दैवीभावसे ही परिपूर्ण है। स्वयं पश्चिम अनुभव कर रहा है कि उसके पास जो है वह पर्याप्त नहीं है। मानवताके लिए वह कल्याणकर है अथवा विनाशकारी यह महान् प्रश्न उसके सामने है जिसका उत्तर स्वयं जगत्की स्थिति दे रही है। उसकी ओर ऑखें

उठाकर देखिये तो सही। यह सच है कि विज्ञानने प्रकृतिके भौतिक रूपपर विजय प्राप्त की। उसने उसकी अपरिमित शक्तिका पता पा लिया और इसका उपयोग करनेकी क्षमता प्राप्त की। मानवताके इतिहासमें आजसे पूर्व कोई युग नहीं था जब मनुष्यने प्रकृतिको इस प्रकार अपनी दासी बनाया हो। उसने भौतिक जगत्के रहस्योंका आवरण फाड़ फेंका और मनुष्यको वह गति प्रदान की जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। आज यह भूमंडल उसके चरणोंके नीचे है जिसकी कोई भी भौगोलिक या प्राकृतिक बाधा उसका मार्ग नहीं अवरोधन कर सकती। उसने मनुष्यको जगत्के और जीवनके अंधकाराच्छन्न गुप्त प्रदेशों और विभागोंको प्रकाशमें लाकर देखनेकी शक्ति प्रदान कर दी। हमारे चर्म-चक्षुओंसे अदृश्य जो पदार्थ थे उन्हें भी उसने उनके गुह्य प्रदेशोंसे बाहर निकाल लिया। पृथ्वीके ऊपर और समुद्रके गर्भका दर्शन हम कर सकते हैं, पहाड़ोंकी चोटियों और ग्रहोंका रूप हमारे सामने आ जाता है। शून्य आकाश और जल, थल, पावक, समीर तथा जितने भी दृश्य पदार्थ है उनके खंड करके मनुष्यने इनके प्रकृत रूपका दर्शन कर लिया। मनुष्यकी सुंदर देहके भीतर असख्य कोषों, स्नायु-तन्तुओं, जीवाणुओंकी गति और प्रगतिका निरीक्षण विज्ञानने उसे करा दिया। उत्पादनके साधनोंमें उसने उसके लिए वह परिवर्तन कर दिया कि मनुष्यकी शक्ति अपरिमित और अकल्पित रूपसे बढ़ गयी। रोगों और उनकी पीड़ा तथा

भयसे भी मनुष्य बहुत कुछ मुक्त हुआ। अंधविश्वास और रूढ़ियों तथा अज्ञानकी जड़ इसने हिला दी। ऐसा मालूम होता है कि प्रकृतिको उसने अपनी सारी विभूति एक बार ही मानवकी गोदमें उड़ेल देनेके लिए बाध्य किया। सैकड़ों विधियोंसे कुछ शताब्दियोंमें ही उसने मनुष्यको अधिक ज्ञानवान, अधिक निर्भय, अधिक ऐश्वर्य-संपन्न, अधिक गतिशील, अधिक शक्तिशील तथा अधिक व्यापक बना दिया।

सुदूर और निश्शब्द तथा एकांत गाँवोंसे निकल कर मनुष्य विशाल नगरोंका निवासी हो गया, महती और गगनचुंबी अट्टालिकाओंमें रहने लगा, अपने मनके अनुकूल गर्मी, सरदी तथा बरसातकी कठिनाइयोंको जब चाहे दूर करनेमें समर्थ हुआ। जब चाहे दिनको रात बना देने और रातको दिन बना देनेकी शक्ति प्राप्त की। गर्दसे शोरगुलसे, गमनागमनकी दिक्कतोंसे वह जब चाहे मुक्त हो सकता है। आयास और श्रमसे उसने इस प्रकार पिंड छुड़ा लिया कि आज न सीढ़ियोंपर चढ़नेकी आवश्यकता है और न पैदल चलने की। आजका साधारण मनुष्य जगत्के सम्बन्धमें इतनी जानकारी रखता है कि अतीतके कदाचित बड़े बड़े मनीषी भी उतना न जानते रहे होंगे। घरमें बैठे-बैठे प्रति दिन दुनियाकी हालत पढ़ सकता है, न्यूयार्क और लंदनकी किसी गाइकाके सुरीले स्वरका आनन्द ले सकता है, रूस और जापानके लोगोंके रहन-सहनका प्रत्यक्ष ज्ञान चलते फिरते चित्रोंसे प्राप्त कर सकता है। विज्ञानने सबको जता दिया

हैं कि शून्य दिक् वर्तुलाकार है तथा विश्व किन्हीं अंध, अज्ञात तथा जड़ शक्तियो द्वारा संचालित है। अनन्त और व्यवस्थित सृष्टिधारामें हमी नहीं किन्तु यह भूमंडल भी एक अत्यन्त लघु तथा अकिंचन बुलबुलेके समान अकस्मात् उत्पन्न हो गया है और वह सृष्टि-धारा विराट, महत्ती तथा असीम होते हुए भी चेतना-हीन तथा निष्प्राण है। साक्षरताका प्रसार बहुत है, मनुष्योको रोगोसे मुक्त करके अधिक सुंदर तथा सुरक्षित बनानेका प्रयत्न भी अपरिमित है तथा उसके ऐश-आराम और बिलासके साधन भी अकल्पित रूपसे प्रस्तुत कर दिये गये हैं।

यह सब देन है विज्ञानकी। उसे देख कर सहसा मुखसे निकल जाता है कि मानवता आज जितनी उन्नत, जितनी सुखी, जितनी विकसित तथा परिपूर्ण है उतनी पहले कभी नहीं रही होगी। आजकी स्थितिमें न किसीको कष्ट होगा, न भय, न शोक और न आशका। न अज्ञान होगा, न भूख, न दरिद्रता होगी और न पराधीनता तथा दैन्य! मनुष्य वस्तुतः जगत्का, प्रकृतिका प्रभु हो गया है। पर अपने इस स्वरूप और अपनी सफलतापर फूला हुआ मनुष्य भी अधिक समयतक अपनेको न उस स्थितिमें रख पाता है और न आत्म-वचन करनेमें समर्थ होता है। इस विज्ञान तथा तज्जन्य स्थिति और वातावरणको उसने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किया तथा उसके अभिनन्दनके लिए उत्सुकतासे आगे वढ़ा। पर धीरे-धीरे उसने देखा कि वस्तुस्थिति कुछ दूसरी ही है। एक ओर जहाँ

जगत्के बाजार वैज्ञानिक साधनों द्वारा उत्पन्न पदार्थोंसे भरे पड़े हैं, जहाँ पृथ्वीकी उर्वरताको बढ़ाकर मनुष्यने खाद्य साम-ग्रियोंका अभूतपूर्व भंडार खड़ा कर छोड़ा है, वहीं दूसरी ओर दरिद्रता, अभाव और भूखसे मानव समुदायका अधिकांश त्राहि त्राहि कर रहा है। उसके आर्थिक संघटन विचूर्ण होते दिखाई देते हैं। इस संकटका सामना करनेके लिए वह जितना प्रयत्न करता है उतनी ही समस्या बिगड़ती जाती है। पराधीनता और दैन्यका बोलबाला है। जिधर देखिये उधर दलन और शोषण तथा उत्पीड़न दिखाई देता है। पुराने नैतिक विचारों, धार्मिक विश्वासोंका परित्याग, अंधविश्वास और रूढ़ियोंके नाम पर किया गया पर उसके स्थान पर उच्छृङ्खलता और स्वार्थ-पूजाके सिवा दूसरा कुछ स्थापित न हो सका—आचार व्यवहारमें झूठ, रहन-सहनमें पाखंड, बातचीतमें असत्य-पूजा, प्रोपेगैंडा और प्रचारमें धोखेबाजी, स्त्री और पुरुषके सम्बन्धमें भ्रष्टता। एक मात्र अव्यवस्थाके और कुछ न कहा। विलास-लिप्साकी पूर्तिके लिए जो साधन उपयोगी तथा आवश्यक हो उसका ग्रहण एक मात्र मनोवृत्ति और जीवनका लक्ष्य बन गया। इच्छाओं और कामनाओंकी पूर्ति, बिना किसी संकोच और रुकावटके, संस्कृतिका चिह्न तथा मानव प्रयासका ध्येय हो गया। परिणामत. वर्ग-वर्गका संघर्ष और तीव्र हो गया। एकका स्वार्थ दूसरेसे अनिवार्यतः टकराने लगा जिसके फलस्वरूप वर्गहित और वर्ग स्वार्थने प्रचंड रूप धारण किया। शासक और शासितका,

मालिक और मजदूरका, व्यापारी और खरीददारोंका स्वार्थ भिन्न होकर पारस्परिक द्वेष, घृणा तथा द्रोहका कारण हुआ। एक दूसरेसे भयभीत और आशंकित होकर परस्परको अविश्वासी और शत्रु समझने लगे। स्वार्थकी यह भावना उग्र और आक्रमणशील राष्ट्रीयताके रूपमें उदय हुई। कौन जगत्‌का कितना अधिक दोहन अपने विलासकी पूर्ति और स्वार्थके साधनके लिए कर सकता है, यही प्रश्न मुख्य हो गया।

दुनियाके बाजारोंपर अधिकार जमानेके लिए, किसी प्रदेशके मूल निवासियोंकी नस्लका भी उन्मूलन करके उपनिवेश बसानेकी उत्सुकताने परस्पर प्रतिस्पर्धा और संघर्षकी सृष्टि की। अपनी इस जघन्य पशु-प्रवृत्तिको आवरित करनेके लिए मनुष्यने बड़े-बड़े सिद्धान्तोंकी शरण ली। देश प्रेम, राष्ट्र-सेवा, सभ्यताका प्रचार, मानवताका विकास, निर्बलोंकी रक्षा, लोक-तंत्र और स्वाधीनताकी पूजाका राग अलापा जाने लगा। मनुष्यने अपने ज्ञानका उपयोग इस पाखंडकी रचना, तथा असत्यके निर्माण तथा प्रवंचनामें ही किया। शून्य आकाशसे आनेवाली स्वर-लहरीमें झूठका ऐसा पुट है कि अंतरिक्ष उससे भर उठा है। आज उसका परिणाम भयावह हो रहा है। उसी विज्ञानका सहारा लेकर मनुष्य मनुष्यका भयानक सहार कर रहा है। कहा जाता है कि धर्मके नामपर मध्ययुगमें मनुष्म राक्षस बन कर मनुष्यका खून पीता था। वस्तुतः वह धर्म नहीं पाप था। पर धर्मके नाम पर जितना रक्त मानव जातिके इतिहासमें अब

तक न बहा होगा उससे कहीं अधिक वैज्ञानिक मनुष्यने एक दो लड़ाइयोंमें ही बहा डाला। फिर इतनी नृशंसता ? आसमानसे आग बरसा कर नगरके नगर जला दिये जायँ, नर-नारी, आबाल-वृद्ध, रोगी-अपाहिज, दोषी-निर्दोष सब समान रूपसे मौतके घाट उतार दिये जायँ। पृथ्वी नर-रक्त और नर-मुंडोंसे भर दी जाय और विनाशके विविध साधन फिर भी रोज-रोज उन्नत होते चलें! इसीमें रहकर विज्ञानकी सार्थकता और इसे ही कह दिया जाता है सभ्यता, फिर यह सब दानव-लीला होती है बड़े-बड़े सिद्धान्तोंके नाम पर! विज्ञानने जो दिया है उसका उल्लेख ऊपर किया है पर यह भी तो उसीकी देन है। इस देनके फलस्वरूप संभवतः पहली भेंटको ग्रहण करनेके लिए मनुष्य रह ही नहीं जायगा।

स्पष्ट है कि विश्वकी यह परिस्थिति प्रमाण है इस बातका कि पश्चिमकी सभ्यतामें आज कोई न कोई भारी कमी, महान् विकार तथा भयंकर त्रुटि है जिसका समय रहते यदि निराकरण न किया गया तो वह मानवताके प्रचंड विनाशका कारण हुए बिना न रहेगी। मानवके हाथमें विज्ञान उसी प्रकार खतरनाक हो गया है जिस प्रकार किसी बालकके हाथमें छुरा दे देना जिससे वह अपना ही अंग भंग कर सकता है। प्रश्न है जगत्के मानीपियोंके संमुख कि वह त्रुटि है क्या ? मेरे सामने इस प्रश्नका उत्तर सूर्यके प्रकाशकी भाँति स्पष्ट दिखाई देता है। जीवनसे ही जगत् है अतः जगत्की समस्याको हल करना आवश्यक है।

यह तभी संभव है जब जीवनका साक्षात्कार, उसका ज्ञान, उसका दर्शन उसके प्रकृत रूपमें किया जाय। मानवमें एक अंश यदि पशुतामूलक है अथवा उसका कृष्णांश है तो उसमें प्रकृतिने शुभ्रांश भी प्रदान किया है। द्वन्द्वात्मक व्यक्तित्वसे निर्मित इस प्राणीके उत्तमांशको जाग्रत करनेमें ही जगत्का कल्याण है। अनुभवसे सिद्ध है कि मानवका कृष्णांश प्रबल है। वह लोभ, वासना, अहंकार और भौतिकताकी पूजामें रत रहनेकी ओर ही अधिक झुकता है। पर उसका नैसर्गिक उत्तमांश जाग्रत होकर उसका नियमन कर सकता है, यह भी अनुभवसे सिद्ध है। फलतः जगत्को अधिकतर सुखकर और श्रेयस्कर बनानेके लिए मनुष्यके उत्तमांश और शुभ्रांशको जाग्रत करके उसे बदलनेकी चेष्टा करना ही एकमात्र उपाय है। केवल सुखकर परिस्थितियोंके निर्माणसे तबतक जगत् मूलतः सुखी नहीं हो सकता जबतक मानव-जीवन बदल न दिया जाय। मनुष्य अहं और स्वार्थके पुतलेके रूपमें छोड़ दिया जाय तो वह सारी परिस्थिति और विभूति दुरुपयुक्त होगी जो समाजके लिए वरदान हो सकती है। मनुष्यकी उन्नति और विकास, धन और ऐश्वर्यमें नहीं है बल्कि उसके उत्तमांशको जाग्रत करनेमें है। आधुनिक सभ्यता आज अपनेको संकटकी स्थितिमें पा रही है क्योंकि उसका निर्माण किया गया मनुष्यके प्रकृत स्वरूपको विना समझे हुए और बिना जाने हुए। थोड़ेसे जिज्ञासु और सत्यके शोधक वैज्ञानिक तपस्वियोंकी साधनाके फलस्वरूप हुए वैज्ञानिक आविष्कारोंसे

उस सभ्यताका उद्भव हुआ और यद्यपि सामूहिक रूपसे मनुष्यके यत्नसे वह निर्मित हुई पर मनुष्यके स्वरूप और विस्तारसे उसका सामंजस्य स्थापित न किया जा सका। स्पष्ट है कि विज्ञान किसी आयोजित योजनाका अनुगमन नहीं करता। उसकी उन्नति अकल्पित कारणोंसे होती है। किसी प्रतिभाशील व्यक्तिकी चेतना, उसकी जिज्ञासा, सत्यकी खोजके लिए किसी दिशाकी ओर उसका उत्प्रेरित हो जाना आदि ऐसे कारण हैं जिनपर उसकी उन्नति अवलंबित है। वैज्ञानिक अपनी खोज मूलतः इस दृष्टिको लेकर नहीं करता कि उसके द्वारा वह समाज और व्यक्तियोंकी स्थितिको उन्नत बनाना चाहता है। वह यह नहीं जानता कि वह कहाँ जा रहा है और सत्यके जिस स्वरूपको जगतके सामने रखेगा वह उसे ले कहाँ जायगा। प्रत्येक वैज्ञानिक अपनी अलग दुनियामें रहता है और अपनी सूक्ष्म दृष्टिसे एक प्रकारकी दिव्य उत्प्रेरणाकी स्थितिमें अपने पथपर चला जाता है।

विज्ञानके विशाल भंडारसे मनुष्यने कुछ अंश चुन लिये। यह चुनाव मानवताके व्यापक हितकी दृष्टिसे नहीं किया गया वल्कि मनुष्यकी प्राकृतिक प्रवृत्तिके अनुसार हुआ। अधिकसे अधिक सुविधा, सुख, भोग, विलास और कल्पनाओंकी पूर्तिमें जो जितना अधिक सफल तथा समर्थ हो वह आविष्कार उतना ही वांछनीय और ग्राह्य हो गया। मनुष्यकी इस प्रवृत्तिको विज्ञानकी पद्धति और वैज्ञानिक दृष्टिकोणने और अधिक उत्तेजन प्रदान किया। विज्ञानने अपने विवेचन और निरीक्षणके क्षेत्रमें

जड़ भौतिकताको प्रामुख्य प्रदान किया। वह पद्धति उसी पदार्थकी आलोचना, विवेचना, और ज्ञान प्राप्त कर सकती है जो स्थूल हो, जो प्रयोगशालामें अध्ययनका विषय बनाया जा सकता हो। विज्ञानका दृष्टिकोण मूलतः भौतिक है, फलतः उस पर आश्रित सभ्यताने भी भौतिक भाव ही को अवलंबित किया। निर्जीव मशीनोंके कल-पुर्जोंपर स्थापित सभ्यताने जीवनको भी यंत्रके ही रूपमें देखा। मनुष्य केवल उत्पादन और सोनेका संग्रह करनेका साधन मात्र रह गया। लोहा, आग, भाप पर आश्रित संस्कृति मानव-हृदयमें लोहेकी कठोरता, अग्निकी ज्वाला और भापका अन्धकार भर देनेका कारण हुई। जीवनका जो अंश भौतिक है वह सत्य हो गया और जो अभौतिक है उसकी सत्ता भी अस्वीकार कर दी गयी! वह यह भूल गया कि मनुष्यका उत्तमांश भी है जिसकी उपेक्षा करनेसे केवल उसका विकृत और हेय अंश ही बच रहेगा। यदि उसी अंशको प्रभुता प्रदान करके जीवनके सचालनका अधिकार दे दिया गया तो फिर प्राप्त नयी शक्तिके द्वारा वह उस भयंकर दैत्यके समान स्वच्छन्द होकर आचरण करेगा जिसकी कल्पना मात्रसे कलेजा काँप उठता है। जिन परिस्थितियों और वातावरणकी उत्पत्ति इसके फलस्वरूप हुई उससे मनुष्य अपना सामंजस्य स्थापित कर सका। विज्ञानने उसकी शक्ति भले ही बढ़ा दी हो पर उसके विवेकको उस मात्रामें विकसित करनेमें समर्थ न हुआ क्योंकि भूतों और चेतनासे मिश्रित प्राणीके दोनों पहलुओंमें से उसने

उसके उत्तमांशकी गहरी उपेक्षा की। जगत्के मुट्ठी भर महान् मस्तिष्कवान् व्यक्ति, जिनकी तपस्याके फलस्वरूप इस सभ्यताका उद्भव और विकास हो रहा है, मनुष्यके जीवनका उत्तरदायित्व उठानेसे अस्वीकार करते है। वे साधारण जीवनके घात-प्रतिघातसे अलग होकर सुदृढ़ शब्दोंमें इस बातकी घोषणा करते है कि उनके आविष्कारोंका मानव-समाजपर क्या प्रभाव हुआ है अथवा मनुष्य उनका उपयोग किस प्रकार कर रहा है इससे उन्हें कोई मतलब नहीं है। विज्ञान नैतिक तथा सामाजिक दृष्टिसे निरपेक्ष है अत: उनका यह काम नहीं है कि वे इसकी चिंता करे कि मनुष्य उनके प्रयत्नोंसे कौन खेल खेल रहा है। फलत: जो जगत्के 'आधुनिक ऋषि है वे इस बातपर कोई प्रकाश नही डालते कि जीवनका लक्ष्य क्या है, मनुष्य जीवन यापन किस प्रकार करे तथा उसका समूचा स्वरूप वस्तुत' कैसा है? परिणाम यह हुआ कि जो वैज्ञानिक आविष्कार जगत्को अधिक समुन्नत और सुखी बना सकते थे वे ही उसके लिए अभिशाप हो रहे है। इसमें दोष आविष्कारोंका नहीं है बल्कि दोष है उनका दुरुपयोग करनेवाले मानवका। यदि मनुष्य उनका सदुपयोग करना जानता होता तो जगत्का स्वरूप ही दूसरा हुआ होता। साधारण मनुष्यकी साधारण बुद्धि यह अपेक्षा करती है कि कोई उसे निश्चित रूपसे बता दे कि उसे करना क्या चाहिये और क्या न करना चाहिये। वह स्वयं विधि-निषेधका निर्वाचन करनेके पचड़ेमें पड़नेकी क्षमता नहीं रखती पर इतना

जरूर चाहती है कि उसे कोई निर्णीत तथा निश्चित मार्ग बता दे। आज वैज्ञानिक आविष्कारोंकी विभूति तो प्रदान की गयी पर उसका उपयोग किस प्रकार किया जाय, इसके लिए मानव दीक्षित नहीं किया गया। जो पुराने नैतिक और धार्मिक नियम थे उनका उन्मूलन तो हो गया पर कर्तव्याकर्तव्यके नये भवनका निर्माण नही किया जा सका।

विज्ञानने मोहाच्छन्न मानवके हृदयसे धार्मिक विश्वास, नैतिक बंधन तथा जीवनमें जिन आदर्शोंका मूल्य था और जिनके प्रति आस्था थी उन्हें मिटा देनेमें सफलता अवश्य प्राप्त की क्योंकि विशुद्ध भौतिक और वैज्ञानिक दृष्टिसे उनकी सत्ता सिद्ध नहीं की जा सकती। संशय उसने उत्पन्न कर दिया, जो था उसे मिटा दिया पर उसके स्थानपर रह गया मनुष्यका केवल स्वार्थ और इस जीवनकी भौतिक आकांक्षाओंकी पूर्तिकी एकमात्र कामना। फलतः आजकी सभ्यताकी सबसे बड़ी त्रुटि यही है कि उसने जीवन और जगत्के प्रति एकमात्र भौतिक भावको अपना लिया। मनुष्य केवल भौतिक प्राणी नही है यह स्पष्ट है। भौतिक रूपमें इस जगत्की सत्ता उसके लिए अवश्य है पर इसके साथ ही उसके भाव उसके लिए इस दुनियाको नये नये रूपोंमें रँगते भी रहते हैं। स्थूल जगत्में भौतिक तत्त्वोंके साथ-साथ उसकी चेतना न जाने किन अलौकिक तत्त्वोंकी अनुभूति भी कराती रहती है। हमारी सारी अनुभूतियाँ चाहे वे वैज्ञानिककी हो अथवा कल्पनाकाशमें उड़ते हुए कविकी

अथवा प्रेमसे विह्वल एक प्रेमीकी, समानरूपसे सत्य है। ऊषाकी अरुणाभामें भौतिक विज्ञानके विद्वान्‌को विद्युत् चुम्बकीय प्रकाश की जो किरणें दिखाई देती है वे उतनी ही सत्य है जितनी किसी कविके हृदयकी वह भावुकता जो उसे विमोहक लालिमामें प्रियतमके दर्शनके लिए जाती हुई किसी युवतीके मुखपर नाचती लज्जाकी अनुभूति कराती है। ऊषाकी आभामें प्रकाशकी किरणों-की लंबाई चौड़ाईका दर्शन और कवि-हृदयकी अनुभूति दोनों ही मनुष्यके जीवनके दो पहलू है जिनमेंसे एककी भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। मनुष्य जगत्‌की भौतिक सीमासे आबद्ध होते हुए भी उससे कहीं अधिक परे है। वृक्ष और पहाड़, नदियाँ और समुद्र, इन्द्रियाँ और उनके रस, उसकी दुनियामें हैं और उसपर अपना प्रभाव रखते है। इनसे उसका केवल भौतिक संबन्ध भी है। वह वृक्षकी लकड़ीको जलाकर आग उत्पन्न करता है, पहाड़ोंको खोदकर खनिज निकालता है, नदियोंके जलसे घास बोआ लेता है और खेतोंकी सिचाई कर लेता है, समुद्रकी मछ-लियोंको मारकर व्यापार करता है तथा मोती और मूँगा निकाल कर अपना घर भर लेता है। इन्द्रियाँ उसकी भौतिक आकांक्षाओं-की और आवश्यकताओंकी पूर्ति कर देती है। पर उसकी दुनिया यहीं समाप्त नही होती। इन्हीं वृक्षों और पहाड़ो, नदियों तथा समुद्रोंमें उसे सौंदर्यका दर्शन हो जाता है, अनन्तके अनन्त समोहक रूपकी झाँकी मिल जाती है, कलकल निनादमें सगीत सुनाई देता है और अपने तथा उसके भीतर समान रूपसे परि-

चालित किसी प्राण-शक्तिके स्पंदनकी अनुभूति किसी अज्ञात किन्तु परम सत्यका आभास दे जाती है। वही इन्द्रियाँ उसकी इस अन्तश्चेतनाकी अमूर्त अनुभूतिकी साधक होती हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मानवका स्वरूप भौतिक और अभौतिक शक्तियोंके संयोग और समन्वयका परिणाम है। इस दशामें मनुष्य जब मिट्टीका पुतला होनेके साथ-साथ उज्ज्वल चेतना और अनुभूतिकी अभिमूर्ति भी है तो हम कह सकते हैं कि जिस प्रकृतिने उसे यह विशेषता प्रदान की है उसकी दृष्टिमें उसके जीवनकी उपयोगिता और सार्थकता केवल इतनी ही नहीं हो सकती कि मानव-प्रपंचके वैभव और भोगके उपभोगको ही परम सत्य और लक्ष्य मान ले। अवश्य ही उसने उसके लिए इससे कहीं अधिक उन्नत, सुंदर, शुभ और मानवीय आदर्शकी कल्पना की होगी जिसतक पहुँचना मानव जीवनके लिए अभीष्ट समझ लेगा।

पश्चिमने इन दोनों पहलुओंको नहीं देखा। भौतिकताने उसे अभिभूत कर दिया। फलतः उसने इतिहासकी भौतिक व्याख्या तो समझी, पर जीवनकी नैतिक व्याख्या संसारके कल्याणके लिए आवश्यक है यह न समझ सका। सृष्टि और जीवनका एक निश्चित ध्येय है और जगत्के मूलमें स्थित कोई चिन्मयी धारा उसे उसी ओरको प्रवाहित करती है, इसका ज्ञान न कर सका। प्राणीके जीवनके विकासकी प्रक्रिया और इतिहासमें ही उस शक्तिके अस्तित्वकी स्पष्ट झलक मिलती है। विकासवादी

कहते हैं कि मनुष्यका आरंभिक उद्भव अत्यन्त हीन और कुत्सित जंतुके रूपमें ही हुआ होगा। विकासकी प्रक्रियाने उसे आज अपने उन्नत और विकसित रूपमें पहुँचाया है। यदि विकास वादियोंकी ही बात सही मान ली जाय तो क्या वह इस सत्यकी ओर सकेत नहीं कर रहा है कि विकासकी प्रक्रियाको चरितार्थ करनेवाली शक्तिका यह निश्चित ध्येय है कि वह प्राणीको अधिकाधिक उन्नति और पूर्णताकी ओर बहाये लिये चले। जीवन-क्रमशः एक स्तरसे दूसरे स्तरकी ओर, उच्चसे उच्चस्तरकी ओर जाय यही लक्ष्य है सृष्टिका और जीवनका, जिसे प्राप्त करना विकासकी प्रक्रियाकी चेष्टा ज्ञात होती है। हीनता, तुच्छता, अशुभ और पशु प्रवृत्तियोको परिमार्जित, संतुलित और संयमित करते हुए ही मानव विकासके पथपर बढ़ सका है। उसकी प्रगतिके मूलमें यह संघर्ष रहा है और यही वास्तवमें जीवनका स्वाभाविक और नैतिक धर्म है। यही जीवनकी नैतिक व्याख्या है जो भौतिकताकी सीमासे हमें परे ले जाती है। जड़ और अंध भूतोंकी यांत्रिक तथा निरुद्देश्य और लक्ष्यहीन उछल-कूदका ही परिणाम मनुष्य नहीं है अपितु उसके उद्भूतके मूलमें कोई भौतिक तथा अभौतिक लक्ष्य भी है। यह सत्य मनुष्यकी दुनियाको मूर्त लौकिक परिधिसे कहीं दूर पहुँचा देता है। उस परिस्थितिमें आवश्यक हो जाता है कि मनुष्य जहाँ सांसारिक सुखों तथा अपनी सजात हीन प्रवृत्तियोंकी सत्ताको स्वीकार करके उसकी पूर्तिके लिए यत्नशील

होना अपना स्वाभाविक धर्म समझे, वहीं यह भी मान ले कि उसके जीवनका ध्येय और विकासकी धारा उससे यह अपेक्षा करती है कि वह केवल उसे ही संपूर्ण सत्य न समझ ले बल्कि उसे उन नैसर्गिक उत्तम प्रवृत्तियोंको जाग्रत तथा सक्रिय करनेका यत्न भी करना चाहिये जो अशुभ-वासनामयी लोल लिप्साओंसे संघर्ष करते हुए मानवको क्रमशः पूर्णताकी ओर बढ़ाती रही हैं। पर आजकी दुनियाने विकासकी धाराके इस अभौतिक स्वरूप और लक्ष्यकी उपेक्षा की है। मनुष्यकी एक ही आवश्यकता सर्वोपरि हो गयी, फलतः उसने एक ही दिशाका मार्ग पकड़ा। जिस प्रकार भोग, ऐश्वर्य और विलासकी कामना परितृप्त हो और जिस क्षण जो कार्य वृत्तिके अनुकूल हो वही उचित और ग्राह्य हो गया। यही है जगत्के विनाश और आधुनिक सभ्यताकी असफलताका मूल कारण। जो समूह केवल शरीरमें डूबा रहे, जो केवल भौतिक तथा आर्थिक अस्तित्वको ही अस्तित्व माने और उन समस्त उत्तम मानवीय पहलुओंकी उपेक्षा करे जो मानवको मानव बनाते हैं और जो उसके विकासके अटूट नियमके रूपमें सदा स्थिर है, वह समूह न सभ्य कहा जा सकता है और न उसकी सभ्यता सभ्यता। यही कारण है कि वैज्ञानिकोंकी बुद्धि और तपश्चर्याने जगत्की परिस्थितियोंमें जो परिवर्तन कर दिया उससे मनुष्य अपना सामंजस्य स्थापित न कर सका। जबतक यह स्थिति है तबतक विनाश होता रहेगा, शोषण और दलन रहेगा, दासता

और दीनता रहेगी। इसका उपचार न वर्ग संघर्षको तीव्र करनेसे हो सकता है और न एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्गका लोप कर देनेसे। जो जीवनको विशुद्ध भौतिक भाव प्रदान करनेपर तुले हुए हैं, जो इच्छाओंकी पूर्तिमें ही एकमात्र सुख और उसे अपना ध्येय माने हुए हैं, वे कभी इस स्थितिको सुलझा नहीं सकते। जीवनके एक ही पहलूको पकड़ कर उसकी समस्याको सुलझानेका जो उपचार भी किया जायगा वह मौलिक उपचार नहीं हो सकता। अस्थायीरूपसे यदि एक समस्या हल हो भी गयी तो दूसरे उपसर्ग उत्पन्न हो जायँगे।

फलतः जगत्‌की आवश्यकता युगान्तरकी अपेक्षा कर रही है। वह दुनिया, नये दृष्टिकोण, नये आदर्श और जीवनके नये मूल्य स्थिर करनेके लिए उतावली हो रही है। नये आधारोंपर नये विश्वकी स्थापनाके लिए मानवताको स्वयमेव आगे बढ़नेके लिए बाध्य होना होगा। भारत इसमें उसकी कुछ सहायता कर सकता है। उसका अतीत इस बातका साक्षी है कि उसने समय समयपर मानवताकी सहायता की है। ऐसा आभास मिलता है कि भारतके पास कुछ है जिसे प्रदान करके वह विकल हुई मानवताको शान्ति प्रदान कर सकता है। यह स्थिति इस देशके कुछ काल्पनिकोंको, कुछ आदर्शवादियोंको उत्साह और उत्तेजन प्रदान करती है। भारतने अति प्राचीन कालमें जीवनके तथ्यको यूरोपकी अपेक्षा अधिक समझा था, यह मेरा विश्वास है। उसके तत्त्वद्रष्टा ऋषियोंने मनुष्यको उसके

पूर्णरूपमें देख लिया था। उन्हें इस सत्यका साक्षात्कार हो गया था कि जीवन न केवल भौतिक है और न केवल आध्यात्मिक ! इन दोनोंके संयोगसे कलामयी प्रकृतिने उसका निर्माण किया है। उन्होंने यह भी समझ लिया था कि जीवनकी धाराका एक लक्ष्य है जिसकी ओर ही उसे प्रवाहित होना चाहिये। मनुष्यका उज्ज्वल अंश सदा उसे उस लक्ष्यकी ओर ही उत्प्रेरित करता रहा है। भले ही मनुष्यको द्वन्द्व करना पड़ा हो पर उसकी गतिका मार्ग उसी दिशाकी ओर निर्धारित है जिधर जानेके लिए प्रयत्न करना उसकी साधना है। वे कल्पना-करते थे कि एक मुहूर्त आ सकता है जब मनुष्यका एक पहलू विजयी होकर उसे भौतिक सीमाके बधनोसे इस प्रकार मुक्त कर दे कि वह अपनेको विश्वकी आत्मामें लय कर देनेमें समर्थ हो जाय। मानवकी उन्नत चेतना और विकसित जीवनसे प्रकृति यही आशा करती है कि वह अपने स्वार्थ, अपने अहं और अपने क्षुद्र भौतिक बंधनोसे निकल कर विराटकी असीमतामें एकात्म हो जाय। फिर जगत्‌के कल्याणमें ही उसे अपना कल्याण दिखाई देगा। वही होगा वह स्तर जहाँ पहुँचकर मानव पूर्ण और मुक्त हो जायगा।

इसी दृष्टिकोणको लेकर उन्होने जीवनके दोनो पहलुओमें सामंजस्य स्थापित किया। मनुष्यकी भौतिकताको स्थान अवश्य दिया पर उसकी आध्यात्मिकताको प्राधान्य प्रदान किया। आध्यात्मिक और नैतिक अंश ही स्थूल जीवनका सचालक और नियामक हो। शरीरकी उपेक्षा न की जाय पर शरीर ही सब

कुछ नहीं है। वह साधन है किसी साध्यका, स्वयं साध्य नहीं है। फलतः न साध्य साधनकी उपेक्षा कर सकता है न साधन साध्यकी। जिस दिन भारतने स्वयं यह तथ्य भुलाया उस दिनसे उसका पतन आरंभ हुआ। उसके इतिहासमें एक समय आया जब भारतने वही गलती की जो यूरोप आज कर रहा है। यूरोपने मानवके आध्यात्मिक पहलूकी उपेक्षा करनेकी भूल की है तो भारतने उसके भौतिक पहलूकी उपेक्षा करनेकी गलती की थी। जगत् मिथ्या है और जीवन भी नश्वर अतएव असत्य है, इस पुकारने जिस निवृत्ति-मार्गका प्रजनन किया उसने सामूहिक जीवनको आध्यात्मिक तो न बनाया पर जगत्की उपेक्षा करनेकी बात जरूर सिखा दी। भारतकी निश्क्रियता उसको ले डूबी। उसी प्रकार आज यूरोप घोर प्रवृत्तिका पुजारी होकर, 'केवल यही सत्य है और इसके सिवा कुछ नहीं' की आवाज लगा रहा है। फलतः उसका पतन भी स्पष्ट दिखाई दे रहा है। प्राचीन भारतने इन दोनोंके बीच सत्यकी स्थापना की थी। दोनों अपने अपने स्थान पर सत्य हैं और दोनोंके सामंजस्यमें ही जीवन और जगत्का कल्याण है, यह उनका विचार था। उसने जिस आश्रम धर्मको अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनकी बुनियाद बनाया था वह है प्रमाण उसके उपर्युक्त दृष्टिकोणका जिसमें मानवके भौतिक और अभौतिक, स्थूल और सूक्ष्म, दोनों स्वरूपोंमें सामंजस्यकी स्थापनाका प्रयत्न दिखाई देता है।

फलतः इस देशके पास जगत्को देनेके लिए सदेश है। उसे यह सदेश देना है कि जीवनका, समाजका, उसकी आर्थिक या सामाजिक, अथवा राजनीतिक व्यवस्थाका आधार केवल भौतिकता नही हो सकती। अपने ही स्वार्थ और अपनी सुख-पिपासाकी शान्तिके लक्ष्यको लेकर जिस जीवनका निर्माण होगा वह न केवल पथ-भ्रष्ट होगा बल्कि संसारके लिए अभिशाप बन जायेगा। मानवता इसकी सीमासे परे है, जिसकी भावात्मिका दुनियाभी है जिसमें सत्य और सौंदर्यके आधारपर जीवनका मूल्य अंकन करना होगा। उसके आधारपर आदर्शोंकी स्थापना करनी होगी और उसके अनुकूल आचरण और कर्तव्य तथा अधिकारोंकी रचना होगी जो नैतिकता और मानवताका रूप ग्रहण करेगी। मनुष्यका भौतिक जीवन अपना स्थान रखेगा पर उसे उसके उत्तमांशसे प्रभावित होना पड़ेगा। दंभ अहंकार, ऐश्वर्य और परोत्पीड़नकी शक्ति सभ्यता और प्रगतिकी द्योतक न हो कर 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' की कल्याणमयी भावनासे ओतप्रोत समाज और जीवनको सभ्य तथा प्रगतिशील माननेका दृष्टिकोण अपनाना होगा। उस समय आजका विज्ञान भी मानवताका परम वरदान हो जायगा। पर जहॉ उसे यह प्रदान करना है वहीं पश्चिमसे स्वयं भी कुछ लेना है। अतीतकी सब बातोको जहॉ भला ही समझना दोषपूर्ण है वहॉ बाहरसे जो भी आता हो सबको ग्रहण कर लेना भी बुरा है। भारत आज इन दोनोमें से किसी मार्गको पकड़कर न अपना कल्याण कर सकता

है और न मानवताकी सेवा कर सकता है। उसका धर्म है कि उसके पास जो है उसमेंसे रत्न मिले तो निकाल कर अपने उपयोगमें लावे और बाहरसे जो आता है उसे बुद्धि और हिताहितकी कसौटीपर कस कर उसे अपना ले जो ग्रहणीय दिखाई दे। ज्ञान किसीकी बपौती नही है और न सत्यके सम्बन्धमें यह दावा किया जा सकता है कि उसकी अंतिम सीमातक कोई पहुँच चुका है। सत्य अनन्त है, उसका स्वरूप अनन्त है अतः मनुष्यके ज्ञानका भी अन्त न होगा। फलतः पश्चिमसे जो प्रकाश मिल रहा है और विज्ञान जो ऐश्वर्य प्रदान कर रहा है उसे कृतज्ञता और उदारतापूर्वक उसी प्रकार ग्रहण करना है जिस प्रकार अपने यहाँके सद्ज्ञानका उपयोग करना है। पश्चिमके स्वतंत्र चितन और सप्राणता, जिज्ञासा और तेजस्विता, आलोचनात्मक वैज्ञानिक दृष्टि और खतरा उठानेका साहस हमें ग्रहण करना है। उसके पास ज्ञान है पर विवेक नहीं है जिससे वह ज्ञानका सदुपयोग करे। हमारे पास विवेक है पर प्राण नही है कि हम उसे सजीव रख सकें। आज मानवता इन दोनोंके आदानप्रदानसे ही बच सकती है। यही है मार्ग जगत्के महारोगके निराकरणका।

यह है आवश्यकता भारतकी और उसके संमुख अवसर प्रस्तुत होने जा रहा है जब वह अपना अभिनय कर सकता है। जगत् एक सूत्रमें बँधने जा रहा है और बँधेगा। मनुष्यकी आवश्यकताएँ उसे इस ओर बढ़नेके लिए बाध्य करेंगी और इच्छासे

हो या अनिच्छापूर्वक उसे यह स्थिति अपनानी होगी। उस समय परस्परके आदान-प्रदानसे उस महती मानव-संस्कृतिका जन्म हो सकेगा जो खून और खड्ग, स्वार्थ और संघर्ष, हिंसा और द्वेष, घृणा और क्रोध, शोषण और पीड़न, दलन और दासताके स्थानपर अहिंसा और उत्सर्ग, उदारता और सहिष्णुता, साहाय्य और सहयोग, समानता और संतोषके आधारपर अपने समाज-की रचना करेगी। मै समझता हूँ कि कालकी सूत्रात्माकी यही पुकार है। मेरे मनमें आता है कि गांधी कदाचित् उसी पुकार की सजीव प्रतिध्वनि है। आज सौभाग्यसे भारतीय अंतरिक्षको ही उस ध्वनिको ध्वनित करनेका श्रेय प्राप्त हुआ है। वह पुनीत क्षण होगा मानवताके लिए जब वह विकासकी ओर एक और कदम बढ़ाती दिखाई देगी। यह है स्वप्न जो मेरे सामने उपस्थित है। भले ही इसे कोई कोरी कल्पना कहे पर यह कल्पना भी योग्य और उपयुक्त कल्पना है। जिन्हें मानवताके भविष्यमें विश्वास है वे इसके सिवा दूसरी कल्पना कर ही नहीं सकते। फलतः आज इस देशके सामने और विशेष कर युवकोंके सामने यह महान् आदर्श उपस्थित है। यह देश न केवल आदर्शवादी रहा है बल्कि पुनीत आदर्शोंका जनक होनेका श्रेय प्राप्त कर चुका है। उसके पुत्र यदि आदर्शवादी हों तो अपनी परंपराके अनुकूल ही होंगे। आज मुझे, तुमको और समस्त युवकोंको ही नहीं बल्कि सारे देशको अपना मार्ग निर्धारित करना है। उन्हें देखना है कि इस आदर्शकी पूर्तिके लिए हममें अनुकूल चरित्र और

आवश्यक बल तथा ओजका विकास होता है। यही है महान् कर्तव्य। देखे कहाँ तक हम सफल होते हैं।

अब मैं यह पत्र समाप्त करता हूँ। यह अपेक्षाकृत बहुत अधिक लंबा हो गया पर मैंने जान बूझ कर बीचमें उसे खंडित करना उचित नहीं समझा। मेरी केवल यही कल्पना है कि जीवनके महान् लक्ष्य, महान् आदर्श और महान् कर्तव्योंसे हमारे युवक अनुप्राणित हों जिसमें न केवल इस बूढ़े भारतका मस्तक ऊँचा हो बल्कि विशाल और गौरवपूर्ण मानव समाजकी भी कुछ सेवा हो सके। इति शम्।

तुम्हारा

कमलापति

११

नैनी सेन्ट्रल जेल

ता०.........

प्रिय लालजी !

आज मैं इस पत्रमालाकी अंतिम पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। महीनोतक इसने जेल-जीवनके मेरे सूखे और निर्जीव क्षणोंको रस तथा सजीवता प्रदान की है जिसके लिए मैं उसका कृतज्ञ हूँ। आज वह मुहूर्त आ गया है जब भीतरसे प्रेरणा हो रही है कि मै इसे समाप्त करूँ। आठ वर्ष पूर्व जेष्ठ शुक्ल पूर्णिमाको ठीक मध्यान्हमें मेरी दृष्टिके संमुख तुम्हारी मां भौतिक देहको छोड़ न जाने कहाँ लुप्त हो गयीं। आज वही पूर्णिमा है। मुझे स्मरण है कि मेरा जीवन न जाने कितने उपसर्गों और परिस्थितियोंके घात-प्रतिघातके कारण कुछ नीरस और शुष्कसा हो गया था। ऐसे समय एक दिन वे उसमें अवतीर्ण हुईं और

अपनी ममता तथा स्नेह और व्यक्तित्वसे उसे एक दिशाकी ओर मोड़ ले चलीं। मैंने देखा कि जीवन रससे सिंचित दिखाई दे रहा है। उसके प्रति आकर्षणकी अनुभूति हुई और जगत्‌में भी सौंदर्यका आभास झलका। पर संयोग और मेरे भाग्यको मेरी यह स्थिति कदाचित् पसंद नहीं आयी। पुनः परिवर्तित क्षण आया और वे अपूरणीय अभाव तथा महती शून्यताकी सृष्टि करके चली गयीं। तबसे आठ वर्ष बीत गये पर उनकी स्मृति मेरे जीवनके साथ गुथी हुई है। मैं कभी किसी स्थितिमें उन्हें भूल न सका। यह स्मृति मेरी अमूल्य निधि रही है। उसने न जाने कब, कैसे और किन कारणोंसे मुझे जीवनके प्रति एक दृष्टिकोण प्रदान कर दिया। उसके प्रकाशमें अनेक अनुभूतियाँ हुईं, विचार उपजे, विलीन हुए और पुनः किसी रूपको धारण करके मनमें सुदृढ भावसे आ विराजे। हर्ष है और अपने लिए सौभाग्यकी बात समझता हूँ कि उस दृष्टिकोणने जीवनकी समस्याओंको उलझाया नहीं बल्कि सुलझानेमें ही सहायता प्रदान की। उससे उत्पन्न विचार, भाव और अनुभूतियाँ मेरी सहायिका ही हुईं। शायद इस प्रकार यहाँसे जाकर भी उन्होंने मेरी सहायता करना नहीं छोड़ा। वे भाव सदा मनमें लहराते रहे हैं और उनकी स्मृति निरंतर साथ रही है। यहाँके अकेलेपनमें वे भाव बहुधा सामने आते रहे हैं। अनायास बैठे बैठे लिखने लगा और जब जैसे विचार आते गये लिखता गया। उसने मेरे हृदयका भार भी हलका किया।

आज पूर्णमासी है और उनकी पुण्य तिथि है। मुझे ऐसा लगा कि उसके उपलक्ष्यमें आबद्ध बंदी होते हुए भी अपनी चेतना-की इस लहरीको तुम्हें अर्पण कर दूँ। तुम लोग मेरे लिए उनकी स्मृतिके प्रतीक हो। शायद इस कारण भी तुम्हारा ध्यान बराबर आता रहा है। आरंभमें लिख चुका हूँ कि तुम्हें उनकी धरोहरके रूपमें देखता हूँ। शायद उस कर्तव्यकी भी कुछ पूर्ति इसके द्वारा हो जाय। मालूम नहीं इसमें कितनी बाते ऐसी है जिनका तुम्हारे लिए अपने जीवनसे कोई संबध न होगा। शायद उनसे तुम्हारा मनोरंजन भी न हो। पर हो या न हो मै अपने संतोषके साथ साथ यह भी समझकर ही लिखता रहा हूँ कि उनसे कदाचित् तुम्हारे जीवनमें तुम्हें कुछ सहायता मिल जाय। बस, अब इन पंक्तियोंको समाप्त करता हूँ। मेरी कामना केवल इतनी है कि तुम जीवनमें सफल हो और उस उत्तरदायित्वका निर्वाह कर सको जो मानव होनेके नाते और भारतीय होनेके नाते तुमपर आ पड़ा है! इस कामनाके साथ ये पृष्ठ और उनकी पंक्तियाँ तुम्हें अर्पित हैं।

१८ जून १९४२
१ जेष्ठ शुक्ल पूर्णिमा
नैनी सेन्ट्रल जेल, प्रयाग।

तुम्हारा—
कमलापति

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	९	राजनितिक	राजनीतिक
	११	सूचित करें	सूचित करूँ
५	२०	बैठा हुआ	बैठे हुए
६	१०	बढनी है	बढता है
१४	१२	नवयुको	नवयुवकों
१८	२१	बोछ	बोझ
१९	५	नहीं थी	नहीं था
१९	२२	मामलू	मालूम
२२	१	अनिश्चित	अनिश्चय
२३	१२	हुँकार	ओंकार
२५	६	विश्वाथ	विश्वनाथ
२५	१०	श्रखला	शृंखला
२७	१	हिमाचलत	हिमाचल
२७	७	अलोडित	आलोडित
२८	८	आटूट	अटूट

२८	१२	विनास	विनाश
३७	१५	रहेगी	रहेगा
४६	११, १७	आधीन	अधीन
४६	१२	और उसे	और उन्हें
५६	१६	होगा।	होगा,
७६	१५	सवी	सभी
६०	१	पिशाथ	पिशाच
१२८	१६	तुमारे…तुारे	तुम्हारे… तुम्हारे
१३०	१४	यौवन के	यौवन की
१३१	१३	करती है	करता है
१५७	५	क्षोभ और	क्षोभ और
१२७	२२	वैवहिक	वैवाहिक
२४०	१८	स्तिथि	स्थिति
२६२	१०	सहन	रुदन
२७१	२	अधिकांश अंश	अधिकांश
२७७	४	जीवन के मूलों	जीवन के मूल में
२६८	११	युससे	युग से
३०२	२	नमन	नयन
,,	१३	मिशाल	मिसाल
३२०	२०	मानीषियों	मनीषियों